सत्साहित्य-प्रकाशन

जमना-गंगा के नैहर में

जमनोत्री, गंगोत्री तथा गोमुख के प्रवास का
रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक वर्णन

विष्णु प्रभाकर

●

१९६४
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने अबतक बहुत-सा यात्रा-साहित्य प्रकाशित किया है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसका निर्माण उन व्यक्तियो द्वारा किया गया है, जिन्होने स्वय यात्रा की थी। नतीजा यह कि इस माला की सारी पुस्तकें जहा अत्यन्त सरस एव ज्ञानवर्द्धक हैं, वहा प्रामाणिक भी हैं।

हमे हर्ष है कि इस भण्डार मे एक और नई पुस्तक सम्मिलित हो रही है। इसके लेखक हिंदी के सुप्रसिद्ध नाटककार, कहानी-लेखक तथा उपन्यासकार है। अपनी इस रचना के द्वारा उन्होने जमनोत्री, गगोत्री तथा गोमुख की तीर्थ-यात्रा ही नही कराई है, बल्कि साहित्य एव कला की एक मूल्यवान वस्तु दी है।

पुस्तक मे अनेक चित्र भी दिये गए हैं। इन चित्रो मे से अधिकाश श्री विनायक यशवत घोरपडे द्वारा सुलभ कराये गए हैं, कुछ स्वामी सुदरानदजी द्वारा। हम इन दोनो के आभारी हैं।

हमे विश्वास है कि 'मण्डल' की अन्य पुस्तको की भाति यह पुस्तक भी सभी क्षेत्रो मे चाव से पढी जायगी।

—मंत्री

हिमालय की पुकार

मानदण्ड भू के अखण्ड हे,
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण। (पंत)

"हिमालय के उत्तुंग शिखरों के आरोहण-अभियान मे एक अव्यक्त और अनिर्वचनीय आनद निहित है। अतरात्मा की कोई शक्ति हमे निरंतर इस उच्चता की ओर बढने के लिए पुकारती रहती है। इन साहसिक यात्राओ का प्रारम्भ कब हुआ, यदि कोई यह पता लगाने की कोशिश करे तो अदभुत परिणाम सामने आयगे। इन शिखरो के आकर्षण की पृष्ठभूमि का परिज्ञान यह सिद्ध कर देगा कि हिमालय अप्रतिम क्यों है। अज्ञात अतीतकाल से असख्य विभूतियो का सम्बन्ध इन पार्वत्य अचलो से जुडा हुआ है।"[1]

"संसार-भर मे जब कभी हिमालय शब्द का उच्चारण होता है तो लोग सचेत हो जाते हैं। एक विशिष्ट कुतूहल और आकाक्षा से उनका मुख-मण्डल दमक उठता है। यह केवल अत्यधिक ऊंचाई की ही धारणा नही है, अजेय शिखरों की ललकार ही नही है, अज्ञात हिम-सरोवरो और घाटियों की ही कल्पना नही है, वनस्पतियो और पशुओ की अविश्वसनीय सम्पत्ति की भी बात नही है, बल्कि इन बाहरी आकर्षणो की अपेक्षा कोई और ही महान विशिष्टता है इस शब्द मे, मानो कोई अदृश्य

---

१. निकोलस रोरिक

मानसिक प्रभाव हो उस शब्द मे, कोई विशिष्ट चुम्बकीय शक्ति हो, जिसने हिमालय को धार्मिक यात्राओ का एक महान केंद्र बनाया ।"[१]

इन विचारो की प्रतिध्वनि अनादि काल से चले आ रहे हमारे आध्यात्मिक और ललित दोनो प्रकार के साहित्य मे ध्वनित हो रही है। गीता मे स्वय श्रीकृष्ण ने कहा है, "स्थावराणाम् हिमालय ।" (अचल पदार्थों मे मैं हिमालय हू ।) अर्थात् हिमालय अचल पदार्थों मे सर्वश्रेष्ठ हैं। मत्स्य पुराण का ११७वा अध्याय विशेष रूप से हिमालय की सुषमा का वर्णन करता है।

मेघोत्तरीयक शैल ददृशे स नराधिप ।
श्वेतमेघकृतोष्णीष चन्द्रार्कमुकुट क्वचित् ॥
हिमानुलिप्तसर्वाङ्ग क्वचिद्धातुविमिश्रितम् ।
चन्दनेनानुलिप्तागि दत्तापचागुल यथा ॥
क्वचित् सस्पृष्ट सूर्यांशु क्वचिच्च तमसावृतम् ।
दरीमुखैः क्वचिद् भीमै पिबन्त सलिल महत् ॥

—राजा (पुरुरवा) ने देखा कि हिमालय मेघ की चादर ओढे हुए है। पगडी भी मेघो की है। मुकुट के स्थान पर सूर्य-चन्द्र हैं, समूची देह पर हिम का आलेपन है और बीच-बीच मे नाना धातुओ का योग है। मानो चदन का आलेपन करके किसीने पाचो अगुलियो की छाप अकित कर दी हो। वह हिमालय राजा को कही सूर्य की किरणो से प्रकाशित, कही अधकार से आवृत्त करता और कही बडी-बडी कदराओ के मुह से पानी पीता हुआ दिखाई दिया।

'किरातार्जुनीयम्' का कवि हिमालय की स्वर्ग के समान शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है, "हिमालय के शिखर रत्नो के भण्डार से शून्य नही हैं। न तो उसके गुहा-प्रदेश लता-गृहो से विहीन हैं और न नदियो के पुलिन कमलो से। वृक्ष और वनस्पतिया भी पुष्पो के भार से रहित

---

१ वेटोस्लेव रोरिच, 'आरोग्य', गोरखपुर, अगस्त १९६१

नही हैं। इस हिमालय मे पुष्पो से आवृत्त सुदर लताए ही भवन हैं, औषधिया ही दीपक हैं। नए सुर तरु किसलय की शैयाए है। यहां कमल-पुष्पो के ऊपर से बहनेवाली वायु से रति का श्रम दूर होता है। इन सब सुख-सुविधाओ एव सुषमाओ के कारण सुर-सुदरियो को स्वर्ग की याद भी नही आती।"

कालिदास का यह श्लोक मानो हिमालय की आत्मा का चित्रण है

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

—उत्तर मे देवतुल्य 'हिमालय' नामधारी पर्वत है। उसके दोनो छोर (ब्रह्मपुत्र और सिंधु) पूर्व और पश्चिम के समुद्रो मे डूब गए हैं। वह ऐसा दिखाई देता है मानो पृथ्वी को नापने के लिए कोई मानदण्ड स्थापित किया गया हो।

और भी

"इसके कुछ शिखर इतने ऊचे हैं कि मेघ भी उनके मध्य भाग तक पहुचकर रह जाते है। शेष भाग मेघो के ऊपर निकला रहता है। इसलिए नीचे के भाग मे छाया का आनद लेनेवाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होने से व्याकुल हो उठते हैं तब वे मेघो के ऊपर उठे हुए उन शिखरो पर जाकर रहने लगते है, जहा उस समय धूप खिली रहती है।

"गगाजी के झरनो के जलकणो से आयुक्त, निरंतर देवदारु के वृक्षो को कपानेवाला और किरातो की कमर मे बधे हुए मोर पखो को फड-फडानेवाला यहा का शीतलमद सुगध पवन उन किरातो की थकान मिटाता चलता है, जो मृगो की खोज मे हिमालय पर सदा इधर-उधर घूमते रहते हैं।"

हिमालय के तुषार-मण्डित शिखरो, देवदारु और भोजपत्रो के वृक्षो, कदराओ और गुफाओ की सुषमा, नाना औषधियो से सुगधित वनश्री की मोहकता, निर्झरो के सौंदर्य और इसका परस पाकर बहती हुई शीतल मद पवन का वर्णन करते हुए महाकवि अघाता नही है।

इस अपूर्व सुषमा के कारण ही हिमालय का आकर्षण आज भी अक्षय है। उसकी पुकार आज भी मानव-मन को उद्वेलित कर देती है। भू-स्तर-शास्त्र की दृष्टि से, प्राणिशास्त्र की दृष्टि से, आध्यात्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से, भव्यता और रोमातिक दृष्टि से, सभी दृष्टियो से यह नगाधिराज पृथ्वी का मानदण्ड है। प्रेमियो के लिए यहा चिर मधुरात्रि है, चिंतको के लिए चिर एकात है, जो क्लात हैं उनके प्राणो को सहलानेवाले विश्राम-स्थल है और जो जीवन से निराश हो चुके है उनको जीने की प्रेरणा देने-वाले सुरम्य प्रदेश भी यही हैं। काकासाहब कालेलकर के शब्दो मे—"यह इतना विशाल है कि इसमे ससार के सभी दुख समा सकते हैं। इतना शीतल है कि सब प्रकार की चिंता-रूपी अग्नि को शात करने की सामर्थ्य भी इसमे है। इतना धनवान है कि कुबेर को भी आश्रय दे सकता है और इतना ऊचा है कि मोक्ष की सीढी बन सकता है।"

दूर से देखनेवालो के लिए वह मात्र एक पर्वत है—ससार का सबसे ऊचा पर्वत, लेकिन जो उसके पास जा चुके है, जिन्होंने उसकी सुषमा का, उसके सौंदर्य का और उसकी मनोरम प्रकृति का जीवत स्पर्श पाया है, उनके लिए वह अध्यात्म और मानवीय रूप-लावण्य का साक्षात् स्वरूप ही है। इसकी गध का स्पर्श पाते ही मानव-आत्मा मानो खिल उठती है। मानो इसमे एकाकार होने को आतुर हो उठती है। वह एकसाथ विराट और पवित्रतम है। उसकी अगम्य गिरि-कदराओ और हिमानियो से उत्पन्न हुई अनेक सरिताए मनुष्य की प्राण-रक्षा ही नही करती, उसकी रूप-पिपासा को भी शात करती हैं। हिमालय की सबसे बडी विशेषता यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य उसकी ओर आकर्षित होता है, उसके समीप पहुचता है, वैसे-वैसे ही उसे यह अनुभव होता है कि जैसे वह अपने घर जा रहा है। ससार के सुदूरतम प्रदेशो से आनेवाले व्यक्ति का मन उस आतुरा कन्या की तरह हो उठता है, जो बहुत दिन तक पतिगृह मे रहकर मा के घर लौटती है।

हिमालय के आकर्षण मे आध्यात्मिकता और सौंदर्य का अद्भुत

सम्मिश्रण हुआ है। "प्रतिवर्ष भारत के हर भाग से आनेवाले यात्रियों की दृष्टि से तो हिमालय का गौरव है ही, मनीषी ब्राह्मण भी अपनी दर्शन-पद्धति के लिए यहा के प्राकृत प्रतीको का उपयोग करता है। भारतीय काव्य और पौराणिक कथाए इसी तथ्य की ओर सकेत करती हैं कि हिमालय विश्व की केंद्र-भूमिका है। महाकवि कालिदास ने कैलास की गगन-चुबी धवल चोटियो को आकाश का कमल कहा है। यह कवि-कल्पना स्पष्ट कर देती है कि क्यो भारतीय शिल्प और चित्रो मे कमल को ही देवताओ का आसन कहा गया है। यह नैसर्गिक दृश्य देखकर ही सभवत: वैदिक आर्यो ने अपना जीवन एकदम साधारण रखा और किसी प्रकार के मदिरो और विराट शिखरो का निर्माण नही किया। किंतु जैसे-जैसे वे दक्षिण की ओर बढते गए, हिमालय के सौंदर्य की अनुभूति अपने साथ लेते गए। अपने धार्मिक कृत्यो मे प्रतीको का विधान हिमालय की सामग्री से ही करने लगे। आर्यों को सृजनात्मक प्रेरणा हिमालय के उपादानो से मिली, इसमे सदेह नही।"[1]

वास्तु और स्थापत्य-कला के माध्यम से भारतीय कलाकारो ने कैलास की कल्पना को पुन साकार बनाया। इसके अनेक उदाहरण एलोरा की गुफाओ मे देखे जा सकते है। सचमुच हिमालय का अपूर्व सौंदर्य देखकर हमे स्रष्टा के लिए प्रशसात्मक शब्द तक नही मिलते। "सबसे अधिक पूर्ण और उच्च सौदर्य है भगवान।"[2] इसी सौंदर्य की अनुभूति है आध्यात्मिकता। इसीका सम्पर्क मानव के लिए सजीवनी के समान है। हिमालय इस सजीवनी का अक्षय भडार है।

आदिकाल से आर्य ऋषियो ने सर्वप्रथम यही पर देवदारु की कलामयी छाया मे, कलकल निनादिनी सरिताओ के तट पर, इद्र-धनुषो के प्रकाश मे किसी अज्ञात शक्ति का आवाहन किया था। इसी प्रदेश से अगस्त्य ने विध्य का मान-मर्दन करने के लिए प्रस्थान किया था। यही पर सूर्यवशी

---

१. हेवेल, २ तोलस्ताय

अशुमान, दिलीप और भगीरथ गगा को खोजने आये थे। यही पर कृष्ण ने गधमादन पर तप किया था। पाण्डवो ने इसी प्रदेश मे जन्म और निर्वाण पाया। कश्यप और अगस्त्य, जमदग्नि और वेदव्यास, वसिष्ट और विश्वामित्र, गौतम और अत्रि, इन सबके तपोवन इसी हिमालय की गोद मे थे और इसी पावन प्रदेश मे आर्येतर देवता शिव ने आर्यों के स्वर्ग मे प्रवेश पाकर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। और फिर यही पार्वती के साथ प्रणय-केलि का इतिहास रचा था। यही कामदेव भस्म हुआ और यही चिरकुमारी चिरसुदरी विश्वप्रिया उर्वशी ने जन्म पाया। यही अप्सराओ के नूपुरो की ध्वनि गूजी और यही पर नृत्य-नाट्य मे पारगत यक्ष, किन्नर, किरात और खश आदि जातिया पनपी और मिट गईं। ऐतिहासिक युग मे तथागत बुद्ध, सम्राट् चद्रगुप्त, आद्य शकराचार्य, समर्थ रामदास, स्वामी दयानद, विवेकानद और रामतीर्थ इन सभी महात्माओ ने इसीके क्रोड मे प्रेरणा प्राप्त की थी। तिब्बत का वह सत-कवि मिलरेप यही प्रकृति की प्रतिध्वनियो और पारलौकिक स्वरो को सुनता रहा था और मैदान के सघर्षों से ऊबकर या पराजित होकर कितने ऐतिहासिक वीरो ने यहा समाधि बनाई है।

किन्हीके लिए हिमालय प्रणव की भूमि है, कन्हीके लिए प्रणय की रम्यस्थली, कोई यहा प्रेरणा पाता है तो किसीके लिए यह पलायन का स्थान है। यह सब तो मानव की सीमित कल्पना की सीमा-रेखा के रूप हैं। अपने-आपमे तो यह मूक तपस्वी सौंदर्य और साधना मे कोई अतर नही मानता। इसीलिए किसी भी कारण से हो, सरिताओ, वृक्षो, पशु-पक्षियो और ओषधियो के समान ही मानव को भी उसने सदा शरण दी है। शरण के वे स्थान आज भी वर्ष मे ८ मास तक मानवीय क्रीडा से गूजते रहते हैं। उसकी छोटी-छोटी चोटियो पर तो वर्ष-भर बस्तिया बसी रहती हैं, परतु सर्वोच्च शिखरो पर भी मनुष्य के चरणचिह्न अकित हो गये हैं। विदेशियो ने और अब तो देशवासियो ने भी इस दिशा मे अनथक प्रयत्न किये हैं। एक बार एक विदेशी महिला अकेली ही हिमालय

मे घूम रही थी। उनसे किसीने पूछा, "क्या आप अकेली ही सुदूर यूरोप से हिमालय के दर्शन करने आई है ?"

गद्‌गद् होकर उस महिला ने उत्तर दिया, "आप भारतवासी धन्य है, जो सौंदर्य के आगार इस हिमालय के नित्य दर्शन करते है। मैंने स्कूल मे इसकी सुषमा का वर्णन पढा था और तभी प्रतिज्ञा की थी कि एक दिन इसके दर्शन करूगी। उस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए मैं अभी तक अविवाहित रही और पिता की सम्पत्ति से जो कुछ मिला उसीको लेकर इस रम्यस्थली के दर्शन करने आई हू।"

इस महिला-जैसी भावना आज के भारतवासी मे नही रह गई है, परतु फिर भी प्राचीन काल के भारतवासियो मे इसकी सुषमा के प्रति अनन्य आकर्षण था, यह झूठ नही है। तत्कालीन मान्यताओ के अनुसार उन्होने हिमालय को धर्म और पुण्य का स्थल बना दिया था। यह धार्मिक मान्यता केवल कल्पना के आधार पर ही नही मिली। इसकी विशिष्टता अर्थात् झीलो और नदियो की प्रमुखता, प्राकृतिक वैभव की सम्पन्नता, अनुपम सुदरता और सुषमा के कारण ही न केवल भारतवासी, बल्कि चीनी तथा दूसरी जातियो के लोग इसे देवताओ का आवास-गृह मानते रहे है।

हिमालय के पाच प्रमुख भाग हैं—काश्मीर जालधर, केदार, (उत्तराखण्ड), कुमायू (कूर्माचल) और नेपाल। इनमे भी उत्तराखण्ड सबसे पवित्र माना जाता है। गगोत्री, जमनोत्री, बदरीनाथ, पच प्रयाग (देव, रुद्र, विष्णु, नद और कर्ण), पच केदार (केदारनाथ, तुगनाथ, रुद्रनाथ, कल्पेश्वर तथा मद्यमेश्वर), उत्तर-काशी और ज्योतिर्मठ आदि सुविख्यात तीर्थ-स्थल इसी भाग मे हैं।

प्राचीन साहित्य मे हिमालय के जिन शिखरो का उल्लेख आया है उनमे प्रसिद्ध हैं—मेरु, सुमेरु, चौखम्भा, बन्दरपूछ, भरतखूट, नदागिरि, धौलागिरि, द्रोणगिरि, आदित्यगिरि, गौरीशकर और कैलास आदि। सरिताओं मे प्रमुख हैं—गगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र। इसके अतिरिक्त इसके

वक्ष को चीरती हुई अनेक सरिताओ के उद्गमो की खोज प्रत्येक युग मे अनेकानेक साहसियो को हिमालय की ओर आर्कर्षित करती रही है। निश्चय ही सरिताओ और हिम-शिखरो की भव्यता ने आध्यात्मिकता की ज्योति जगाई है और उस ज्योति के कारण ही अनेकानेक तीर्थ स्थापित हुए हैं। लेकिन हिमालय का गौरव केवल देवता की आराधना के कारण नही है, गगाओ के इस प्रदेश मे देवता के वहाने मनुष्य ने अनुपम सुदरी प्रकृति की पूजा का ही अनुष्ठान किया है। निरतर इन्द्रधनुष का निर्माण करती सहस्रो 'सहस्र धाराओ' से युक्त, इस देवदारु-वनस्थली मे जब उस अदृष्ट शिल्पी का अदृष्ट हाथ, अरुण किरणो का मुकुट शाश्वत हिम से आच्छादित उत्तुग गिरिशृ गो पर रख देता है तब प्रकृति-रूपा नव-वधू अपने सौंदर्य को अनावरण कर त्रिलोकी को दिव्य सुषमा से आप्लावित कर देती है। तब वायु के स्पर्श-सुख से आलोडित सुगधित पुष्प-द्रुम और प्रियतमा सरिता से मिलने को आतुर निरतर कलकल-छलछल करते हुए रजत-वर्णी निर्झर मधुर स्वर मे पुकार उठते हैं—

शुधू अकारण पुलके, क्षणिकेर गान गा रे।
आजि प्राण क्षणिक दिनेर आलोके।

—क्षणिक दिन के आलोक मे, केवल अकारण पुलक मे, हे प्राण, आज क्षणिक गीत गा।

हिमालय आयु की दृष्टि से सम्भवत तरुण गिरिमाला है, परतु प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से कदाचित यह सर्वोच्च पर्वत ससार मे सर्व-श्रेष्ठ है। सौंदर्य के इस सर्वश्रेष्ठ स्थल की ओर इस देशवासियो की ममता भी इसके जन्मकाल से रही है। यहा के मानव के मन मे यह भावना किसी-न-किसी रूप मे जागृत रही है कि जीवन मे अधिक नही तो एक बार अवश्य इस पर्वतराज का परस करना ही चाहिए। एक बार तो इस प्रदेश मे आकर इसके सौंदर्य से देह और देवता दोनो को सुख पहुचाना ही चाहिए। इसीलिए सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तराखण्ड तक आदि मानव ने जो मार्ग वना दिया था, वह निरतर प्रशस्त होता आ रहा है। साधु-

सन्यासी, गृहस्थी, पीडित-प्रताडित अथवा सौंदर्य और सुषमा के उपासक कवि और कलाकार, वैज्ञानिक और खोजी, सभी समान भाव से इस रम्य-स्थली मे ज्ञान और आनद की खोज मे आते रहे है। इनमे मुक्ति के पिपासु भी थे और सौंदर्य पर शलभ की भाति प्राण देनेवाले लोलुप भी। सत्य की खोज करनेवाले वैज्ञानिक थे और योग-साधन के द्वारा ब्रह्म की उपासना करनेवाले तपस्वी भी।

यही पुकार हमे भी उस देवात्मा के चरणो मे बराबर नई अनुभूतियां और नई समवेदनाओ की खोज मे खीचकर ले जाती रही है। यह पुस्तक इसीका यत्किंचित प्रमाण हैं।

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

जमना-गंगा के नैहर में

: १ :

चरैवेति चरैवेति

काका कालेलकर ने यात्रा करने के उद्देश्य की चर्चा करते हुए कही लिखा है कि जिस मनुष्य की वृत्तिया विकृत नही हो जाती, उसके लिए यात्रा की प्रेरणा भी स्वाभाविक है। जिस प्रकार वर्षा के शुरू होते ही साड अपने सीगो से जमीन खोदकर उसे सूघने लगता है, उसी तरह यात्रा का अवसर प्राप्त होते ही मनुष्य के पैर अपने-आप विना पूछे चलने लगते है। यदि कोई उससे पूछता है कि कहा चले तो वह कह देता है—"मैं कुछ नही जानता। जहातक जा सकूगा, चला जाऊगा। जाना, चलना, नई-नई अनुभूतिया प्राप्त करना, बस, इतना ही मैं जानता हू। आखें प्यासी हैं, शरीर भूखा है, इसलिए पैर चलते है, इससे अधिक मैं कुछ नही जानता। अर्थात् 'कालोह्य निरवधि' मानकर 'विपुला पृथ्वी' की परिक्रमा पर निकल पडना ही मेरा उद्देश्य है।"

जीवन की पुकार ही 'चरैवेति चरैवेति', चलना है, चलना है। सब चलते हैं। जीवन गतिमान है। प्रकृति मे निरतर हो रहे परिवर्तन इस गति के साक्षी हैं। नक्षत्र-मडल सदा चलता ही रहता है। पानी एक स्थान पर ठहरने पर दुर्गन्ध देने लगता है। और दूज का चद्रमा निरतर यात्रा के कारण पूर्ण चद्र वन जाता है।

नाना श्राताय श्रीरस्ति, इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन, इन्द्र उच्चरतः सखा॥
चरैवेति ! चरैवेति !!

—हे रोहित, सुनते हैं कि श्रम से जो वलात नहीं हुआ, लक्ष्मी उसीका

वरण करती है। जो बैठा रहता है, उसे पाप लील जाता है। इद्र उसी का सखा है, जो निरतर गतिवान है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

निरतर ४४ वर्ष से भ्रमण करते हुए एक जर्मन की याद आती है। शरीर से वृद्ध उस व्यक्ति के नेत्रो की ज्योति क्षीण हो रही थी। पर क्षीण नही हो रहा था उत्साह। मैंने कहा, "यदि यात्रा करते रहे तो एक दिन यह ज्योति समाप्त हो जायगी।"

उन्होने तुरत उत्तर दिया, "यदि यात्रा रुक गई तो निश्चय ही अधा हो जाऊगा। नये-नये स्थानो पर जाकर नई-नई चीजें देखता हू तो ज्योति लौट-लौट आती है।"

फिर भी कुछ प्रवास-भीरु व्यक्ति तर्क करते हैं कि मनुष्य यात्रा मे भटक जाता है। बधु-बाधव, परिजन-पुरजन, इन सबका स्नेह सब कही कहा मिल सकता है। ऐसे ही व्यक्ति को उत्तर देने के लिए किसीने कहा है, "जिस स्थान पर तू यात्रा करते-करते रुक जायगा, उसी स्थान पर कुटुम्बियो के बदले कुटुम्बी और पडोसियो के बदले पडोसी मिल जायगे।" जाति-भेद, ऊच-नीच से यह देश त्रस्त है। इस प्रकार के सामाजिक प्रश्न यात्री के सामने नही रहते। उसका ज्ञान सीमाए नही स्वीकार करता। समुद्र के विस्तार को अपने अतर मे समो लेने को वह आतुर हो उठता है। उसका मस्तिष्क विस्तृत होता है और हृदय विशाल। तब ये क्षुद्र सामाजिक प्रश्न आपसे-आप तिरोहित हो जाते हैं। सम्भवत इसी से प्राचीन काल मे बारह वर्ष गुरुकुलो मे अध्ययन करने के बाद तीन वर्ष देश-भ्रमण करने की व्यवस्था रहती थी।

इसके अतिरिक्त मनुष्य प्रकृति की विविधता, उसके सौदर्य और भयानकता से जहा आनद प्राप्त करता है, वहा उसके ज्ञान की वृद्धि भी होती है। सस्कृति के आदान-प्रदान की तरह यह प्राकृतिक आदान-प्रदान भी मनुष्य मे आध्यात्मिक शक्ति और सत्य शिवम् सुदरम् की भावना को जगाता है। अपरिचित प्रदेशो की पुकार मनुष्य के साहस को चुनौती है। जो इस चुनौती को स्वीकार करता है, वही मनुष्य है।

हमारे लिए 'काल', 'निरवधि', नही है और न 'पृथ्वी' 'विपुला' है, फिर भी, जैसा कि काकासाहब ने कहा है, हम लोगो का भी शरीर भूखा

है, आखे प्यासी हैं और मन नई-नई अनुभूतियो को समझने के लिए सदा आतुर रहता है। हम जानना ही नही, कुछ आत्मसात करना भी चाहते हैं। भारत के चारो कोनो पर तीर्थों का निर्माण शायद इसी दृष्टि से किया गया था। बदरीनाथ, पुरी, द्वारिका और रामेश्वरम् ये चार धाम है। उत्तराखड मे भी ऐसे चार धाम है, यमनोत्री, गगोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथ। इन चारो धामो की एकसाथ यात्रा करनेवाले साहसियो की कमी नही है। मार्ग अत्यत दुर्गम और बीहड है। लेकिन श्रद्धा की शक्ति अथाह होती है। मई के आस-पास इन तीर्थों के मार्ग खुलते हैं और तब भारत के कोने-कोने से दल चल पडते है। सन् १९५० और १९५५ मे हमने दो तीर्थों, केदारनाथ और बदरीनाथ, की यात्रा की थी। इस वर्ष (१९५८), शेष दो—यमनोत्री और गगोत्री—की यात्रा करने का निश्चय किया। सुना था, ये मार्ग अपेक्षाकृत कठिन है। लेकिन मार्ग की कठिनता आनंद को और भी बढा देती है।

इस बार हमारे दल मे सम्मिलित हुए 'सस्ता साहित्य मडल' के मत्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी उपाध्याय (भाभी), उनके पुत्र चि० माधव, दैनिक हिंदुस्तान के तत्कालीन सह-सपादक श्री शोभालाल गुप्त, (काकूजी), उनकी पत्नी श्रीमती विजया देवी, (काकी) 'जीवन-साहित्य' के सपादक श्री यशपाल जैन, उनकी छोटी बहन श्रीमती श्रीप्रभा जैन, भारत सरकार के तत्कालीन प्रसारण और सूचना मत्री डा० केसकर के निजी सचिव श्री यशवत विनायक घोरपडे तथा लेखक।

व्यवस्था मे सुविधा हो, इसलिए हमने श्री घोरपडे को, जो पुराने पत्रकार भी है, दल का नेता नियुक्त किया। वह इतने सतर्क हैं कि एक वर्ष पूर्व से ही प्रस्तावित यात्रा के सम्बन्ध मे सूचनाए इकट्ठी करना शुरू कर देते है। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप ही हमे अनेक स्थानो पर सरकारी डाक-बगलो मे ठहरने की सुविधा मिल गई। श्री यशपाल जैन अच्छे-खासे घुमक्कड है। देश के अतिरिक्त यूरोप घूम आये हैं और लेखक के साथ दक्षिण-पूर्व एशिया की यात्रा भी की है। उनकी यात्रा की तैयारी महामना मालवीयजी की भाति तब आरम्भ होती है जब गाडी

सीटी दे देती है। वह हुए इस दल के उपनेता। श्री मार्तण्ड उपाध्याय देश मे काफी घूमे हैं, लेकिन स्वभाव से अत्यन्त प्रवास-भीरु है। चलने के समय तक अनिश्चित रहते हैं। लेकिन एक बार चल पडने पर दल की सुख-सुविधा का भार वह सहज ही ओढ लेते हैं। मैं हुआ व्यवस्थापक, शायद इसलिए कि अपेक्षाकृत तेज चलता हू। सारे मार्ग पर यशपालजी के साथ मैं अगले पडाव पर सबसे पहले पहुचता रहा। इसलिए आवास व भोजन की व्यवस्था का भार सहज ही हमपर आ पडा।

२० मई की सवेरे ६॥ बजे गुरुजनो का आशीर्वाद और प्रिय जनो की शुभ कामनाए पाकर हम बस द्वारा हरिद्वार की ओर चल पडे। बस के अड्डे पर अनेक परिजन और मित्र विदा करने के लिए आये थे। तब उस वेला मे ऐसा लगा जैसे कोई उत्सव हो।

दल के सभी लोग उल्लास से भरे थे। इसी उल्लास के सहारे हम मेरठ पहुच गये। साधारणतया बस यहा कुछ मिनट ही रुकती है, परन्तु बहन श्रीप्रभा यहीपर दल मे शामिल होनेवाली थी। इनके माता-पिता भी यही थे। उन लोगो ने तथा हमारे स्नेही मित्र सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बिशम्भरसहाय प्रेमी ने सपरिवार बस के अड्डे पर आकर हमारे उल्लास को और भी बढा दिया। वे नाश्ता लेकर आये थे, इसलिए बस आधा घण्टा रुकी रही। चलते समय माताजी ने हमारी यात्रा शुभ हो, इस आशीर्वाद के साथ-साथ टीका करके एक-एक रुपया भी भेंट किया। दिल्ली मे मेरी पत्नी ने भी मुझे पाच रुपये इसी शुभकामना के साथ दिये थे। शायद सोचा होगा, धन की राशि जितनी अधिक होगी, कल्याण भी उतना ही अधिक होगा।

राम झरोखे बैठकर, सबका मुजरा लेय।
जैसी जिसकी चाकरी, वैसा उसको देय॥

भावना युगानुरूप ही तो होती है। पर हमने तो इसके पीछे जो प्रेम की सघनता थी, उसीको स्वीकार किया। शेष सब उसकी ओट मे छिप गया।

बस स्पेशल थी, इसलिए मार्ग मे केवल मुजफ्फरनगर, रुडकी और ज्वालापुर रुकती हुई डेढ बजे हरिद्वार पहुच गई। गर्मी निरन्तर बढ रही

थी, लेकिन अन्तर में इतना उत्साह था कि किसीने उसकी चिन्ता नहीं की और बिना रुके ही तीन बजे हम ऋषिकेश पहुंच गये। यहां रात-भर ठहरकर आगे की यात्रा की व्यवस्था करनी थी। बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला के तत्कालीन मैनेजर श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी यात्रा के मार्ग पर सभी धर्मशालाओं की व्यवस्था करते हैं। यशपालजी उनसे पूर्व-परिचित थे। उन्होंने सभी प्रकार की सुविधा हमें दी। यहां के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री भगवानदास मुल्तानी भी हमारे पूर्व-परिचित थे। यात्रा के लिए कुलियों आदि की व्यवस्था उनके कारण बड़ी आसानी से हो गई। साधारणतया भाव १०१ रुपया प्रति मन था, लेकिन हमको ९१ रुपये प्रति मन के हिसाब से कुली मिल गये। टिकट मिलने की भी कोई असुविधा नहीं हुई। मैनेजर को पूर्व-सूचना थी। बड़े स्नेह से उन्होंने हमारी सब व्यवस्था कर दी। आज पहली बार सीधे धरासू गांव तक के बस के टिकट मिले। इसके अतिरिक्त मार्ग की धर्मशालाओं के लिए चतुर्वेदीजी ने हमें एक गश्ती-पत्र दे दिया। उत्तराखण्ड की यात्राओं को अधिक-से-अधिक सरल और सुखद बनाने में काली कमलीवाले बाबा का सर्वोत्तम सक्रिय योग रहा है। वह सम्भवतः पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इन बीहड़ वन-मार्गों पर यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध किया। आज इन सभी मार्गों पर धर्मशालाओं का जाल बिछा हुआ है। यात्रियों की संख्या को देखकर अभी और धर्मशालाओं की आवश्यकता है। जो हैं, उनमें भी सुधार अपेक्षित है। 'धर्मशाला' शब्द सुनकर जो कल्पना एक नागरिक कर सकता है वैसा वहां कुछ नहीं है। बिना राज्य के साधनों के हो भी नहीं सकता। कहीं-कहीं तो शाल कोठरियां बनी हुई हैं। किवाड़ तक नहीं हैं। कच्ची, अंधेरी और सीली; पर उन प्रदेशों में इन्हें ही राज-महल मानना पड़ता है। लेकिन जब कुछ भी नहीं था तब न जाने यात्री कैसे अपने प्राणों की रक्षा करते होंगे। कौन-सा अटूट विश्वास, कौन-सी अटूट श्रद्धा उन्हें शक्ति देती होगी?

इस वर्ष से ऋषिकेश के रास्ते पर नरेन्द्र टीहरी और आगे धरासू तक बस का मार्ग बन गया है। प्रयत्न हो रहा है कि जहां तक सम्भव हो यात्रियों को अधिक-से-अधिक मोटर-मार्ग की सुविधा कर दी जाय। ये

सब सीमान्त प्रदेश हैं। चीन ने तिब्बत पर अधिकार कर लिया है और भारत के प्रति उसका जो रुख है, उसको देखते हुए राज्य इन प्रदेशो के विकास मे रुचि ले रहा है। बहुत शीघ्र ही यहापर सडको का जाल बिछ जायगा। तब सब कुछ होगा, लेकिन पैदल-यात्रा का आनद नही मिल सकेगा।

गर्मी तीव्र होती आ रही है। रात को सो नही पाते, लेकिन आगे जाने का एक अनोखा उल्लास है। वह थकने ही नहीं देता। इसलिए सवेरे बहुत जल्दी उठ बैठे। नित्य कर्म से छुट्टी पाई थी कि जलपान की पुकार लगी। सामान लेकर तुरन्त बस के अड्डे पर पहुचना है न। समूचा वातावरण जैसे हमारे साथ गतिमान हो उठा है।

यहा भी अनेक मित्र और शुभचिन्तक विदा करने आ गये। यह स्नेह निरन्तर हमारे उत्साह को गति दे रहा था। चतुर्वेदीजी और बस कारपोरेशन के अधिकारी श्री गुप्ता बहुत व्यस्त थे। ड्राइवर को विशेप रूप से हमारी सुविधा का ध्यान रखने के लिए उन्होंने आदेश दिये। उनकी मगलकामनाओ के साथ तथा मन मे नाना प्रकार की सुखद कल्पना करते हुए हम आगे बढ गये। सात बज रहे थे और वातावरण मे शीतलता थी। मन-ही-मन जैसे उसने कहा—"शुभास्तु पथान।"

: २ :

तारों-भरे आकाश के नीचे

अभी नगर से बाहर भी नही हुए थे कि सहसा बसें रुक गईं। पूछा, "क्यो रुके हैं?"

उत्तर मिला, "स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारी हैजे के टीके के प्रमाण-पत्र देखने आये हैं।"

हम लोग दिल्ली से ही प्रवन्ध करके चले थे, इसलिए कोई असुविधा

नही हुई । लेकिन कुछ ऐसे यात्री भी थे, जिन्होने टीके नही लगवाये थे या लगवाये थे तो प्रमाण-पत्र उनके पास नही थे । उन लोगो को फिर से टीके लगवाने पडे । उसके बिना वे आगे नही बढ सकते थे ।

पथ के दोनो ओर पर्वतीय वन-प्रदेश प्रारभ हो गया । उस प्रात· वेला· मे वह बडा सुहावना लग रहा था । ऊचे-ऊचे वृक्षो के बीच से शोर मचाती हुई बस जब नरेन्द्रनगर की ओर चलती चली जा रही थी तो हृदय मे हिलोरें-सी उठने लगी थी । नरेन्द्रनगर होगा यही दस मील, लेकिन ११०० फुट की ऊचाई से हम चार हजार फुट की ऊचाई पर आ पहुचे है । यह नगर भूतपूर्व टिहरी राज्य की अतिम राजधानी था । छोटा-सा आधुनिक पहाडी नगर, क्षीणकाय लबी तरुणी की तरह एक स्वच्छ सुदर बाजार, और उसके सामने विस्तृत हरा-भरा समतल । बुरा नही लगा । यही पर पहली बार हमने यात्रा के उन सगी-साथियो को देखा, जो अत तक मिलते-बिछुडते रहे । टीनो से कई भरे ट्रक देखकर कौतूहल जाग आया । पूछा, "इनमे क्या है ?"

"खाली हैं ।"

"खाली ? किसलिए ?"

"गोद लायगे । धरासू मे चीड के वृक्षो से निकाला जाता है ।"

चीड के वृक्ष स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छे माने जाते हैं । लकडी उनकी इतनी अच्छी नही है, लेकिन उस दिन उनकी एक और उपयोगिता मालूम हुई । सोचा—बस को अभी यहा कुछ रुकना है, तब क्यो न बाजार देख ले । डाकघर भी तो है । यात्रा का पहला पत्र लिखना उचित ही होगा ।

यात्रियो से परिचय करने मे यशपालजी कुशल हैं । गप-शप मे सलग्न हो गये । तबतक बस और ड्राइवर के तैयार होने की सूचना भी आ गई । फिर आगे चल पडे । चढाई-ही-चढाई है । इधर-उधर गहरी घाटिया, उनके तल से आरम्भ होनेवाले खेतो की सीढिया, जो शिखर छूने की स्पर्धा मे ऊपर उठती चली जा रही है । लेकिन बस मे उतार-चढाव का क्या रस ! बैठे-बैठे थक जाते हैं । कुछको मतली भी आने लगती है । अपना-अपना स्वभाव है ।

आगर खाल[1] तक पहुचते-पहुचते क्षुधा जाग आई। वहा विकते गरम-गरम आलू-छोलो की गन्ध नाक मे भर आई थी, और समुद्र-तल से साढे पाच हजार ऊपर भी तो पहुच चुके हैं। इस ऊचाई से आस-पास के वृक्ष और भी सुदर दिखाई देते हैं। वन-प्रदेश मे मेज-कुर्सी कहा? पत्ते है, कागज हैं। जो भी मिला, उसपर पूरिया और आलू-छोले लिये और इधर-उधर खेत की मेड पर बैठकर खाने लगे। पिकनिक का आनद आ गया। पानी के लिए सरकारी नल हैं, झरने भी हैं।

आगे काफी दूर तक उतार-चढाव था। चीड के जगल स्वास्थ्यकर हैं ही, सुदर भी खूब लगते हैं। इसी मार्ग पर एक प्रपात भी है। नाम उसका सुदर है—टिपली प्रपात। पानी २५० फुट की ऊचाई से गिरता है। उसका रजतवर्णी उच्छवास जैसे किसीसे मिलने-भेंटने को व्याकुल हो। उसकी यह व्याकुलता पथिक के मन को गुदगुदा देती है।

वर्षा-ऋतु मे यह व्याकुलता बडी उग्र हो उठती है। हमारा वाहन यत्र है, मार्ग को लाघते देर नही लगती। शीघ्र ही चवा पहुच गये। लेकिन बीच मे एक स्थान आता है नागिनी। वहा गेट है। रुकना पडा। उसी बीच मे इस नाम का रहस्य खोज निकाला। पास ही एक गुफा मे किसी समय एक भयानक नागिन रहती थी। गडरियो के लिए वह जैसे आतक थी। उनकी भेड-बकरिया खा जाती थी। तब एक दिन साहस करके एक गडरिये ने उसे मार डाला, लेकिन नाग तो देवता होता है। तब नागिन हुई देवी। उसका अग्नि-सस्कार बडी धूमधाम से किया गया। यही नही, उसकी स्मृति मे प्रति वर्ष मेला लगता है और इस स्थान का नाम भी नागिनी हो गया है। इन अध-विश्वासो से मनुष्य कभी मुक्त नही हो सका है। यहा से मसूरी के लिए मोटर का मार्ग बन रहा है। श्रमदान से ही लोगो ने १६ मील लबी सडक तैयार कर दी। बस्ती वैसे काफी बडी है। हाई स्कूल, ऊन का केन्द्र, अस्पताल, सभी कुछ हैं। पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत इधर काफी काम हो रहे है। इस नगर मे उन वीरो का स्मारक भी है, जिन्होने

---

१. खाल=दर्रा

द्वितीय महायुद्ध मे भाग लिया था। जौल गाव भी यहा से बहुत दूर नही है। स्वाधीनता-सग्राम के शहीद देव सुमन की वह जन्मभूमि है। मन-ही-मन उस वीर को हमने प्रणाम किया। प्रथम महायुद्ध मे जिस गोवरसिंह नेगी ने विक्टोरिया क्रास पाया था, उस महावीर का गाव मौजा भी पास ही है। देव सुमन और गोवरसिंह नेगी दो ऐसी शक्तिया है, जिन्होने परस्पर-विरोधी क्षेत्रो मे अमरता प्राप्त की। लेकिन मूलत उनकी शक्ति का स्रोत एक ही था। उनकी निर्भीकता ने उन्हें प्राणो के मोह से मुक्ति दी। जो निर्भय है, वही मुक्त है। जो मुक्त है, वह पाप कर ही नही सकता।

यही पर १ मील दूर गाधीजी की परम शिष्या मीराबहन आश्रम बनाकर रहती हैं।[1] नाम है पक्षी-कुज। अहिंसा और सौंदर्य दोनो जैसे इस नाम मे पूजीभूत हो गये हैं। पशुओ से मीराबहन को बहुत प्रेम है।

चबा से चलकर ५ मील पर रायखेल के सुदर झरने के पास बस फिर रुकी। मार्ग अब टेढा-मेढा हो चला था। अत्यत विषम और पथरीला तो है ही, सकीर्ण भी है। देखने पर भय लगता है। बीच-बीच मे बस उछल पडती है। लगता है, जैसे दूसरे ही क्षण हजारो फुट नीचे घाटी मे जा गिरेंगे। लेकिन चालक के हाथों मे जैसे सिद्धि है। हमारा भय केवल कल्पना बनकर रह जाता। इस झरने पर केवल बस ने ही पानी नही पीया, हम लोगो ने भी अपनी प्यास शात की। ड्राइवर दयालसिंह मजेदार व्यक्ति है। मार्ग मे न जाने कितनी कहानिया उसने सुनाई होगी। झरने के जल की प्रशसा करता हुआ बोला, "बाबूजी, यह झरना ४०० बरस पुराना है। किसीने रातो-रात भूतो को सिद्ध करके इसे निकाला था।"

हम सहसा हँस पडे, "सच! भूतो को सिद्ध किया था!"

वह बोला, "हा साहब, इसीलिए तो भूतो का बावला (नहर) कहलाता है, नही तो इन चट्टानो मे पानी कहा!"

एकाएक मन बहुत दूर पहुच गया। जल के अभाव मे जनता को

---

१. अब वह विलायत चली गई।

तडपते देखकर किसी भगीरथ का मन व्यथित हो उठा होगा। उससे भी पहले इस स्रोत का पता लगाते-लगाते कितने ही व्यक्ति गल गए होंगे। तव ये मार्ग भी तो कितने विकट रहे होंगे। लेकिन वह साहसी इन विकट मार्गों को पार करता हुआ एक दिन स्रोत के पास जा निकला होगा। भोली जनता कैसे मान ले कि आदमी विना दैवी सहायता के ऐसे सकट का सामना कर सकता है। सहारे के बिना मनुष्य जीना ही नही चाहता। ईश्वर भी क्या सहारा ही नही है। अपने अहम् को चूर-चूर कर देने के प्रयत्न मे ही क्या वह ईश्वर तक नही पहुच गया है। कौन जाने। इस समय तो ग्रीष्म का प्रकोप वढता ही जा रहा है। लेकिन पहाडी ढलानो पर वने खेतो की, मानव के भाग्य की सीढियो जैसी, अनेकानेक मजिलें और गगा की लहराती-इठलाती धाराए हमे किसी और ही स्वर्ग मे खीचे लिये जा रही हैं। बीच-बीच मे सुदर गाव भी दिखाई दे जाते हैं। कही-कही पहाडी नहरो से क्यारियो मे पानी भर रहा है। धान लगाने के लिए उन्हें तैयार करते हुए स्त्री-पुरुष एकचित्त कार्य मे व्यस्त हैं। प्रकृति के धानी आचल से हरे-हरे धान के पौधे ऐसे लहरा रहे हैं, जैसे प्रिय के स्पर्श से शरीर पुलक उठता है।

चबा से टिहरी १२ मील है। टिहरी से दो मील इधर ही अठोर (चौपाटिया) का मोड आता है। यहा गेट है। यही से हमारी वस धरासू की ओर मुड गई। कुछ ही दूर पर समतल भूमि का विस्तृत क्षेत्र है। सकीर्ण पथरीले विपम पहाडी मार्गों की चढाई-उतराई के वाद समतल भूमि आखो को कैसा सुख पहुचाती है, यह अनुभव करने की वात है। यह सुख क्षणिक है। इसीलिए और भी सघन है।

कुछ और आगे वढते है। ऋषिकेश छोडने के वाद भागीरथी अब फिर दिखाई देने लगी है। बस ऊपर-ही-ऊपर उठ रही है। सैकडो फुट नीचे घाटी मे भागीरथी के नाना रूप मन को मोह लेते है। कही सकरी, कही विस्तार फैलाती, कही सर्पाकार गति, कही अर्थ-वृत्त बनाती। क्षण-क्षण की यह नवीनता मन को जैसे सहला जाती है। पीपल चट्टा कब पीछे छूट गई, पता ही नही लगा। भल्डियाना पहुचकर रुके, चाय पी फिर छाम और नगुन चट्टियो को पार करते हुए धरासू पहुच गये।

बीच-बाच मे बस कही-न-कही रुक जाती थी। कभी गेट के लिए, क्योकि पहाडी सकरे मार्गों पर दोनो ओर का यातायात एकसाथ सभव नही होता। एक ओर से जब बसे आ चुकती है तब दूसरी ओर से छूटती हैं। इसके अतिरिक्त यत्र होने पर भी इन विषम मार्गों पर चढने-उतरने मे बस को भी तो कष्ट होता है। और यदि हम समझ सकें तो इजन की आवाज उस कष्ट की पीडा को निरतर व्यक्त करती रहती है।

धरासू पहुचे तब सध्या के चार बज रहे थे। बस से उतरते ही भागीरथी के तट पर जा खडा हुआ। मेरा चचल मन भी उसके तीव्र वेग की तरह दौडने लगा। लकडी के अनेकानेक तख्ते बहते चले आ रहे थे। कभी भवर मे पडकर नाचने लगते, कभी तीव्र धारा मे बेबस-से बह जाते, कभी किनारो से आ टकराते, लेकिन फिर भँवर मे लौटकर चक्कर काटते हुए आगे चले जाते। सहसा भवसागर के पौराणिक रूपक की याद आ गई। क्या यह तख्ते असख्य आत्माए ही नही हैं या ये वे सैलानी है, जिनके लिए काल की न अवधि है और पृथ्वी की न सीमा।

कुछ दिन पूर्व तक यही से पैदल यात्रा का आरभ होता था, लेकिन इस वर्ष से बस डुडाल गाव तक जाने लगी है। अभी दिन का अवसान दूर था, इसलिए निश्चय किया कि वही पहुचकर आराम करेंगे, लेकिन ऐसा लगता है कि बस को हमारी योजना पसद नही आई। कुछ दूर चले होगे कि वह रूठ गई। वैसे रूठना उसने टिहरी के मोड से आगे बढते ही शुरू कर दिया था। तेल रुक-रुक जाता था और ड्राइवर को बार-बार उसके प्रवाह को ठीक करना पडता था। लेकिन अब तो उसने खुला विद्रोह कर दिया। कैसा अद्भुत दृश्य है। सकरे पहाडी मार्ग पर पीछे से दो बसे हार्न-पर-हार्न दे रही है। सामने से इजीनियरो की एक टोली बडी जीप लेकर आ गई है और हमारी बस बीच मे अडियल टट्टू की तरह अडी है। ड्राइवर परेशान है। पीछे की बसो के ड्राइवर भी सर खपाकर हार गये हैं, लेकिन रूठी हुई बस मानती ही नही है। पश्चिम में सूय नीचे-ही-नीचे उतरता जा रहा है। शीघ्र ही अधकार हम सबको ग्रस लेगा। आस-पास बस्ती का नाम भी नही है। लेकिन इस सकट के समय पीछेवाली बस के ड्राइवर ने क्या किया? कुछ दूर जाकर वह

वासुरी वजाने लगा । कैसा मधुर स्वर है उसका ? क्षण-भर के लिए सब कुछ भूलकर मेरा मन कही बहुत दूर तक भटक गया । एक कहानी पढी थी । यात्रियो से भरा एक जहाज तूफानी रात मे अचानक टूट गया । मृत्यु-रूपा लहरें यात्रियो से खिलवाड करने लगी । लेकिन किसी तरह दो-तीन यात्री एक तख्ते पर चिपक गये और उस तूफानी सागर की लहरो पर तैरने लगे । सवेरे जिस समय बचानेवाले जहाज ने उन्हे देखा, वे तब भी प्रसन्न मन तैर रहे थे । वे सारी रात तैरते रहे थे, क्योकि सारी रात एक नारी मधुर कण्ठ से गाती रही थी । सगीत योग की उस स्थिति मे पहुचा देता है, जहा मनुष्य केवल आनन्द का ही अनुभव कर सकता है । इस समय हमारा भय भी आनन्द की उसी स्थिति मे पहुच गया था । बीच-बीच मे रुक-रुककर वह गायक ड्राइवर बस को ठीक करने मे भी मदद करता था । लेकिन वह रूठी रानी सगीत क्या समझे ? इसलिए पूर्वत जड बनी रहती । यशपालभाई बोल उठे, "बस चले या न चले, तुम वासुरी वजाये जाओ ।"

आखिर इजन मे स्पदन हुआ । बस चली, जैसे प्राण लौटे । बार-बार पैट्रोल डालते हुए हम आगे बढे । अब तो यही क्रम था कि हर पाच या तीन या एक मील पर बस रुक जाती, ड्राइवर पप करता और आगे बढता । हम लोग भी आनद के सरोवर मे डूब गये थे । जैसे ही बस के रुकने का आभास होता, पुकार उठते, "पपिंग स्टेशन आ गया है । दयाल-सिंह, पप करो ।"

बीच-बीच मे वह घाटी जय-जयकार की अनुगूज से प्रतिध्वनित हो उठती, लेकिन सध्या का अधकार सदा की तरह सहज भाव से छाता आ रहा था । कुछ देर हम मील के पत्थरो को गिनते रहे । फिर वे भी उस अधकार मे खो गये गये । पहाडी सौंदर्य भयानक हो उठा । कही मार्ग चौडा पाकर पीछेवाली बसें धूल उडाती हुई कभीकी आगे निकल गई थी और उन्हीके साथ मौन हो गया था वासुरी का वह स्वर, जो हमारे भयातुर प्राणो मे मोहिनी उडेल रहा था । अब तो हमारे सामने क्षण-क्षण मे आनेवाले चक्रव्यूह जैसे मोडो से भरा वह सकरा पहाडी मार्ग था, जिसके एक ओर चट्टानें सिर ऊचा किये निरीह भाव से आकाश को

निहार रही थी और दूसरी और अतल मे ले जानेवाली घाटिया अधकार के आवरण के नीचे रह-रहकर मुस्करा उठती थीं। एकाएक तभी बस का मार्ग-दर्शक प्रकाश भी बद हो गया और सबकुछ उस घुप्प अधकार के अचल मे डूब गया। भय से त्रस्त हम स्तब्ध हो रहे। धक्-धक्-धुक-धुक...अगला मोड और बस।

तभी पलक मारते इतने समय मे एक दुर्घटना होते-होते बच गई। ड्राइवर ने बडी कुशलता से गाडी को रोक लिया, नही तो निमिष मात्र मे हम समय से पूर्व ही दूसरे लोक मे पहुच गये होते। दूसरे ही क्षण प्रकाश भी लौट आया और हम आशा-निराशा के क्षितिज के सहारे आखिर बरमखाल (गेठला) पहुच ही गये जैसे निर्जीव शरीर मे किसी-ने प्राण उडेल दिये हो! गद्गद् होकर धरती पर पैर रखे, पर जैसे पर्वत प्रदेश के एक शिखर पर पहुचते ही उससे भी ऊचे शिखर सामने आ जाते हैं, वैसे ही यहा भी एक और समस्या सामने आ खडी हुई। यहा न ठहरने के लिए स्थान था, न खाने का प्रबध, दूध-चाय तक नहीं। घुप्प अधेरे मे यात्री सडक पर पडे थे। ऊपर था तारो-भरा रहस्यमय आकाश और नीचे वज्रादपि कठोराणि धरती। ड्राइवर के बार-बार आग्रह करने पर एक चायवाला लडका हमे एक कोठरी दिखाने ले चला। अनुमान से उसका अनुसरण करते हुए हम एक दिशा मे बढे ही थे कि सहसा उस अंधकार मे से एक रोबीला स्वर उठा, "खबरदार, कोई अदर न जाय, हमारा सामान खुला पडा है।"

उस प्रस्तावित कोठरी का मार्ग उनकी कोठरी मे से होकर जाता था। लेकिन तब हमने उनकी चुनौती की चिता नही की। चले ही गये और सकुशल लौट भी आये। कोठरी के नाम पर वह एक पडछत्ती थी, जिसमे युग-युग से चमगादड, साप और बिच्छू रहते आये थे। उनको अप-दस्थ करने की हमारी तनिक भी इच्छा नही हुई। इसलिए निश्चय किया कि यात्रा की वह पहली रात तारो-भरे आकाश के नीचे बिताई जाय। महिलाएं बस के अदर सो सकती हैं और पुरुष नाले के पक्के पुल पर।

कैसा सुमधुर रोमाटिक आरभ था। सन-सन करती पर्वतीय वायु, निपट अधकार पर कैसा स्निग्ध पारदर्शी, तभी तो चट्टानें नाना रूप धारण

करती जा रही हैं। मन मे उर्वर कल्पनाओ का चक्रव्यूह बन चला है और ऊपर आकाश मे बिखरे हुए है अनत तारे और इधर-उधर छिपे हैं चमगादड, साप और बिच्छू। कही साप चढ आया तो . काला रीछ बडा दुष्ट होता है। ओढने के वस्त्र तक उतार ले जाता है। .कही बिच्छू ने आकर डक मार दिया तो काले पहाडी बिच्छू कितने जहरीले होते है। काश, चाय का एक प्याला ही मिल जाता तो थके तन-मन को राहत मिलती। .

धीरे-धीरे सबकुछ स्तब्ध हो चला। कवल मे मुह लपेटे, क्षण-क्षण मे टार्च से घडी देखते हम सब पुल पर एक दूसरे से सटे लेटे थे, सोने का नाटक करते हुए। ५-६ हजार फुट की ऊचाई पर रातें काफी ठडी हो आती है, लेकिन हमे शीत का उतना भय नही था, जितना वन्य पशुओ और सरी-सर्पों का, इसलिए जैसे ही नीद आने को होती हमारा वह भय कभी रीछ का रूप धारण कर लेता, कभी सर्प का। वन के पशु रात को पानी पीने आते हैं। कभी-कभी बस भी आ जाती है, इसलिए बारी-बारी से जागकर नक्षत्र मडल का अध्ययन करते रहे। सप्तऋषि मडल, कृतिका-समूह, रोहिणी, मृगशिरा, श्वान, आर्द्रा और शुक्र, इन सभीसे मेरा पुराना परिचय है। परतु आकाश कितना ऐश्वर्यशाली है, यह मैं इन पहाडी प्रदेशो मे ही देख पाया। मानो विश्व-माता के दुकूल मे असख्य मणि-मुक्ताए जडी हैं। फिर शात होती प्रकृति को देखता रहा। वह स्तब्धता अतर मे उतरने लगी और अतर मे पलकें बोझिल हो ही उठी।

लगभग ५० वर्ष पूर्व काका कालेलकर इसी मार्ग से जमनोत्री गये थे। तब उनके बोझी ने उनसे कहा था, "हम जमनोत्री प्रदेशो मे शायद ही कभी जाते है। इस राढी पहाड के उस पार का मुल्क अच्छा नही है। वहा बहुत खतरा है।"[1]

आज हमारे सामने क्या कम खतरा था। लेकिन खतरा मनुष्य को शक्ति देता है। ४। बजे ही हम तैयार हो गये। डरते-डरते ड्राइवर ने बस को चालू किया। आश्चर्य कि वह तुरत चल पडी। जान बची। चाय के

१ 'हिमालय-यात्रा', पृष्ठ १५०

नाम पर गर्म शर्बत मिला और वह भी कडुवा, लेकिन उस क्षण तो अमृत से बढकर था। तुरत उसे उदरस्थ कर हम बस के अतिम पडाव की ओर उतावली से भाग चले।

बस मे चलने का अपूर्व उत्साह था, लेकिन शरीर अभी पूरी तरह स्वस्थ नही था। दस मील चलने मे उसे लगभग ३ घटे लग गये। लेकिन पर्वत-प्रदेश का भोर, शिखरो से आलिंगन करती स्वर्णिम रश्मिया, शीतल समीर, चीड और बास की नयनाभिराम वृक्षावली, मन पुलक-पुलक उठा। जो रात नरक बन गई थी, वह अब रोमातिक स्मृति का रूप लेकर मन मे बस गई। शरीर मे थकान के चिह्न ज़रा भी न रहे।

: ३ :

पद-यात्रा का श्रीगणेश

बस की यात्रा समाप्त हुई। बोझियो ने अपना सामान उठाया और हम लोग हाथ मे लाठी सभाल, कधो पर झोले डाल, उस पहाडी मार्ग पर उतावली से आगे बढ चले। चलने के पूर्व एक दृष्टि अपने साथियो पर डाली। एक दल अनुभवहीन सरकारी इजीनियरो का था, जो सभवत: अपनी महत्ता प्रगट करने के लिए बडे-बडे ट्रक लेकर बीहड पर्वत-प्रदेश की यात्रा पर निकला था। एक एग्जीक्यूटिव इजीनियर, एक एस० डी० ओ०, दोनो की पत्निया, दो बच्चे और सेवक। एक मारवाडी परिवार था, जो यात्रा-भर अपने मे ही सिमटा रहा। पूर्वी उत्तर-प्रदेश के १५-१६ श्रद्धालु नर-नारी थे। वे जब कभी भी मार्ग मे मिलते तो बडी आत्मीयता प्रगट करते और बस के रोमाचकारी सफर की याद दिलाते। लखनऊ के एक कुलीन घराने की श्रीमती मित्रा भी थी, जो बहुत शीघ्र हमारे दल मे आ मिली और अत तक हमे मा का-सा सुख देती रही।

जैसे-जैसे आगे बढते, प्रकृति का रूप हमको लुभाने के लिए मोहक

होता गया। बस से जिन वस्तुओ को हम आख भरकर देख भी नही सकते थे, उन्हीका अब परस पा रहे हैं। ऊचे-ऊचे शैल-शिखर, हरे-भरे वृक्ष, उछलते-कूदते प्रपात, सगीत मे मग्न पक्षी—ये सब हमारा ही तो स्वागत कर रहे थे। यहा न नगर हैं, न नगरो की यान्त्रिक सभ्यता है। केवल ऐश्वर्यशाली प्रकृति का मनोरम रूप और आनन्द का सतत सान्निध्य। बस के सफर मे जो अवसाद तन-मन पर छा गया था, वह अब तिरोहित हो गया।

यात्री अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उस पहाडी मार्ग पर बिखर गये थे। हम लोग भी धीरे-धीरे दो-दो, तीन-तीन की टोली मे बट गए। आरम्भ मे उतराई थी, उत्साह के कारण दौडते चले गए। कुछ ही दूर गये होगे कि एक वृद्ध को देखा। क्षीणकाय, अर्द्धनग्न, डगमगाते कदम, सिर पर गठरी रखे और नयनो मे विषादभरे वह सामने आ रहा था। सोचा, यात्रा से लौट रहा है। आवेश मे भरकर पुकारा, "जय गगा मैया की ! जय जमना मैया की !"

पर उस वृद्ध ने तो कोई उत्तर ही नही दिया। कुछ दूर पर उसके साथी स्तब्ध-से खडे थे। उनसे पता लगा कि वे लोग यात्रा से लौट नही रहे हैं, जा रहे हैं। एक मील चलने के बाद उस वृद्ध ने अनुभव किया कि वह अपने साथियो के समान तेज गति से नही चल सकेगा, इसलिए उन पर भार न बनकर उसने लौट जाना ही उचित समझा।

आरम्भ मे ही लौटने की बात, अच्छा नही लगा। उससे भी अधिक दुर्बलो को हमने हिमालय से लोहा लेते देखा है। इसलिए माधव ने वृद्ध से कहा, "बाबा, क्या बात करते हो, लौट आओ।"

उसके एक साथी ने कहा, "हम भी यही कह रहे हैं।"

मैं बोल उठा, "बाबा, शुरू में ही जूआ डाल दिया। जरा चलकर तो देखो। जमना मैया ने बुलाया है तो सहारा भी देगी।"

वृद्ध जैसे किसीका सहारा ही चाहता था। एक क्षण ठिठका, फिर नि शब्द लौट आया। आगे के दुर्गम-से-दुर्गम मार्गों पर हमने उसे दृढता से चढते-उतरते देखा। यमनोत्री से लौटते समय उससे भेंट हुई तो गद्गद् होकर बोला, "बाबूजी, सचमुच ही जमना मैया ने हाथ पकड लिया।

श्राप लोग न रोकते तो..."

सहारा तो अपने अतर मे ही होता है। कभी-कभी उसकी याद दिलाना आवश्यक हो जाता है ।

रास्ता काफी ढलान का था। डुडाल गाव तक यही उतार चला गया। अभ्यास न होने के कारण हमारे दल की एक महिला को शुरू मे कई बार बैठना पडा । परतु वह अनुत्साहित तनिक भी नही हुई । प्रकृति की गोद मे बसी इस छोटी-सी चट्टी मे केवल दो-तीन दुकाने हैं। दूध-चाय लेने के लिए कुछ देर हम रुके । यहा से निकलते ही चढाई आरम्भ हो जाती है, लेकिन एक तो यात्रा का आरम्भ, दूसरे प्रात काल का समय, चीड के ऊचे-ऊचे वृक्षो के निकुजो की छाया पैरो को काफी शक्ति देती है । इसलिए कुछ अखरता नही है । जहा बहुत ऊची चढाई है, वहा थोडी-थोडी दूर पर भूमि को समतल कर दिया गया है। कही-कही उतार की व्यवस्था भी है, इसलिए थकान कम होती है । तभी सहसा हमारे एक साथी ने एक ओर सकेत किया, "वह देखो, वह क्या है ?'

हम सबकी आखें उस दिशा मे घूम गई । हरियाली के बीच एक सफेद-सी रेखा खिची हुई थी । क्या है यह ? इतने मे किसीने पुकारा, "यह देखो, यह यमना मैया हैं ।" तब अनेक कण्ठ एक साथ फूट पडे, "यमना मैया की जय !"

यही है वह काली कालिन्दी, जो सूर्यसुता और यम की भगिनी कहलाती है, जिसके तट पर मोहन ने रास रचाये थे, जिसके तट पर शाहजहा की आख का आसू विश्व का अद्भुत सौन्दर्य ताज खडा है, जिसके तट पर अहिसा का महान उद्घोषक गाधी सोया हुआ है, जो प्रयागराज मे अपनी छोटी बहन गगा मे समा जाती है । विक्टर ह्यू गो ने यूरोप की किसी नदी का वर्णन करते हुए एशिया की नदियो को 'प्राचीन काव्य गाथामयी' कहा है । यमुना न जाने कितने काव्यो की, कितनी गाथाओ की जननी है । कई क्षण तक उसी काव्य गाथामयी, नीलवर्णा, क्षीण-काय, स्वच्छ शात यमुना को देखता रहा । न अभी जल-विस्तार है, न विस्तृत रेतीले तट है। मानो कोई सुदृढ शरीरवाली पर्वतीय बाला प्रीतम की दृष्टि नयनो मे भरे, आतुर-सी ऊचे-नीचे मार्गो पर मुक्त

भाव से चली जा रही है। हृदय पुलक-पुलक आया और यह पुलक हमारे पैरो की गति वन गई।

कुछ दूर सिमली चट्टी के पास एक सुन्दर प्रपात है। उसके शीतल जल मे हाथ-पैर धोकर वडा आनन्द आया। पर वही असावधानी के कारण विच्छू वूटी का स्पर्श हो गया। देखते-देखते शरीर का वह भाग रक्तवर्ण हो उठा और अग्नि दहक आई। काफी देर तक कष्ट हुआ। सूजन और लालिमा तो दो दिन तक वनी रही। अज्ञान के कारण ही ऐसा हुआ, नही तो इसी वूटी की जड मे एक घास होती है, जिसका रस लगाने से वह दश तुरत दूर हो जाता है।

सिमली चट्टी का महत्व इस कारण भी है कि वह दो यात्राओ का सधि-स्थल है। वाईं ओर का मार्ग यमनोत्री को ओर दाईं ओर का गगोत्री को जाता है। असावधानी के कारण कुछ यात्री मार्ग भटक जाते हैं। अभी तक हम लोग केवल दो मील चले थे। ढाई मील पर गगानी चट्टी है। निश्चय किया कि पहला दिन होने के कारण दोपहर का भोजन और विश्राम वही किया जायगा। तीसरे पहर आगे की यात्रा आरंभ होगी। ६॥ मील पर जमना चट्टी है, वही रात का पडाव डालेंगे।

कुछ ही आगे वढे होंगे कि छोटे-छोटे वच्चो ने आ घेरा। हाथ पसार-कर गिडगिडाते हुए वे कहते थे, "ओ साहव, ओ सेठ, पैसा दो। सुई दो, वटन दो।"

वे एक वार वोलना शुरू कर देते तो रुकने का नाम नही लेते थे। मन को यह सव अच्छा नही लगा। लेकिन गरीवी, फिर तीर्थ-स्थान, मागने को जैसे वे विवश हैं। जिस देश का मनुष्य मागने को विवश कर दिया जाता है, उस देश को सभ्य और सुसस्कृत कहलाये जाने का अधिकार नही रह जाता। फिर भी उन्हे कुछ-न-कुछ देना ही होता है। वे अर्ध-नग्न निरीह वच्चे अतर मे करुणा जगा ही देते हैं।

आगे का मार्ग सुगम था। गगानी पहुचने मे वहुत देर न लगी। जो जमना दूर से शान्त दिखाई दे रही थी, वह अव उछलने-कूदने लगी। कही जल गहरा होता था तो कही पत्थरो से टकराकर श्वेत वर्ण के फेन पैदा करता था। गगानी भी छोटी-सी पहाडी वस्ती है। प्रकृति इधर जितनी

रूपसी है, मनुष्य और बस्तियां उतनी ही गन्दी हैं। काली कमलीवाले की धर्मशाला से सटी कुछ दुकानें हैं, कुछ दूर पर एक डाक-बगला है। हम लोगो ने वहा स्थान पाने का प्रयत्न किया, लेकिन इजीनियर लोगो का दल पहले ही वहा आ गया था। इसलिए धर्मशाला मे ही डेरा डालना पडा। भीड बहुत थी, फिर भी एक कोठरी पाने मे सफल हो गये। स्नानादि करके भोजन बनाया। खाया और कुछ देर आराम किया। सोचा, गगोत्री जाने के लिए यहा लौटना आवश्यक है, तो क्यो न अनावश्यक सामान यही छोड दिया जाय। भार जितना कम होगा, मार्ग उतना ही सुगम हो जायगा।

तभी देखा, हमारी कोठरी के सामने ५०-५५ वर्ष की आयु का एक व्यक्ति माथे पर सिंदूर का टीका लगाये और दाढी बढाये बैठा है। वह यमनोत्री से वापस आ रहा था, इसलिए कुतूहल और भी बढा। एक साथी ने पास जाकर पूछा, "आप सकुशल लौट आये है। आपको बधाई। अब आगे का मार्ग कैसा है ? क्या चढाई सचमुच बहुत कठिन है ?"

उत्तर मे उन वृद्ध सज्जन ने मार्ग की कठिनाइयो का ऐसा विशद वर्णन किया कि हम चिन्तातुर हो उठे। अतिशयोक्ति का मोह बहुत कम व्यक्ति छोड पाते हैं। बोले, "यमराज को जीतना जितना कठिन है, यमनोत्री पहुचना भी उतना ही कठिन है। आखिर बहन ही तो है। चलते-चलते पैरो मे फफोले पड जाते हैं। सास रुकने लगती है।"

साथी ने पूछा, "हम जा सकेंगे कि नही ?"

वह बोला, "क्यो नही जा सकेंगे। अवश्य जाइये। परंतु चढाई सख्त है। बहुत तडके और बहुत धीरे-धीरे पार कीजिये।"

जान-मे-जान आई। कुछ और यात्री इसी तरह सुख-दुख की बातें कर रहे थे। एक सज्जन विधवा पुत्रवधू को लेकर आये थे। दो साल पहले उनका जवान बेटा मर गया था। उसीकी याद करके उनकी आखे भर आईं। तभी अचानक क्या देखता हू कि सन्यासी वेशधारी वह वृद्ध भी फूट-फूटकर रोने लगे। एकाएक हम सकपका गये। फिर साहस करके कहा, "आप तो ज्ञानी पुरुष है। आप इस तरह क्यो रोते हैं ?"

रोते-रोते ही वह बोले, "मेरा भी एक पुत्र था। २६ वर्ष की आयु

मे जाता रहा। उसीकी आत्मा की शान्ति के लिए साधु वेष मे चारो धाम की यात्रा कर रहा हू। उनके आसू देखकर मुझे उसकी याद आ गई।"

उनके दो और पुत्र थे। एक मजिस्ट्रेट और दूसरा प्रोफेसर। लेकिन उन्हे शायद अपने छोटे पुत्र से बहुत स्नेह रहा होगा, इसीलिए उसकी स्मृति उन्हें शात नही होने दे रही थी। वहुत देर वाद उनका रोना बद हुआ। इन यात्राओ मे न जाने कितने सगी-साथी मिल जाते हैं। दुख-सुख की क्षणिक बातो के अतिरिक्त उनसे कुछ भी तो परिचय नही होता। लेकिन कभी-कभी यह क्षणिक परिचय मन पर अकित होकर रह जाता है। जैसे मन के आकाश पर नया क्षितिज उभर उठा हो। दृष्टि और चिंतन का रूप ही बदल जाता है। जो अबतक सारहीन दिखाई देता था वही सारगर्भित हो उठता है।

सोचता-सोचता यमुना-तट पर आ निकला। पत्थरो से टकरा-टकराकर यमुना का श्यामल नील जल फेनिल धवल हो उठा था। पास जाने पर उसका उद्वेग स्पष्ट देख सका। मनुष्य के अन्तर मे अक्सर इसी तरह का उद्वेग उठा करता है। प्राणपन से उसे छिपाने का प्रयत्न करने मे बहुत-से मनुष्यो का जीवन बीत जाता है। लेकिन .सहसा दृष्टि कही और चली गई। प्रश्न उठा कि यमुना के जहा प्रथम दर्शन होते हैं, उस प्रदेश का नाम गगानी अर्थात् गगा लाई गई, क्यो हुआ ? एक कथा इधर प्रचलित है। प्राचीन काल मे किसी समय यहा एक ऋषि रहते थे। उनका नाम था—यामुन। यमना-गगा दोनो के प्रति उनकी समान भक्ति थी, इसलिए प्रतिदिन इस दुर्गम राढी पर्वत को पार करके १६ मील दूर गगा स्नान करने जाते थे। शरीर ने साथ दिया तबतक निरतर ऐसा चलता रहा, लेकिन जब शक्ति क्षीण हो गई तो इस भयकर राढी पर्वत को पार करना उनके लिए सभव नही रहा। उस समय उन्होने गगाजी की स्तुति की और पतितपावनी भागीरथी प्रसन्न होकर, वहा यमुना-तट पर श्वेत जल के एक झरने के रूप मे प्रकट हुई। यामुन ऋषि वही स्नान करने लगे।

जाने से पूर्व हम लोग उस झरने को देखने गए। ठीक यमुना के किनारे वह छोटा-सा कुण्ड मछलियो से भरा रहता है। एक छोटा-सा

मन्दिर भी बना है। उसमे यमुना और गगा की मूर्त्तिया है। कहते हैं, राढी पर्वत के उस पार गगा मे उसका स्रोत है। नही मालूम, यह कथा सत्य है या असत्य, लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि जिस तपस्वी ने इस स्रोत को खोज निकाला होगा, वह सचमुच ही साहसी रहा होगा। कालान्तर मे लोग उसका नाम भूल गये और यमुना-तट पर रहने के कारण उसे यामुन ऋषि के नाम से याद करने लगे।

मन-ही-मन उस तपस्वी को प्रणाम किया और आगे बढे। ३ बज चुके थे। सूर्य पश्चिम की ओर काफी नीचे उतर चुका था और हमे अभी ६।। मील पहाडी मार्ग पर और चलना था।

: ४ :

नए स्वर्ग की रचना

कुछ ही दूर आगे बढे होगे कि सहसा क्या देखते हैं, शिखर के वनों मे आग लगी हुई है। हमारे पथ के एक ओर यमुना थी, दूसरी ओर ऊचे पर्वत। ऊपर से होकर धुआ बादलो की तरह हमारे ऊपर छा गया। तीव्र धूप, चड-चड का सर्वत्र व्याप्त शब्द और निरन्तर हो रही पाषाण-वर्षा के कारण वह पथ निरापद न रहा। कही-कही तो आग पथ के ऊपर से होकर यमुना तटवर्ती वृक्षो तक पहुंच गई थी। हमारा दल टोली मे बटकर चल रहा था। सबसे आगे थे यशपाल और मैं। सहसा पत्थरो की बौछार आई। ठिठककर देखा, सामने यमदूत मुस्कराते हुए खडे हैं। लेकिन इसी कारण क्या लौट जाना होगा ? नही, यात्रा का सकल्प लेकर निकले और वह सकल्प पूरा होगा। तब सहसा एक सांस भागकर पथ के उस दुर्गम भाग को पार कर लिया। उसी क्षण एक विशालकाय पाषाण-खण्ड घनघोर शब्द करता हुआ हम दोनो के बीच मे आ गिरा। अनेक छोटे-बडे पत्थर सिर के ऊपर से होकर पथ के उस ओर बिखर

गए । काल और स्थान की गणना मे विधि से जरा भी असावधानी हो जाती तो लेकिन हो क्यो जाती ? हमे अपने गन्तव्य स्थान पर सकुशल पहुचना निश्चित जो था । शेष मार्ग कैसे पार किया, उसकी याद करके आज भी रोमाच हो आता है । पीछे आनेवाले साथियो मे से एक के बिल्कुल पीछे की ओर जलते हुए पेड का बडा-सा तना बडे धमाके के साथ आ गिरा । 'भागो' 'भागो' की अनुगूज उस वन प्रान्त मे दूर-दूर तक सुनाई दी । लेकिन एक पहाडी बन्धु ने मुस्कराते हुए कहा, "बाबूजी। यहा तो यह सब होता ही रहता है । जल्दी-से-जल्दी निकल जाइये, सोचिये मत । रुकिये भी नही ।"

लेकिन मेरा मन तो सोचने के लिए हठ कर रहा है । परिस्थिति, काल और स्थान सभी तो जीवन का दृष्टिकोण बनाने मे योग देते हैं । इसीलिए जो मेरे लिए आश्चर्य है, वही मेरे पर्वतीय बन्धु के लिए सहज है । तब शाश्वत क्या है, सत्य क्या है, सभी कुछ सापेक्ष है । इन वनो मे आग लग जाना सहज है और जब आग लग जाती है तो वृक्ष जल उठते है । तब उनके सहारे ठहरे हुए पत्थर अनायास ही नीचे सरक आते हैं । दुर्गम ढलानो पर उनकी गति भी भयकर हो उठती है । .

एक मील पर एक दूकान थी । वहा हमने चाय पी । यहा से फिर चढाई आरम्भ हो जाती । जितनी दूर देख सकते थे, पहाड के किनारे-किनारे रास्ता ऊपर-ही-ऊपर बढता जा रहा था, जैसे आकाश मे खो गया हो । लेकिन जितनी कठिनाई सामने आती थी, कदम उतने ही दृढ होते थे । कुछ साथियो के पास कैनवेस के जूते होते हुए भी पैरो मे फफोडे पड आये थे । चढाई के कारण सास फूल रही थी, परन्तु दृष्टि आगे की ओर ही थी । दिन का अवसान भी आ पहुचा, लेकिन मार्ग है कि समाप्त ही नही हो रहा ! हम दोनों की गति तेज होती है और हर मोड के बाद जमना चट्टी की कल्पना उभर आती है । सचमुच एक मोड के पीछे ही वह छिपी थी । जब उस बस्ती मे प्रवेश किया तो ७॥ बज चुके थे । अधेरा घिर आया था ।

सदा की भाति तुरन्त धर्मशाला मे पहुचे, लेकिन वहा तो तिल धरने के लिए भी जगह नही थी । भीड देखकर चौकीदार भी भाग खडा हुआ

था। पूछते-पूछते, पुकारते-पुकारते थक गये थे। अधकार मे ठीक-ठीक दिखाई भी नही देता था। कुछ लोग पैसे देकर खुली दुकानो मे ठहर गये थे। कुछ उन दुकानो की छाया के सहारे मुक्त आकाश के नीचे डेरा डाले थे। लेकिन हम थे चौकीदार के नाम पत्र लिये हैरान, परेशान इधर-से-उधर घूम रहे थे। तभी सौभाग्य से सहसा एक पण्डा से भेट हो गई। उन्होने गगानी मे कहा था कि पूजा-पाठ के लिए मुझे साथ ले चलिये। हम ठहरे घुमक्कड। पूजा-पाठ क्या जानें! लेकिन इस समय वह पण्डा जैसे देवदूत बनकर आये थे। बोले, "मेरे साथ आइये।"

बस्ती मे प्रवेश करते समय हमने देखा था कि दाईं ओर ऊचे चबूतरे का एक बडा-सा मकान है। उसमे खच्चर आदि बध रहे थे। उसीके पास एक छोटा-सा घर था। वह घर ठेकेदार केसरसिंह का था। हमको लेकर पण्डा वही पहुचे। पत्नी ने उत्तर दिया, "ठेकेदार घर पर नही है।"

पण्डा बोले, "बाहर तो आओ। ये भले लोग दिल्ली से आये हैं। जगह की तलाश मे घूम रहे हैं।"

यह सुनकर वह बाहर आई। देखा, एक सुदृढ शरीर की कुमायुनी बाला है। टिमटिमाते प्रकाश मे उसका मुख और भी सुदर दिखाई दिया। बोली ऐसी कि जैसे मिश्री घुली हो। सहज स्नेह से उसने हमारा स्वागत किया। यशपालजी अपने स्वभाव के अनुरूप तुरन्त उससे घुल-मिल गये। पास ही उसका बच्चा गोवर्धन बिछौने पर लेटा हाथ-पैर चला रहा था। उसीके साथ वह खेलने लगे। बच्चे को दुलारते देखकर वह हँसमुख कुमायुनी मा गद्गद् हो आई। बोली, "आप हमारी दुकान मे ठहर सकते है, पर वह खुली हुई है।"

मैंने कहा, "ऊपर छत है, दोनो ओर दीवारें है और क्या चाहिए।"

वह हँस पडी और मैं तुरन्त अन्दर चला गया। पाया कि वह जैसी हँसमुख है, उसकी दुकान भी वैसी ही स्वच्छ और लिपी-पुती है, यद्यपि पर्वत प्रदेश जैसी ऊची-नीची है। चार आने प्रति व्यक्ति के हिसाब से देना होगा। कोई चिन्ता नही। थके शरीर को सहारा तो मिला। मन भी आश्वस्त हुआ। अभी बैठे ही थे कि केसरसिंह भी आ गया। एकात मे

ले जाकर पण्डा ने उससे कुछ कहा। वह तुरन्त हमारे पास आया और बोला, "आपसे मैं दो आने प्रति व्यक्ति ही लू गा।"

सारा वातावरण जैसे पलक मारते ही बदल गया हो। कुमायुनी बाला आकर चटाई बिछा गई। कलसा भरकर पानी रख गई। दूध की तलाश मे ठेकेदार स्वय गया। लेकिन वह नहीं मिला। पूरी भी नही मिली, खाने को कुछ भी नही मिला। अब लालटेन जलाकर साथियो की राह देखने के अतिरिक्त और कोई काम हमारे पास नही था। बोझी नही आये थे। सामान के अभाव मे हम नितान्त अवश थे। सौभाग्य से लखनऊवाली माताजी आ गईं और हमारे साथ इसी दुकान मे ठहरी। उनके साथ नौकर भी था। उन्होने कुछ कम्बल निकालकर हम लोगो को दिये।

दूसरे जमना-पार के गाव मे कभी-कभी रोशनी टिमटिमाती तो लगता जैसे टार्च जली। हम पुकार उठते, "वे आ रहे हैं।" पर हमारा पथ तो इस पार था। इसलिए तुरत भ्रम निवारण हो जाता। उस पार के पहाडो पर जो आग लगी थी, वह अब उग्र होकर नाना रूपो मे प्रकट हो रही थी। हमारे पेट की अग्नि भी कम उग्र नही थी। ऐसी स्थिति मे उस भयानक जगल को पार करके सबसे पहले मार्तण्डजी वहा पहुचे। तब ६ बज चुके थे। शेष साथियो और बोझियो को आते-आते ११ बज गये। एक बोझी तो उस रात पहुच ही नही सका। यदि लखनऊवाली माताजी न होती तो हम लोगों पर क्या बीतती, इस सबध मे न सोचना ही अच्छा है। कभी किसीके लिए कबल बिछाती, कभी किसीको कबल उढाती, कभी खाने के लिए नाश्ता निकालती। उस रात सचमुच नारी को अन्नपूर्णा मा के रूप मे देखा। वह हँस-मुख कुमायुनी बाला और यह लखनऊ की वृद्धा, दोनो ने जिस स्नेह की वर्षा हमपर की, वह अनुभव करने की ही बात है।

इसी बीच मे पास के मकान का मालिक घोरपडेजी से बोला, "मेरे पास एक कमरा है, आप चाहे तो देख लें।"

लेकिन जो कमरा उसने दिखाया उसे कमरा कहना नाली के गदे पानी को सुगधित गुलाब जल कहना होगा। उसके एक कोने मे एक

महिला भोजन बना रही थी और चूल्हे से उठता हुआ धुआ शीत के कारण बाहर जाने का मार्ग न पाकर वही जमता जा रहा था। दूसरे कोने मे भैस का कटरा बधा था। उसके मल-मूत्र की गध धुए के साथ एकाकार होकर वहा रम गई थी। मालिक ने कहा, "मैं कमरा साफ करवा देता हू। यह स्त्री भी चली जायगी। कटरा तो बेचारा बच्चा है, एक कोने मे बैठा रहेगा।

लेकिन हम उसका यह प्रस्ताव स्वीकार नही कर सके। बरामदे मे शीत का भय था, लेकिन वायु शुद्ध थी। इस कोठरी मे तो गध और धुए के मारे घुट-घुटकर प्राण देने होगे।

वह रात कभी नही भूलेगी। खुली दुकान, टिमटिमाती हुई एक लालटेन, उसका प्रकाश अधकार को और भी डरावना बना रहा था। कुत्ते निरतर भौंके जा रहे थे। खच्चर रह-रहकर हिनहिना उठते थे। हर आहट पर हम बोझी के पदचाप सुनते। लेकिन सामने का दृश्य अपूर्व था। समूची पर्वत-शृ खला अपनी ही अग्नि से प्रदीप्त हो उठी थी। कितने मनोहारी वर्तु ल, कितने इद्रधनुष वहा निर्मित हो गये थे। मानो एक वार फिर तपस्वी विश्वामित्र ने इन्द्र का मान-मर्दन करने के लिए नया स्वर्ग रचने की प्रतिज्ञा की है। यमुना मैया का स्वर भी सुदूर से उठने-वाले सगीत की तरह गूज रहा था। मोहाविष्ट-सा मैं जैसे स्वप्न लोक मे पहुच गया हू कि तभी मुर्गा बोल उठा। देखता हू, केसरसिंह लालटेन भी उठा ले गया है। टार्च की सहायता से घडी देखी, दो बजे थे। फिर आखे मीचकर सोने की चेष्टा करता हू, परतु मुर्गा निरतर बोले जा रहा है। चार बजे सबको उठाकर ही वह सोया।

लेकिन मैं सोया कहा था। सारा समय उस सुदर ठिठुरती रात को बीतते देखता रहा और अतर मे कल्पना अपना आल-जाल बुनती रही। पौ फटने पर उठ बैठने का नाटक हुआ। यात्रियो का कोलाहल भी आरभ हो गया था। यमुना मैया के जय-घोष से वातावरण गूजने लगा। लेकिन हमे तो अभी अपने बोझी की राह देखनी है। दूसरा बोझी उसे ढूढने गया है। ६ बजे वे लोग लौटे। मार्ग में वह बीमार हो गया था। पतली-पतली नगी टागोवाला यह नेपाली बोझी अत तक समस्या बना

रहा । एक और बोझी हमे लेना ही पडा । रात जब हम स्थान की तलाश मे भटक रहे थे तब एक दुकानदार से मित्रता हो गई थी । वह ठेकेदार था और उसका नाम था युद्धवीरसिंह । निश्चित होकर हम लोग उसकी दुकान पर चाय पीने पहुचे । मैंने कहा, "कहो भाई, युद्धवीरसिंह, अब तक कितने युद्ध जीत चुके हो ?"

वह हँसा । बोला, "साहब क्या कहें, मा-बाप ने नाम रख दिया, नही तो हमने कौन-से युद्ध जीते हैं । चाय पिलाते हैं और घास खोदते हैं।"

युद्ध न जीते हो, लेकिन ग्राहको का दिल जीतना वह अवश्य जानता था । बाबा तुलसीदास कह गये हैं—

तुलसी इस ससार मे, भाति-भाति के लोग ।
सब से प्रेम निभाइए, नदी, नाव सजोग ॥

युद्धवीरसिंह इसी नीति का उपासक था । बडे प्रेम से उसने चाय पिलाई और हम लोग आगे बढे । अब मार्ग और भी कठिन चढाई-उतराई का था । कही-कही तो दिल काप जाता था । पुल निरे काठ के, भुजाहीन, बीच मे पहुचने पर ऐसे हिलें कि अब गिरे, अब गिरे । उस समय नीचे नदी मे देखने पर धरती घूम-घूम उठती । लेकिन न जाने किस अनादि काल से कोटि-कोटि मानवो के चरणो ने इनसे भी भयकर पुलो पर से यमुना मैया को पार किया है । एक ऐसे ही पुल को देखकर एक साथी बोल उठे, "कितना खतरनाक पुल है ?"

लेकिन आगे चलकर इससे भी भयकर पुलो को हमने पार किया । तब जान पाये कि यमुना चट्टी का वह पुल अच्छे पुलो मे से है ।

क्षण-क्षण मे चढाई उग्र हो रही है । इधर का पहाड गिर गया है । उसीमे से जो पथ निकाला है, वह तो आकाशगामी है । निरन्तर रपटने का भय त्रस्त किये रहता है । अब बराबर यमुना के किनारे-किनारे चल रहे हैं । कभी समतल तट, कभी विषम ऊचे शिखर, उन पर से यमुना की क्षीणकाय धारा घाटी मे तेजी से बहती हुई बडी सुंदर दिखाई देती है । ढलानो पर बने छोटे-छोटे गाव बडे प्यारे लगते हैं । उस पार जाकर मार्ग फिर सुरम्य हो उठा है । चीड के गगनचुम्बी वृक्ष हृदय को आनद से पुलकित कर रहे हैं । इन घने वनो ने यहा के पर्वतो को इतना आच्छा-

दित कर रखा है कि उनका अस्तित्व-बोध केवल पेडो की ऊंचाई से ही होता है।

धीरे-धीरे उतरते ओजरी गाव पहुच गये। खूबानियो से लदे अनेक पेड वहा देखे। मन ललच आया, लेकिन तभी एक मक्खी को देखा, जो अत्यन्त विषैली थी। एक साथी के हाथ मे उसने काट लिया। निमिष मात्र मे फफोला उठा। फूट जाने पर भी कई दिन तक उसमे खुजली होती रही। एक पहाडी बन्धु बोले, "कोई दवा काम नही करती। बस, पद्रह दिन मे अपने-आप ही ठीक हो जाता है। ये मक्खिया पैरो पर खास तौर से हमला करती हैं, इसलिए ऊचे मोजे और पतलून-पाजामा पहननेवाले बच जाते हैं।"

हम यहा नही रुके। ६। बजे तक स्याणा चट्टी पहुच गये। नए पडाव पर सबसे पहले पहुंच जाना, फिर निवास और भोजन की व्यवस्था करना, यह काम यशपाल और मेरे अधिकार मे था। इसलिए हम लोग तेज चलते हैं। हल्केपन के कारण मैं ऐसे चलता चला जाता हू, जैसे सदा पहाडो पर चढता आया हू। लेकिन जैसे ही हम चट्टी के पास आये, देखते क्या हैं कि हम आकाश मे है और चट्टी का विस्तार नदी के उस पार पाताल मे फैला पडा है। उस क्षण आकाशचारी होने का गर्व हो जाना स्वाभाविक था। पर आगे की ढाल इतनी गहरी थी कि लाठियो का सहारा भी असमर्थ हो रहा। एक बार फिर काठ के डगमगाते पुल को पार किया और फिर कुछ ऊपर चढकर धर्मशाला मे पहुच गया। कभी घाटियो का विस्तार, कभी चढाव, कभी उतार सामने फैलता हुआ, घिरता हुआ, सिमटता हुआ यही रोज देखते हैं।

सयोग देखिये, कमरा मिलने मे कोई असुविधा नही हुई। भोजन बनाने के लिए भी एक दूकानदार अनायास ही तैयार हो गया। साथ मे महिलाए हैं, पर वे भी तो थक जाती है, कुछ अधिक ही थकती हैं। खाना बनाने का भार उनपर डाल देना क्या पुरुष की अनधिकार चेष्टा नही है। उनको अपने समान मानकर भी हम सस्कारवश अधिकार देने मे कजूस हो उठते हैं। इसलिए जहा भी भोजन बनाने की सुविधा हो जाती है, अच्छा लगता है। और भी अच्छा लगता है कि हमारे व्यक्तित्व टकराने

से वच जाते हैं। इतने व्यक्तियो के रहते कभी-कभी चाय के प्याले मे उफान आ जाना अस्वाभाविक नही है।

धीरे-धीरे साथी लोग आने लगे। कई दिन वाद दाढी वनाने का अवसर मिला। वडा हलकापन महसूस किया। इन वीहड मार्गों पर भी मन इतना भावुक हो उठता है। बोझी लोगो की आन्तरिक इच्छा उस दिन और वढने की नही थी। कहने लगे, "साहव, आगे प्राणलेवा चढाई है।"

मैंने कहा, "कोई चिन्ता नही। आज हमे हनुमान चट्टी पहुच जाना है। इसलिए जाना ही होगा। यमुना मैया भी तो पुकार-पुकारकर कह रही हैं, "चरैवेति चरैवेति।" तब फिर हम क्यो रुकें।"

भोजन, विश्राम के अनन्तर हम चल पडे।

५ :

"सरकार, अभी इसी पार"

चलने से पूर्व हमारी भेंट एक नेपाली दल से हुई। वह जमनोत्री से लौट रहा था और स्वभावत. नेपाल के नये मन्त्रिमण्डल के सगठन के वारे मे जानने को वहुत उत्सुक था। इन प्रदेशो मे आकर यात्री शेष ससार से लगभग बिछुड ही जाते हैं। सामयिक चिताओ मे मुक्ति मिल जाना अच्छा ही है, लेकिन फिर भी जनतन्त्र के युग में पूर्ण मुक्ति पा लेना असम्भव हो गया है। नेपाली दल के अधिकाश सदस्य बहुत वर्षों से बनारस मे रहते आ रहे हैं। दल के नेता श्री कोषराज शर्मा तो पचास वर्ष से वही रहते हैं। हमारे पास पान देखकर उनका मन ललच आया। विनम्र शब्दो मे वोले, "वनारस छोडने के वाद पान नही खाया, दो बीडे छोड जाइये।"

हमारे दल मे भाभीजी ही पानो की प्रेमी थी। ब्राह्मणो मे उनकी

भक्ति उससे भी अधिक है। इसलिए बडे आदर के साथ उन्होने नेपाली दल को पानी की भेंट की। दवा भी उन्होने चाही और वह उन्हे मिल गई। बडी देर तक वे लोग भारत-नेपाल की बातें करते रहे। चलते समय जब चढाई की बात आई तो उन्होने हमे उत्साहित ही किया। ब्राह्मण थे, इसलिए आशीर्वाद देते हुए बोले, "निश्चय ही मार्ग कठिन है, पर साहसियो के लिए हर कठिनता सरल हो रहती है।"

इस दल की दो नारियो की याद अब भी आती है। एक थी उनमे किशोरी। वह स्नातिका थी। बोलती तो शब्द कम, भाव अधिक रहते। अत्यत विनम्र, शालीन और आकर्षक, जैसे सिहल द्वीप की पद्मिनी इन बीहड मार्गों पर किसी राजकुमार की खोज मे आ निकली हो। दूसरी नारी एक प्रौढ विधवा थी। वह तपस्विनी प्रायः मौन ही रहती। धर्म-भीरु इतनी थी कि उस दिन रजस्वला हुई तो धर्मशाला की दरी पर भी पैर नही रखा। कपडे को छूना वर्जित है। हमारे कमरे के सामने दरी बिछी हुई थी और उसको लाघकर ही वह अपने कमरे मे जा सकी। इसलिए जब-जब वह आती, हमे विवश होकर दरी समेटनी पडती। सस्कार मनुष्यो को किस प्रकार जकड लेते है, उसका वह प्रतीक थी।

सस्कार मेरे मन मे भी तो थे। नारी-सौंदर्य को हम क्यो देखना चाहते हैं। क्या देह के प्रति आकर्षण है। न, अपने भीतर की वासना सस्कार बनकर मन को प्रेरित करती है। प्रकृति की विराट पवित्रता के समुख वासना रूपातरित हो, इसीलिए मनुष्य हिमालय मे शरण खोजने आता है।...

आगे का मार्ग सचमुच बहुत कठिन था। प्रारभ मे ही पाच फर्लांग की अत्यत कडी चढाई से लोहा लेना पडा। पर्वत प्रदेश के दोपहर की धूप और शरीर पर छाया हुआ अन्न का अवसाद, एक चढाई पूरी करते, दूसरी सामने उभर उठती; एक मोड समाप्त होता, दूसरा सामने दिखाई देने लगता। तब हृदय की गति जैसे रुक जाती। पाच फर्लांग पाच मील बन गये। लेकिन जैसे ही उनका अत हुआ, हम एक अत्यत सुरम्य प्रदेश मे पहुच गये। मीलो के विस्तार को समेटे देवदार के मनोरम वृक्ष मानो हमारे स्वागत मे ग्रीवा उठाये खडे थे। धरती पर चारो ओर मखमली हरीतिमा बिछी हुई थी। आकाश मे मादक सुरमयी घटाए घिर आने

लगी। एक ओर हरे वन प्रातर में देवदार के गगनचुंबी कुज, दूसरी ओर वनवासी श्वेत गुलाब की लताओ पर खिले पुष्पो की सुगध, नाना औषधियो का द्रुम-दल, निरतर सगीतमय रजतवर्णी झरने, आखें भर-भर उठीं। तपोवन और कैसा होता होगा? पक्षी चहक रहे हैं। नीचे से यमुना का शाश्वत सगीत मुखर हो रहा है। मेरा लालची मन सोचने लगा, कैसा अच्छा हो कि घर-घर मे हैलीकौप्टर हो और शहर के लोग पिकनिक के लिए यहा आ सकें। कैसा है यह देवदार का शात, भव्य, ऊपर को उठता, नुकीली अगुलियोवाला गर्वोन्नत वृक्ष, मानो देव-मदिर का कलश हो।

उस सुरम्य मार्ग पर मानो हमारे पख लग गये हो। लेकिन यह क्या? यह बच्चों का स्वर कहा से आ रहा है? "ओ सेठ, पैसा लाओ, ओ सेठ, सुई धागा लाओ, ओ सेठ, बिन्दी लाओ।" नद-कानन में ये भिखारी कैसे! कोमल आयु के इन बच्चो को भीख मागने के लिए किसने विवश किया? साधु लोग चाय मागते हैं, स्त्री-पुरुष दवा मांगते हैं। यहा रोग बहुत हैं। इस वर्ष विशेष रूप से बच्चो को खून आने की बीमारी उग्र हो उठी हैं। यह सौंदर्य, ये रोग और ये अभाव, कब मनुष्य इनसे मुक्ति पाकर सही अर्थों मे इस दैवी सौंदर्य का उपभोग कर सकेगा? जिस दिन कर सकेगा, उसी दिन हम सचमुच स्वतत्र होगे। तबतक यह स्वतत्रता एक छल है।

सहसा घाटियो को निनादित करते मेघ गरज उठे। प्रकृति नटी का एक नया नयनाभिराम आरभ हो गया। नन्हीं-नन्ही बूदो ने हमारा आलिगन किया। कुछ क्षण पहले जो शरीर प्राणहीन हो चला था, उनका परस पाकर अगम्य उत्साह से भर उठा। वर्षा रानी शृगार-प्रिया प्रकृति के रूप को निखारने आ पहुची। हमको जहा अत्यत सुख मिला वहा यह चिंता भी सताने लगी कि पडाव पर कैसे पहुचेंगे। मार्ग की दुकान मे शरण ली। लेकिन दो क्षण बाद उसकी छत से भी पानी टपकने लगा। तब छाता लगाकर बैठना पडा। वही पर लखनऊ के तीन युवक मिले। कहा लखनऊ की विश्वविख्यात नजाकत और कहा हिमालय का भयानक मासल सौंदर्य। बेचारो के प्राण कठ मे थे और दुकानदार बेहद बातून, बोले चला जा रहा था और हम लोग धीरे-धीरे चाय पी रहे थे। और वर्षा हुए जा रही थी। वे युवक यमनोत्री से लौट रहे थे। हमसे बोले, "कहा जा रहे हैं

आप ? बडा भयानक रास्ता है। भगवान की बडी कृपा हुई, जो हम बच आये, नही तो प्राण चले ही गये थे।"

एक को ज्वर था, दूसरे को पेचिस, तीसरा घुटने के दर्द से परेशान था। शरीर मे रोग होता है तो मन पर विषाद छा ही जाता है। तभी कडी मे बैठी हुई एक मरणासन्न स्त्री को देखा। बेचारी निपट एकाकी यात्रा करने आई थी। बीमार पड गई। कडीवाले ने कहा, "साहब, कुछ घड़ी की मेहमान है।"

यशपालजी ने पूछा, "इसे कुछ हो गया तो क्या करोगे ?"

कडीवाले ने उत्तर दिया, "करेंगे क्या। इसका कोई साथी होता तो सौप देते। अब तो यमुना मैया की शरण है, उसीको सौंप देंगे।"

धर्मप्राण हिंदू आज भी यही मानता है कि यदि तीर्थ मे प्राण जाते हैं तो निश्चय ही स्वर्ग की प्राप्ति होती हैं। नही जानता स्वर्ग है या नही, लेकिन यदि इस मरने से इस स्त्री को सुख मिलता है तो अधविश्वास ही उसके लिए वरदान है।...

मन मे विचार उमड-घुमड रहे थे, आकाश मे मेघ-मालाए सघन हो रही थी कि दिशाओ को नापती विद्युतमाला का विलास भी आरंभ हो गया। ऊपर राणा गाव दिखाई दे रहा था। यहापर 'शनी महाराज' गाव-देवता के रूप मे पूजे जाते है। शनी की पूजा होती है...। लेकिन नही, अब देवताओ की चिंता नही करूगा। वर्षा तेज हो चली। चलना दूभर हो गया कि सामने एक छोटी-सी चट्टी दिखाई दी। एक दूकान मे घुस गये। लेकिन निर्धन के भाग्य की भाति उसकी छत भी विदीर्ण हो रही थी। पानी से बचने के लिए कभी इधर होते, कभी उधर। अत का कुछ पता नही रहता।

मन का उल्लास शिथिल पडने लगा है। सभी यात्री सिमटकर अदर आ गये है। सामने देखता हू, तीन कुत्ते मुह से मुह सटाकर जैसे समाधिस्थ हो गये हो। गाय भी साये की खोज मे व्याकुल हैं, लेकिन गढ़वाल की नारी पुश्तैनी चिथडो मे लिपटी हुई इस मूसलाधार वर्षा मे भी अपने काम मे व्यस्त है। और बच्चे हाथ फैलाये पुकार रहे हैं, "सेठ, पैसा दो, ओ सेठ, पैसा दो।" लड़किया बिंदी मांगती हैं। सुई-धागे की माग

इधर कम है। पर ये मागते क्यो हैं ? निर्धनता और तीर्थ की आड लेकर दूसरो को दीन बनाये रखना क्या अच्छा है ? क्या सदा इस प्रदेश मे ऐसा ही रहेगा। विज्ञान की प्रगति क्या इसे सह सकेगी। ऐसे अनेक प्रश्न मन मे बार-बार उमड आते हैं। पर उत्तर खोजे भी नही मिलता...।

लखनऊवाली माताजी भी यही आ गई है। और वे लोग तरह-तरह की चर्चाओ मे व्यस्त हो गये। माताजी ने दूकानदार से पूछा, "क्यो भाई, यह राज अच्छा है या पहला अच्छा था ?"

दूकानदार बोला, "अच्छा तो यही है।"

"क्यो ?"

क्योकि अब सडक बन गई है। स्कूल-अस्पताल खुल रहे हैं। कभी-कभी दवा भी मिल जाती है। बच्चे पढने लगे हैं। लेकिन इसके लिए सरकार पैसा हमीसे छीनती है। तरह-तरह के टैक्स शुरू कर दिये हैं।"

यशपाल बोले, "टैक्स न लें तो ये काम कैसे चलें ?"

उसने उत्तर दिया, "जिनके पास पैसा है, उनसे लें। हम तो बहुत गरीब हैं।"

फिर एक क्षण कुछ सोचकर बोला, "लेकिन एक बात है अपना पैसा रहता अपने ही मुल्क मे है।"

असख्य मनुष्य, असख्य विचार ! मेरा ध्यान आज इन बातो की ओर नही है। प्रकृति को निहारना मुझे प्रिय लगता है। शब्द उसमे व्यतिक्रम पैदा करते हैं। तभी पाता हू कि वर्षा धीमी पड गई है। तुरत विदा लेकर आगे बढ चले। वर्षा ने प्रकृति नटी का रूप कैसा सवार दिया है। मार्ग मे कही-कही फिसलन है, परतु सद्य स्नाता हरीतमा बडी प्यारी लग रही है, प्यारे लग रहे हैं मनस्वी शिखर, शात वृक्षराज, चट्टानो को सगीत सुनाते झरने। और कुजू के पटल जो हमारे मार्ग मे बिखर गये हैं और ये पीले फूल, इनपर वर्षा की बूदे कैसे चमक रही हैं मानो प्रकृति सुदरी के पीत दुकूल पर श्वेत मोती टके हैं। यही सब निहारते हर्ष से उमगते, आह्लाद से पुलकते हम सध्या के ६ बजे हनुमान गगा का पुल पार करके हनुमान चट्टी पहुच गये। बादलो के कारण सध्या का अधकार और भी सघन हो आया था। मन कर रहा था कि अब कही आराम से लेटा जाय। लेकिन

स्थान खोजे नहीं मिल रहा था। बडी कठिनता से वहा के वयोवृद्ध चौकीदार पार्रसिह को खोज पाये। और अच्छी जगह देने के लिए मैनेजर का पत्र पढकर सुनाया। बडे धैर्य के साथ, सिर झुकाकर, पार्रसिह ने मैनेजर का आदेश सुना। फिर हाथ जोडकर हँसता हुआ बोला, "बाबू-जी, मैनेजर साहब का आदेश सर माथे पर। पर ऊपर के कमरे सभी भरे हुए हैं। जैसी भी है, नीचे की कोठरी हाज़िर है।"

जिसे उसने कोठरी कहा था, उदार-से-उदार भाषा मे उसे काल-कोठरी कहा जा सकता है। टार्च का प्रकाश भी उसे प्रकाशित नही कर पाया। यशपालजी शतरंज खेलने मे माहर हैं। बहुत दाव फेंके। लेकिन भाग्य मे मात लिखी थी। हमको उस काल कोठरी मे ही ठहरना पडा। यू पार्रसिह बहुत ही जिंदादिल और बदानवाज था। पहाडी लोग जल्द मुरझा जाते हैं और बूढे-से दिखाई देने लगते हैं। अभावग्रस्त प्रदेशो मे आयु की अवधि और भी सिमट जाती है। वह देखने मे काफी बूढा लगता था। मैंने पूछा, "पार्रसिह, इस पार या उस पार?"

हँसकर बोला, "सरकार, अभी तो इसी पार।"

वेतन कुल आठ रुपये मासिक मिलता है। पर घर की खेती है। बेचारा तुरन्त बत्ती लाया। लालटेन मे तेल लाया। दूध लाया और चार आने प्रति व्यक्ति के हिसाब से दो व्यक्तियो के सोने का प्रबन्ध एक दूकान मे कर आया। आज तीन दिन बाद दूध पीने को मिला था, इसलिए दिन मे तीन बार पीया।

घोरपडे और मैं उस परचूनिए की दूकान मे लकड़ी के तख्तो पर सोने गए। चारो ओर आटा-दाल फैला पडा था। उसकी गन्ध मस्तिष्क मे भर उठी। दृष्टि ऊपर गई तो पाया, नाना रूप काठ-कटम्बर टगा हुआ है। चूहे बार-बार चुनौती दे रहे थे, "तुम लोग कौन हो, जो हमारे राज्य पर अधिकार जमा बैठे हो! हम तुम्हे निकाल नही सकते, लेकिन गुरिल्ला युद्ध मे हम अत्यन्त प्रवीण हैं। तुम्हे सोने नही देंगे।"

रात-भर उनकी उछल-कूद और व्यूह-रचना के शोर से परेशान रहे, फिर भी उस काल कोठरी के मुकाबले मे स्वर्ग मे थे, क्योकि पैर फैला सकते थे। उस कोठरी मे इतना सघन अंधकार था कि एक दुर्घटना होते-

होते वची। थोडी देर वाहर उजाले मे घूमने के बाद जब हम अन्दर आये तो क्या देखते हैं कि हमारी कोठरी खुली हुई है और उसके द्वार पर तीन मराठा महिलाए खडी हैं। हम भौंचक से रह गए। अपनी कोठरी तो हम वद कर गये थे। यह खुली तो कैसे खुली ? और ये महिलाए कहा से आ गईं। यशपालजी एकाएक वोले, "यह कोठरी हमारी है। आप लोग इसमे कैसे आये ? खाली कीजिये।"

स्वर के आवेश से वे बहनें हतप्रभ-सी हो गईं। फिर भी साहस करके उनमे से एक ने कहा, "जी, यह कोठरी तो हमारी है।"

मैंने और भी आवेश मे आकर उत्तर दिया, "जी नही, चौकीदार ने यह हमे दी है। आप पूछ लीजिये।"

दूसरी वहन बडी शान्ति से बोली, "हम लोग तो इसमे वहुत देर से हैं। आप देखें, कही चूक हुई है।"

दूसरे ही क्षण मैंने दृष्टि उठाकर देखा तो पाया कि हमारी कोठरी उनके बिल्कुल पास ही है। प्रकाश से अघेरे मे आने के कारण हम उसे देख नही सके। अब तो अत्यन्त लज्जित हुए और भूल के लिए बार-बार क्षमा मागने लगे। वे तीनो बहनें खूब हँसी। यात्रा-भर जहा कही भी मिल जातीं, उस भ्रम की याद दिलाती और खूब हँसती।

सर्दी धीरे-धीरे बढती जा रही थी, पर विशेष नही। अवतक जितनी चट्टिया हमने देखी थी, उनमे यह सबसे रमणीक थी। हनुमान गगा ने ऊचाई से आकर और चट्टानो के योग से एक विशाल प्रपात का रूप धारण कर लिया है। विपुल जलराशि और उसके तीव्र वेग की ओर देर तक देखना असम्भव हो जाता है। वैसे भी हम ७१०० फुट की ऊचाई पर आ गये हैं। आस-पास निगाह उठाकर देखते हैं तो पाता हू कि सच-मुच कष्ट-सहिष्णुता हमारे देश मे बहुत दुर्लभ नही है। एक छोटी-सी पोटली मे सबकुछ समेटे हमारे अनेक सहयात्री खुले मैदान मे सोये पड़े हैं। कोई शिकवा-शिकायत नही। कोई माग नही। कही रुके चाय पी, सत्तू खाया। दो क्षण आराम किया और फिर चल पडे, अतिम मजिल की ओर। परिव्राजक तो ये हैं। काश ये निष्ठावान यात्री सफाई के महत्त्व को भी समझ सकते। जो स्वच्छ मार्ग हैं, उन्हीको वे गदा कर देते हैं। राज्य ने

हर चट्टी पर शौचालय आदि का प्रबध किया है। उनका मार्ग निर्देश करने के लिए झडिया लगी है, इसीलिए हम उन्हे स्वागतम् कहकर पुकारते हैं। पर धर्मभीरु यात्री कहते हैं, "भला यात्रा मे किसीसे मल-मूत्र उठवाया जाता है !'

स्थान की तगी और गदगी तो केदार-बदरी यात्रा मे भी अनुभव की थी, लेकिन इधर तो सीमा नही है। सुनता हू, अब राज्य यात्रियो की सुविधा और स्वास्थ्य के लिए और अधिक प्रबध करने जा रहा है। लेकिन जबतक हम मानसिक दासता से मुक्ति नही पा जाते तबतक ये प्रयत्न प्रभावहीन रहेगे।

सवेरा हुआ। शीत के कारण मन उठने को नही होता था, पर उठना तो था ही। पानी ऐसा जैसे पिघला हुआ हिम हो। फिर भी बडा आनद आया। ऊपर जाकर चाय पी। ६ बजते-बजते पारसिंह से विदा लेकर आगे बढ चले।

: ६ :

खेदनसिंह की रामकहानी

चट्टी के निकट ही हनुमान गगा और यमुना का सगम है। सबसे पहले उसीके दर्शन हुए। हनुमान गगा ऊचाई से आती है, इसलिए उसका वेग बहुत तीव्र है। नीलवर्णी यमुना की धारा उसकी तुलना मे अधिक धीर-गम्भीर है। प्रत्येक सगम मन को एक पुलक से भर देता है। मिलन सदा ही प्रिय होता है। उसमे आतुरता होती है—स्नेह की, एक होने की। एक से वह अनेक हुआ और अब वे अनेक फिर एक होने को आतुर है। यही तो जीवन है।

आज भी चढाई थी। लेकिन प्रातःकाल की सुहावनी ऋतु और आपसी चर्चाओ मे व्यस्त रहने के कारण उसका कुछ पता ही नही लगा।

दृश्य और भी भव्य हो उठे। प्रारम्भ मे चीड के वन थे, फिर ओक के और सबसे अंत मे देवदारू के। नाना प्रकार के वन-पुष्प, औषध और फलो के वृक्ष, लता-कुज, द्रुम-दल और बीच-बीच मे चाय की दूकानो पर मधुर-मनोरजक वार्त्तालाप।

कभी-कभी लौटते हुए यात्रियो से भी अनायास ही मनोरजक विवाद छिड जाता। एक सज्जन को देखकर मैंने कहा, "आप हरियाने से आये हैं ?"

वह तुरन्त बोले, "आपने कैसे जाना ? लकडी देखकर ?"

"जी नही। आपकी भाषा से। आप 'क्या' के लिए 'के' कहते हैं।"

वह अधिकार भरे स्वर मे बोले, "जी नही, हरियाने के लोग केवल 'के' नही 'के से' कहते हैं। हम बीकानेर के हैं। केवल 'के' कहते हैं। हरियाना दिल्ली रोहतक है। बीकानेर नही।"

और वे वधु कुछ देर भाषण देने के बाद ही आगे बढे। हरियाना-निवासी बनाकर जैसे मैंने उनका अपमान किया हो! कैसे-कैसे विचित्र लोग मिलते हैं। अपनी टोली मे भी वैचित्र्य कम नही। आयु मे सबसे कम माधव मेडिकल कालेज का विद्यार्थी था। नया-नया ज्ञान, अवसर पाते ही उसको प्रकट करने को उतावला हो उठता। आज के उसके भाषण का विषय था—एक्लेमैटायजेशन। साधारणतया इसका जो अर्थ हम समझते हैं वह है किसी नये प्रदेश की जलवायु के योग्य अपनेको बनाना। लेकिन वह कहता था—यह एक रोग होता है। बडे प्रयत्नपूर्वक वह हमे इस तथ्य को समझाने का प्रयत्न कर रहा था, लेकिन घोरपडे कुछ समझ नही पा रहे थे। परिणाम यह होता था कि वे दोनो तर्क मे उलझ जाते और हमे हँसने का अवसर मिल जाता। इस वाद-विवाद का एक लाभ अवश्य हुआ कि हम इसी तरह हँसते-हँसाते सहज ही फूल चट्टी पहुच गये।

अवतक की सब चट्टियो मे सबसे सुदर, सुघड और स्वच्छ थी। सुरुचिपूर्ण ढग से बने बडे-बडे मकान पहली बार देखे। अखरोट, खूबानी और आडू के पेड भी यहा बहुत हैं। मन हुआ कि दोपहर यही बिताई जाय। लेकिन जानकी चट्टी भी कुछ बहुत दूर नही थी। इसलिए बढे चले गए।

आज यमनोत्री के अधिक-से-अधिक पास पहुंच जाने की लालसा है, जिससे बहुत तड़के ही उस खडी चढाई को पार कर लें। कुछ क्षण बाद यमुना का पुल पार करके बीफ गाव पहु च गये। मार्ग मे एक और पर्वत गिरा हुआ था। उसका वह ध्वस्त रूप बहुत भयानक लगा। लेकिन आगे हरे-भरे खेत थे।

खूबानियो के पेड भी बहुत थे। मन ललच आया, लेकिन उनके पकने मे अभी देर थी, इसीलिए मन-ही-मन उनका रस लेकर आगे बढ जाना पडा। समीप ही जानकी चट्टी थी। इसका नाम मार्कण्डेय तीर्थ भी है। मार्कण्डेय ऋषि ने यहा तप किया था, ऐसी पौराणिक मान्यता है। साढे दस बज रहे थे। देखा सामने कुछ ऊचाई पर डाक-बगला बना है, और वही से होकर रास्ता जमनोत्री की ओर जाता है। इसलिए तुरन्त यशपालजी और मैं दोनो वहा पहु चे। अनुमति-पत्र हमारे पास था। चौकीदार को पुकारने पर एक आदमी आया। उससे कहा, "हमारे पास अनुमति-पत्र है। तुम्हारे पास भी सूचना आ गई होगी ?"

उस आदमी ने कोई उत्तर नही दिया। ताला खोल दिया। बडे आराम से हम दोनो पलगो पर जा लेटे। लेकिन अभी थकान उतर भी न पाई थी कि चौकीदार आ पहु चा। बोला, "आप लोग यहा कैसे आये ? इस बगले को अभी खाली कीजिये।"

उसका वह रूप देखकर हम चकित रह गये। फिर कहा, "हमे यहा ठहरने का अधिकार है। हमारे पास अनुमति-पत्र है।"

वह बोला, "होगा, लेकिन मैं कहता हू, आप यहा नही ठहर सकते।"

उस निरक्षर भट्टाचार्य से तर्क करना बेकार था। वह कुछ नहीं समझना चाहता था, इसलिए समझ भी नही रहा था। तब क्रुद्ध होकर मैंने कहा, "हमारे साथ एक सरकारी अफसर हैं। उन्हे आ जाने दो। उनसे बाते करना।"

अफसर का नाम सुनकर शायद वह कुछ घबराया, लेकिन बड़-बडाना उसने बद नहीं किया। कुछ देर इधर-उधर करता रहा, फिर चला गया। तभी घोरपडे वहा आ पहु चे। हमने उनसे सब हाल कह-सुनाया और उन्हे सचेत भी कर दिया कि वह चौकीदार से जरा सख्ती से पेश

आयें। विनम्रता दिखाने से यहा के लोग सिर पर चढ जाते हैं।

वह बोले, "आने दो।"

सामान अभी तक नही आया था। दल के दूसरे लोग धीरे-धीरे आ रहे थे। हम लोग स्नान, भोजन आदि की व्यवस्था करने नीचे चट्टी पर आ गये। ठीक यमुना के किनारे गधक का एक झरना है। पानी उसका गुनगुना है, इसलिए स्नान करने मे बडा आनन्द आया। कपडे भी धो डाले। भोजन बनाने का भार आज माताजी के सेवक ने उठा लिया। अच्छा तो नही लगा, पर सुविधा हो गई। खा-पीकर डाक-बगले मे लौट आये। पलगो पर बिस्तर बिछ गये थे। थोडी देर में नीद आ गई। फिर कुछ पता नही रहा। आखें खुली तो मन बहुत शात था। वातावरण मे भी शाति थी। वर्षा हो चुकी थी। पर अब नीलगगन मे मेघ देखने को भी नही थे। बाहर अहाते मे आकर घूमने लगे।

यमुना के उस पार ठीक हमारे सामने ऊचाई पर एक समतल खण्ड है और उसपर बसा है खरसाली गाव। कभी इसी गाव से होकर यमनोत्री का रास्ता जाता था। यमनोत्री के पण्डे यहीं रहते हैं। बहुत देर तक हम वहा के घरो को, स्त्री-पुरुषो को, खेत-खलिहानो को देखते रहे। उसके पीछे बन्दरपूछ का धवल शिखर दिखाई दे रहा है। मानो हिम की चादर ताने समाधिस्थ हो गया हो। उसके प्रकाश मे श्रम की ये प्रतिमाए पीठ पर बोझ लादे काम मे लगी हुई हैं, नि शब्द शान्त।

धीरे-धीरे सब कुछ अधकार के कुहर में सिमटने लगा। शीघ्र शीत भी उग्र हो चला। हम लोग कल के कार्यक्रम बनाने मे व्यस्त हो गये कि इतने मे धर्मानन्द चौकीदार फिर आ पहुचा। बोला, "आप लोग यहा नही ठहर सकते।" इत्यादि, इत्यादि।

घोरपडे उसकी बात सुनने लगे। हम सोच रहे थे कि निश्चय ही वह अब उबल पडेंगे, लेकिन वह तो स्वभाव के शात और मधुर हैं, इतने कि एक-दो वाक्य से अधिक कुछ कह ही नही सके। हा, बडे गभीर स्वर मे उन्होने अत में इतना अवश्य कहा, "अच्छा, हम तुम्हारी शिकायत करेंगे।"

चौकीदार ने उस क्षण तो इस बात की कोई चिंता नहीं की। उसी तरह बडबडाता हुआ वहा से चला गया। अनुमति-पत्र भी उसीके पास

था। लेकिन थोडी देर वाद ही वह फिर लौट आया। आश्चर्य इस बार वह अत्यत विनम्र था। शायद किसीसे अनुमति-पत्र पढवाया हो। बोला, "माफ कीजियेगा। मेरी-औरत वहुत बीमार है, इसलिए मेरा दिमाग ठीक नही है।"

निमिषमात्र मे हमारा क्रोध सहानुभूति मे परवर्तित हो गया। यशपालजी ने कहा, "धर्मानद, अगर तुम पहले ही वता देते तो बात इतनी वढती क्यो ? चलो, जो हुआ सो हुआ।"

मंजिल अब केवल चार मील रह गई है। लेकिन ये चार मील एवरेस्ट पर चढने से भी कठिन हैं। भाभीजी का रुझान स्थूलता की ओर है, इसलिए चलने मे उनको असुविधा होती है, विशेष रूप से चढाई पर। श्रीप्रभा भी कुछ थकी-थकी-सी हैं। निश्चय किया कि उनके लिए कण्डिया कर ली जायें। आसानी से मिल जाती हैं। चट्टी पर पहुचे कि इधर-उधर से कई कडीवाले आ पहुचे। हमने उनसे पूछा, "क्या लोगे ?"

एक कण्डीवाले ने बडे रौब से जवाब दिया, "साहब, माल देखकर भाव करेंगे।"

अच्छा नही लगा। लेकिन उनका आशय हम समझ रहे थे। डाक-बगले पर ले जाकर हमने भाभीजी और श्रीप्रभा को दिखाया और कहा, "इन दोनो को ले जाना है।"

कण्डीवाले ने उनकी ओर देखा, परखा। फिर श्रीप्रभा की ओर सकेत करके वोला, "ये बाई तो जवान है, लेकिन वह वाई (भाभीजी) तेज हैं।"

कैसे बोलते हैं ये लोग, गवार कही के ! लेकिन इसमे उनका अपराध भी क्या है ? भाषा तो जड है। अर्थ उसे हम देते हैं। उनकी भाषा मे जवान अर्थ है 'उचित बोझ' और तेज का अर्थ है 'भारी'। लेकिन अभी तो नाटक की चरमसीमा आनी शेष थी। कण्डीवाले ने कहा, "अच्छा साहब, चखकर और देख लें, तब ठीक-ठाक भाव बतायेंगे।"

घोरपडे अब और अधिक न सह सके। सहसा क्रुद्ध स्वर में बोले, "क्या बकते हो ? चखना क्या होता है ? ठीक से बोलो।"

"ठीक तो कहा, साहब। विना चखे कैसे पता चले कि कितना बोझ है। माई तेज है न, साहब। बिना चखे भाव नही बनेगा।"

सहसा हम सभी हँस पडे । चखने का अर्थ होता है कण्डी मे उठाकर वज़न का अदाज करना । सभी लोग देर तक हँसते रहे । यात्रा-भर हँसते रहे । पजाबी शब्द चुकना से इस गढवाली शब्द चखना का क्या सबध है, यह भाषा-शास्त्रियो की खोज का प्रश्न है । वस्तुत निपट, निर्धन, चिथडो मे लिपटे, नगाधिराज के ये निरीह बेटे प्रथम प्रभाव मे बडे कटु मालूम देते हैं । पत्थरो के बीच रहते हैं न ? भाषा पर भी उसका प्रभाव आ गया है । हनुमान चट्टी पर पारसिह जब दूध पिला रहा था तो उसने पूछा था, "साहब, चीनी फेंक दू ?"

चकित होकर मैंने कहा, "पागल हुए हो ? चीनी फेंकोगे या दूध मे डालोगे ?"

हँसकर वह बोला, "वही तो पूछता हू सा'ब । चीनी दूध मे फेंक दू ?"

ऋतु बडी सुहावनी थी, इसलिए जब सबकुछ निश्चित हो गया तो मैं दूरबीन लेकर आकाश-दर्शन के लिए बाहर आ गया । पूरा विस्तार जगमग-जगमग करते तारों, नक्षत्रो से भरा हुआ था और उनके बीच छट का क्षीण चन्द्र किसी कलाकार की अधूरी कृति-सा बडा प्रयत्न करने पर दिखाई दे जाता था । उस रात नक्षत्र मण्डल के उस विपुल वैभव ने मुझे अभिभूत कर दिया । वह जो मैं देख रहा था, सचमुच अनत और असीम था । मन करता था कि युग-युग तक देखता ही रहू । पर शीत की उग्रता बार-बार सचेत कर रही थी कि सवेरे लक्ष्य की ओर जाना है ।

कई क्षण के सघर्ष के बाद आखिर अदर जाने की सुधि आई । देखता हू, धरती पर नीचे की चट्टी और सामने खरसाली गाव मे दो-चार इधर-उधर टिमटिमाती हुई बत्तियो के अतिरिक्त सबकुछ जैसे गहन अधकार मे खो गया हो। वे बत्तिया जैसे याद दिलाती हों कि अधकार समग्र को नही लील सकता । ये बत्तिया उस शाश्वत प्रकाश की सदेशवाहिका हैं, जो प्रति क्षण नील-गगन से धरती पर उतरा करता है । प्रकृति के इस अद्भुत रूप को मन-ही-मन प्रणाम किया और बिस्तर पर जा लेटा । घोरपडे की आज्ञा है कि सवेरे तीन बजे उठ जाना है । लेकिन दिन मे कुछ सो लिये थे, इसलिए देर तक नीद नही आई । आने पर भी बीच-बीच मे खुल जाती थी । फर्श काठ का था । तनिक-सी आहट उस निस्तब्ध पहाडी

रात मे सहस्र गुणी हो उठती थी। फिर भी जितनी सुख-सुविधा आज मिली, उतनी पहले कभी नही मिली थी। बीच मे जागकर देखा, मार्तण्डजी बाहर से लौट रहे हैं। सोचा सवेरा हो गया है। घडी देखी तो बारह बजे थे। फिर लेट गया। बाहर से उठता हुआ हवा का साय-साय शब्द मैं स्पष्ट सुन सकता था। उसीके कारण इस गर्म बिस्तर मे भी मेरा बदन काप-काप आ रहा था, मानो किसी हिमगुफा मे लेटा हू।

ठीक तीन बजे घोरपडे ने आवाज दी। यन्त्रवत् उठकर बाहर निकल गये। रात्रि के ममान आकाश मे तारो का वैभव बिखरा पडा था और धरती पर अधकार का साम्राज्य था। दुकानदार ने कल बताया था कि यह स्थान निरापद नही है। रीछ आदि वन्य पशु आ जाते हैं और इक्के-दुक्के मनुष्य पर आक्रमण कर देते है, इसलिए प्रत्येक आहट मे हमे रीछ की पदचाप सुनाई देती। लेकिन उसे देखने की लालसा रह ही गई...।"

लौटे तो घोरपडे चाय बना चुके थे। सारी यात्रा मे सबसे पहले उठकर साथियो को उठाना और आगे की व्यवस्था करना, यह भार आप-से-आप उनपर आ जाता था। चार बजे तक हम लोग चाय पीकर तैयार हो गये, लेकिन व्यर्थ। बोझियो और कण्डीवालो का तो पता ही नही था। शाम को उन्हे समझाकर कह दिया था कि चार बजे तक अवश्य आ जाय। लेकिन वे तो अपने हिसाब से काम करने के आदी हैं। बरामदे मे खड़े होकर, फिर मैदान मे आकर जोर-जोर से बोझियो के नाम लेकर पुकारा, लेकिन अनुगूज के अतिरिक्त और कोई उत्तर नही मिला। वे लोग मजे मे चट्टी पर सोते रहे और पौने पाच के लगभग आये। बोले, "क्या करें सा'ब, आंख लग गई।"

उनसे तर्क करना व्यर्थ था। फिर भी कुछ सख्त-सुस्त कहा ही। अनासक्त भाव से सुनते रहे, अभ्यास हो गया है। यात्री जल्दी करते हैं, झुझलाते है। उनके लिए जल्दी करना स्वाभाविक है, इनके लिए अनासक्त रहना ..।

यमनोत्री मे एक रात्रि बिताने का विचार हम छोड चुके थे। इसलिए अत्यत आवश्यक सामान लेकर एक बोझी को हमने अपने साथ लिया। शेष तीन मे से दो को कहा कि जल्दी-से-जल्दी सामान लेकर फ़ूल चट्टी

पहुच जाय और रात को ठहरने के लिए अच्छी जगह का प्रबध कर ले ।' अतिम बोझी को वही पर राह देखने का आदेश दिया और फिर हम लोग साढे पाच बजे यमुना मैया के नैहर की ओर चल पडे ।

स्वीकार करूगा कि उस गहन अधकार मे सूनी पगडण्डी पर आगे बढते समय हम नितात भयमुक्त नही थे । मार्ग की कठिनता और भयकरता की चर्चा सुनते-सुनते प्राण आतकित हो उठे थे । लेकिन प्रात.काल की सजीवनी वायु का परस पाकर जैसे मुरझाई शक्ति सतेज हो उठी और फिर सारा भय निर्मूल हो आया । शुरू का मार्ग कुछ विषम था । उसके बाद एक मील तक प्राय समतल पर चलते रहे, जो एक नदी के गर्भ मे जाकर समाप्त होता था । वही चाय की आखिरी दूकानें थी । अनायास एक किशोर से परिचय हुआ । गौर वर्ण, प्रखर वाणी वाले इस पद्रह वर्षीय किशोर का नाम खेदनसिंह था । उसके बडे भाई थे, परतु सभी सौतेले । पिता स्वर्गवासी हो चुके थे, इसलिए किसी-न-किसी बात को लेकर परिवार मे नित्यप्रति कलह होती रहती थी । अत मे बडे भाइयो ने सब-कुछ हथियाकर उसे और उसकी मा को एक दिन घर से निकाल दिया । लेकिन वह साहसी है । उसने जीवन से हार नही मानी । मा और छोटे भाई-बहनो को लेकर वह अलग रहता है और यात्रा के दिनो मे चाय का होटल चलाकर उनका लालन-पालन करता है । खेती और भेडें भी है, जिन्हे मा देखती है । बोला, "सा'ब, मेहनत करता हूँ । आपकी दया से अब सब ठीक है । वे रक्खें अपनी दौलत ।"

भाई का होटल भी बराबर ही था । देखने मे वह कुछ उद्धत नही दिखाई दिया । पर खेदनसिंह की दूकान पर भीड देखकर उसे दु ख अवश्य हो रहा था । चाय पीते-पीते मैं उस कहानी पर विचार करता रहा । हिंदू परिवार की यह चिर-परिचित गाथा क्या सदा ही उसे त्रस्त करती रहेगी ? क्या यह हमे सोचने को विवश नही करती कि हमारे सामाजिक मूल्यो मे ठहराव आ गया है, इसीलिए यह दुर्गंध है, इसीलिए परिवर्तन अनिवार्य है ? दूसरी ओर खेदनसिंह के इस अदम्य आशावाद ने हमे एक नई स्फूर्ति से भर दिया ।

आगे अब कोई चट्टी नही है । है केवल ढाई मील की प्राणलेवा चढ़ाई ।

जहा चाय की अतिम दूकान है, उस घाटी को गणधारा कहते हैं। कण्डीवाले ने बताया, "यह गणधारा सामने के उस गणकुजर पर्वत से निकलती है। इस पर्वत पर शकर भगवान रहते हैं।"

जिस पर्वत की ओर उसने सकेत किया, वह बहुत दूर था। शकर कहां नही रहते ? सारा कैलास ही उनका आवास है। और कैलास का अर्थ होता है, साधारण जनता के लिए सपूर्ण हिमालय।

: ७ :

जमना मैया का नैहर

जब हमने यमनोत्री की चढ़ाई शुरू की तो मन पर आतक छाया हुआ था। लेकिन बहुत शीघ्र ही उल्लास ने उसे अपदस्थ कर दिया। शीतल मद समीर, हरा-भरा सघन वन-प्रात, नाना प्रकार के वृक्ष, लता और द्रुमदल। आतक कैसे टिक पाता ? उन्हे निहारते, परखते, हम धीरे-धीरे आगे बढने लगे। बहुत तडके चले थे और गगनचुम्बी पर्वत वृक्षो से आवृत थे। इसलिए ऊपर जानेवाली पतली पगडण्डी पर चलते हुए सहज ही सूर्य ताप से रक्षा हो जाती थी। लाल फूलो से लदे बुरास, हरे-भरे खरसू और कलापूर्ण थनेर के अतिरिक्त राई, बाज (ओके) मुरेण्ड और मनेर आदि अनेक प्रकार के वृक्षो और लताओ से परिचय करते हुए हम सोल्लास ऊपर चढते चले गए। जैसे-जैसे ऊपर चढते गए, प्राकृतिक दृश्य और भी मोहक होते गए। हम लोग जहा कही सास लेने के लिए रुकते तो पीछे मुडकर देखते। नैसर्गिक सुषमा के विस्तार को। वृक्षो के परिवार मानो हमारे स्वागत को दल बाधकर आये हो।...

मार्ग कही पथरीला, कही रेतीला। एक मील एक फर्लांग चलने पर मटियाली नाम का एक स्थान आया। एक क्षण वहां रुके। अब लौटते हुए यात्री मिलने लगे। जैसे विभिन्न प्रात, विभिन्न वय, विभिन्न वर्ग,

वैसे ही विभिन्न उनके अनुभव। विहार के एक विशाल वक्ष, श्वेतकेशी, गौर वर्ण वृद्ध, लबा कोकटी का कुर्ता पहने, वगल मे हवाई सर्विस का एक वेग दावे जब सामने आये तो अनायास ही गद्गद् स्वर मे बोल उठे, "हे नाथ, हे प्रभु, आपकी कृपा से सब कुशल है।"

श्रीप्रभा ने पूछा, "आगे का मार्ग कैसा है ?"

बोले, "मा, अब कुछ नही। सब आनद-ही-आनद है।"

एक पूर्व-परिचित बगाली बघु उत्फुल्ल, विभोर। ललककर ऐसे भेंटे मानो एवरेस्ट-विजय कर लौट रहे हो। आखें गहरा आई थी। उस भाव-व्यजना के सामने भाषा व्यर्थ हो रही। जबलपुर के एक कृष्ण-वर्णीय क्षीणकाय वृद्ध तो चरण छूने लगे। कापते-कापते वह पुकार रहे थे, "जय जमना मैया, पार कर दे मैया।"

एक नारी अत्यत त्रस्त, क्लात, अपने ही भार से जैसे पिसी जा रही हो। जिह्वा पर एक ही वाक्य था, "हे भगवान, कैसा भयानक मार्ग है!" एक दूसरी महिला थी। अत्यत उल्लसित, वाणी मे ओज, नयनो मे गर्व और गति मे दृढता से नीचे उतर रही थी। तभी सहसा चौंक उठा। देखता हू कि जैसे ही एक बधु को देखकर यशपालजी ने "जय यमुना मैया का उद्घोष' किया तो वह क्रुद्ध हो उठे, "क्या जय-जय करते हो ? आगे चलकर छठी का दूध याद आ जायगा।"

ये शब्द उन्होने आवेश मे कहे थे। थक गये थे वेचारे। लेकिन अधिकाश यात्री उल्लास और आनन्द से भरपूर थे। क्यो न होते ? इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही तो उन्होने प्राण सकट मे डाले थे। हमारे दल मे आज काकूजी (शोभालालजी) और काकी सबसे आगे थे, जैसे हमे चुनौती देकर चले हो। मार्ग मे कही भी तो उनसे भेंट न हो सकी। मटियाली के वाद कोई एक मील तक की वडी कठिन चढाई मिली। पर्वत प्रदेश के मील मैदान के मीलो की अपेक्षा बहुत लबे हो जाते हैं। यह एक मील चढने के वाद ऐसा मालूम हुआ मानो दिन-भर चलते ही रहे हो। एक स्थान पर रास्ता चट्टान को काटकर बनाया गया था। इसी कारण वह न केवल सकरा था, बल्कि झरनो का पानी आ जाने के कारण उसपर फिसलन भी थी। पैर जमाकर धीरे-धीरे चलना पडता था।

परतु जब शिखर पर पहुचे तो प्राण जैसे गुदगुदा उठे। इसी विजय गर्व से भरे-भरे हम तुरत आधा मील दूर चीर भैरव पहुच गये। मदिर के नाम पर यहा केवल एक छोटी-सी कोठरी है। उसीके आसपास पेडो के सहारे रस्सियो पर कपडो के अनेक टुकडे बधे हुए है। बडे-छोटे, सीधे-टेढे, लाल-पीले, श्वेत-नीले, देखकर बडा आश्चर्य हुआ। यमनोत्री का दर्शन करके लौटते समय यात्री लोग ये टुकडे बाध देते है। इसे भैरव की ध्वजा कहते है। मान्यता है कि अपने कपडो मे से फाडकर जबतक टुकडा यहा न चढाया जाय तबतक यात्रा सफल नही होती। यह भी माना जाता है कि कोई मनोकामना करके ही यह चीर बाधी जाती है। जब वह कामना पूरी हो जाती है तब उस व्यक्ति को यहा आकर चीर खोलने का विधान है। वस्तुतः उत्तरखड के तीर्थ-स्थानो मे भैरवनाथ का बहुत महत्व है। सभी तीर्थों मे मुख्य स्थान आने से पहले भैरोनाथ का मदिर आता है। वह इन सभी देवताओ के प्रहरी हैं।

यहा से उतार आरभ हो जाता है। काकूजी और काकीजी यहा भी हमारी राह देखने के लिए नही रुके। लेकिन हमने पीछे आने वाले साथियो को साथ ले लेना उचित समझा। मार्तण्डजी और भाभीजी सबसे पीछे थे। सबके अन्त मे ही वह वहा पहुचे। आते ही मार्तण्डजी ने गभीर स्वर मे कहा, "हमारे साथ तो आज एक दुर्घटना हो गई।"

पर्वत प्रदेश मे दुर्घटना का अर्थ बहुत गभीर होता है। क्षण-भर मे न जाने क्या-क्या सोच डाला। व्यग्रता से पूछा, "क्या हुआ ?"

उसी शात भाव से वह बोले, "बहुत बुरा हुआ। पानी की बोतल का कार्क हाथ से छूटकर घाटी मे गिर पडा बेचारा।"

अब तो वह अट्टहास गूजा कि उसकी अनुगूज से वह दुर्गम पर्वत प्रदेश भी मुकुलित हो उठा। लेकिन मार्तण्डजी पूर्वत बोले,, "आप हँसते हैं। यह कोई छोटी-मोटी दुर्घटना नही। देखिये तो कॉर्क न रहने के कारण बोतल के पानी ने छलक-छलककर मेरी जाकट का क्या हाल कर दिया है।"

सचमुच उनकी जाकट बिल्कुल भीग गई है। हमारे मन भी हँसी से भीग आये। आगे का मार्ग सरल था। कुछ ही दूर चले होगे कि

सामने की घाटी मे जमनोत्री की चट्टी दिखाई देने लगी। उतरते-चढते हँसते-हँसाते हम शीघ्र वहा पहुच गये। लगभग पौने नौ का समय था। काकूजी और काकीजी हमारी राह देख रहे थे। लेकिन मैं तो यमनोत्री की घाटी को देखता रह गया। न है भव्य हिम शिखर, न है हरी-भरी उपत्यका, एक नितात सकीर्ण घाटी, मानो किसी उपेक्षिता तपस्विनी का आवास हो। इन दुर्गम प्रदेशों मे हर नदी की रक्षा करने के लिए दोनो ओर उत्तग हिम शिखर होते हैं। पर नन्ही जमना को तो उन्होने मानो यमदूतो की भाति घेर लिया है। शायद यमराज ने अपनी बहन की रक्षा के लिए उनको विशेष रूप से नियुक्त किया हो। कुछ दूर चलने के बाद उमगती-उछलती गरुड गगा जब यमुना से आकर भेंटती हैं तभी उसमे कुछ निखार आता है। लेकिन पर्यटक के मन पर इस घाटी की जो पहली छाप पडती है, वह है भीषण गाभीर्य, घोर वैराग्य और कठोर तप की। यहा न केदारनाथ की-सी भव्यता है, न त्रियुगी-नारायण की-सी वनश्री। बदरीनाथ के नर-नारायण पर्वतो की-सी शोभा भी नही है। सूर्य की पुत्री और यम की बहन का प्रत्यक्ष रूप कैसे सुदर हो सकता है। कठोर तप और साधना बाहरी सौंदर्य की अपेक्षा नही रखते।

सहसा असित ऋषि की मूर्त्ति नयनो मे भर उठी। इस प्रचण्ड शीत प्रदेश मे यमुना के उद्गम को खोज निकालनेवाले इस तपस्वी ने कैसी कठोर साधना की होगी। इनके साथ ही याद हो आई उन बारह ऋषियो की, जो शकर के साथ लका से लौटकर यहा बस गये थे। और महावीर हनुमान की भी याद आई। किम्वदती है कि २०७३१ फुट ऊचे बदरपूछ हिमशिखर पर वह आज भी बैठे हुए हैं। रामचद्रजी जब लका विजय के बाद अयोध्या मे लौटकर राज्य करने लगे थे तब उनकी आज्ञा लेकर थकान उतारने के लिए हनुमानजी सुमेरु शिखर पर आकर रहने लगे थे। प्रति वर्ष उनकी सेवा के लिए रामचद्रजी एक वानर भेजा करते थे। कथा आती है कि वह वानर आज भी आता है। तीव्र शीत के कारण यहा खाने को कुछ नही मिलता। इसलिए बेचारे को पूछ गवानी पडती है। त्रेता युग से अबतक करोडो वानरो ने अपनी पूछें यहा गवाई हैं, इसीलिए तो इस शिखर का नाम बदरपूछ पड गया है। कहानी रोचक है, पर यह

आवश्यक नही कि सत्य भी हो। हो ही नही सकती।

दूरबीन उठाकर मैं इस विचित्र शिखर की ओर देखने लगा। सहसा दो पतली-सी धवल रेखाए दिखाई दी। ये दोनो रेखाए नीचे आते-आते एक हो जाती हैं। लेकिन प्रारभ मे एक का नाम है कालिंदी और दूसरी यमुना। कालिंदी नाम इसलिए पड गया है कि बदरपूछ के जिस भाग से वह निकलती है उसे कलिंदगिरी कहते हैं। कलिंद सूर्य का भी एक नाम है और यमुना सूर्य की पुत्री है। इसलिए उसका नाम कलिंदजा भी है। जिस स्थान से यमुना निकलती है वहा जामुन का एक वृक्ष बताया जाता है। उस वृक्ष तक पहुचने का साहस हम लोग नही कर सके। यमनोत्री के चार मील ऊपर वह वास्तविक ऊद्गम के पास बताया जाता है। स्वामी रामतीर्थ जैसे औलिया ही वहा पहुच सके थे, पर इतनी ऊचाई पर कोई वृक्ष हो सकता है, यह असभव है। लेकिन आज भी यह विश्वास है और पण्डे लोग कहते भी हैं कि यमनोत्री मे दिव्य शिला पर जो रूप चित्रित है वही रूप वास्तविक उद्गम के स्थान पर है।

हम लोग अभी यमुना के इसी तट पर घूम रहे थे। लेकिन जब यात्री लोग लकड़ी के डगमगाते भयानक पुल से यमुना की कलकल करती अनेक धाराओ को पार करके उस ओर पहुचते हैं तो पण्डे सबसे पहले उन्हे दिव्य शिला पर ले जाते हैं। वे कहते हैं ऊपर पहुचना अत्यत कठिन है इसलिए यमुना मैया अपने भक्तो पर कृपा करके यही प्रकट हो गई हैं। आप यही पर पूजा-पाठ कर लीजिये। जो श्रद्धालु है, वे सहजभाव से इस तर्क को स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन जो पर्यटक हैं वे कैसे स्वीकार करें।

दिव्य शिला के निकट ही तीन तप्त कुण्ड हैं। निरतर धक्-धक्, फक्-फक् करते ये कुण्ड यहा का सबसे बडा आकर्षण है। इनमे गधक की गध नही। सबसे पहला है सूर्य कुण्ड। उसके जल का तापमान १६४.७ डिग्री है। प्रसाद के लिए यात्री लोग इसमे आलू और चावल पकाते हैं। एक पोटली मे बाधकर वे पदार्थ उस खौलते जल मे डाल दिये जाते हैं। थोडी ही देर मे वे पदार्थ उबलकर ऊपर आ जाते हैं।

सूर्य कुण्ड से थोडी ही ऊचाई पर ऋषि-कुण्ड है। इसमे यात्री लोग स्नान करते हैं। इसका जल भी काफी गर्म है। सहसा पैर देना कठिन

है। पर धीरे-धीरे शरीर उस तापमान को सह लेता है। हम लोगो ने बडे ग्रानद से स्नान किया। जल की उष्णता के कारण वहुधा सिर मे चक्कर ग्रा जाता है। लेकिन यदि उसे ठडे पानी से भिगो लिया जाय तो ऐसा नही होता। हम लोगो के दल मे प्राकृतिक चिकित्सा के कई प्रेमी थे। मार्तण्डजी ग्रौर यशपालजी गर्म पानी मे स्नान करने के वाद तुरत यमुना की शीतल धारा मे स्नान कर ग्राये। क्या उन्हे यम के उस वरदान की याद ग्रा गई थी, जो उन्होने ग्रपनी छोटी बहन यमुना को दिया था, "जो मनुष्य एक बार भी तुम्हारे जल मे स्नान कर लेगा उसे यमलोक नही जाना होगा।" जब हम लोग गर्म कुण्ड मे स्नान कर रहे थे तो यशपालजी ने यमुना से हिम जल लाकर हम लोगो के सिर पर भी डाला। शीतल ग्रौर ऊष्ण का यह सयोग सुखद रहा। वाहर ग्राने को मन नही करता था। लेकिन समय निरतर बीत रहा था ग्रौर ग्राकाश मे मेघ-शावक दिखाई देने लगे थे। किस क्षण वे शावक उग्र रूप धारण कर पूरे विस्तार को ग्रस लेंगे, यह कहना कठिन था। इसलिए ग्रनिच्छापूर्वक कुण्ड से वाहर ग्राये। इसी कुण्ड के पास एक ग्रौर छोटा-सा कुण्ड है। ग्रास-पास ग्रौर भी धाराए-शिलाए ग्रौर कुण्ड यात्रियो को ग्राकर्षित करने के लिए पण्डो ने बना लिये हैं ग्रौर उनके नाम रख लिये हैं वसुधारा, सहस्र-धारा, गौतम ऋषि धारा, गुप्तमुनि धारा, द्रौपदी कुण्ड इत्यादि-इत्यादि। ग्राग्रहपूर्वक यात्रियो से कुछ-न-कुछ चढाने के लिए वे कहते हैं। लेकिन स्वय यह भी नही जानते कि यमुना की कहानी क्या है। इसके ग्रतिरिक्त ग्रव्यवस्था यहा इतनी है कि उबलता पानी पगडडियो पर बहता रहता है। चढना-उतरना सकट से मुक्त नही है। सूर्य कुण्ड से ग्रौर ऊपर जाने पर एक छोटा-सा मदिर मिलता है। जितना छोटा है उतना ही ग्राकर्षण-हीन है। उसमे श्यामवर्ण यमुना ग्रौर गौर वर्ण गगा दोनो की मूर्त्तिया हैं। पुराणो के ग्रनुसार यमुना गगा की वडी वहन हैं, परतु उसने छोटी वहन के लिए ग्रपना ग्रस्तित्व मिटा दिया है। यह मदिर भी उसी स्नेह का साक्षी है। क्या ही ग्रच्छा होता कि इस मदिर को कुछ कलापूर्ण बनाया जाता। बाहर एक पेटी रखी हुई है। हमने उसमे कुछ पैसे डाल दिये। ग्रदर जाकर पुजारी से पूछा, "यह वक्स किसके लिए है?"

उसने उत्तर दिया, "उनके लिए है, जो अदर नही जा सकते।"

मैंने पूछा, "अदर कौन नही जा सकता ? क्या अछूत ?"

"जी हा।"

"तब हम भी अछूत है।"

यह कहकर शोभालालजी और मैं बिना दर्शन किये ही निकल आये। इस पुनीत प्रदेश मे छूत-अछूत का भेदभाव देखकर मन को बहुत पीडा हुई।

रुकना नही था, सो कुहरे के आक्रमण से पूर्व ही लौटने का निश्चय किया। आते ही एक दूकानदार को पूडिया[1] बनाने के लिए कह दिया था। जबतक नहाकर लौटे, तबतक पूरिया और आलू का साग तैयार हो गया था। भूख भी खूब लग आई थी। धर्मशाला के खुले बरामदे मे बैठकर आनदपूर्वक भोजन किया। पत्तल के स्थान पर यहा भोजपत्र मिलते है। इन्ही पत्रो पर हमारा बहुत-सा अमूल्य प्राचीन साहित्य सुरक्षित है। प्रचुरता से मिलने के कारण इनका प्रयोग यहा पत्तल के रूप मे भी किया जाता है।

भोजन करने के बाद एक बार फिर हम उस तप्त कुण्ड पर पहुचे। मन करता था कि फिर स्नान करे, लेकिन मेघ-शावक घनीभूत होते आ रहे थे। अच्छा होता कि हम एक रात यहा रहते। लेकिन ऐसी सुविधा न होने के कारण यह सम्भव न हो सका। यात्रियो और हमारे बोझियो ने हमे आतकित भी बहुत कर दिया था। लेकिन काका कालेलकर यहा एक रात ठहर चुके हैं। उन्होने लिखा है, "हमने यहा रात कितने आनद से बिताई, मानो किसी लम्बे सफर के बाद घर पहुचे हो। गर्मी और ठण्ड के बीच करवटें बदलते, हुए हम रात के एक-एक क्षण का माधुर्य चख सके। हमने अपना एक घटा भी गहरी नीद मे न खोया।"[2]

क्या हम लोग इस अद्भुत अनुभव का लाभ उठाने के अयोग्य थे ? लेकिन दल मे तो बहुमत का ध्यान रखना ही पडता है। लौट पडे। एक बार फिर सुमेरु के हिम-शिखर को देखा। देखा वाष्पाच्छादित तप्त कुण्डो को।

---

१ यहा भाव चार रुपये सेर है २ हिमालय-यात्रा पृष्ठ १६२-३

इन्हीके सम्बन्ध मे काकासाहब ने लिखा है, "यह मानने के बजाय कि यहा गर्म पानी के कुण्ड देखकर असित ऋषि ने इस स्थान को चुना होगा, मेरा सुझाव यह मानने की तरफ है कि ऋषि के यहा रहने के निश्चय करने पर उसके सकल्प-बल से विवश होकर प्रकृति ने अपने विश्वास के रूप मे यहा ऊष्ण झरने प्रकट किये होगे।"[1]

अत मे देखा, वेगवती गम्भीर यमुना के शैशव रूप को जो बालोचित चपलता से पाषाण-खडो के सग आख-मिचौनी खेलती हुई निरतर आगे बढ रही है। प्रणाम! शत-शत प्रणाम। जीवन मे रसास्वादन करने के लिए यहा आना कितना आवश्यक है। फिर स्मरण किया, असित ऋषि और शकर के साथी बराह ऋषियो को। अत मे प्रकृति को प्रणाम करके आकाश के विस्तार को घेरती घटाओ को देखते हुए उल्लास से भरे-भरे हम वापस लौटे।

: ८ :

गंगोत्री की ओर

फिर वही चिर-परिचित मार्ग। चीर भैरव पर आकर यशपालजी ने काकी से कहा, "काकी, चीर नही बाधोगी ?"

काकी ने तुरन्त साडी का एक छोर फाडकर चीर बाध दी। एक कतरन नीचे गिर पडी थी। उसे दिखाकर मुझसे कहा, "इसे तुम बाध आओ, विष्णु भाई।"

"मैं ?"

"जी हा, आप।"

"अच्छी बात है, तुम्हारी ओर से बाधे आता हू।"

---

१. हिमालय-यात्रा, पृष्ठ १६२-३

बाध आया तो बोले, "बाध तो दिया, पर खोलने के लिए फिर आना पडेगा।"

"हा-हा, आऊगा, पर तुम्हे साथ लेकर।"

जिस कामना को लेकर चीर बाधा जाता है, वह पूरी हो जाय तो चीर खोलने आना पडता है, ऐसी मान्यता है। पर इन लाखो कत्तरो मे कौन किसकी है, यह कौन पहचानेगा ? और इस बात का भी क्या विश्वास है कि शीत काल का तूफान उनको निगल न जायगा ? मानव की दुर्बलता की घोषणा करनेवाले इन प्रतीको पर ही श्रद्धा का व्यापार चलता है।

दोपहर का समय हो चुका है। अब जान पाये हैं कि वह चढाई, जिसे हमने हँसते-खेलते पार कर दिया था, कितनी कठिन है। उतरने में और भी पीडा होती है। उसपर हम भोजन करने के तुरन्त बाद ही चल पडे थे। अनुमान था कि उतराई होने के कारण समय कम लगेगा। लेकिन चढाई पर मार्ग का बहुत भार लाठी सह लेती है, उतार मे वही भार टागो पर पडता है। तीन मील का वह रास्ता कैसे कटा, उसका स्मरण करते ही हृदय रोमाचित हो उठता है। उस भयकर ढलान पर शरीर को साधते-साधते टागें थककर कापने लगी। हर पग पर ठहरते, सास लेते और फिर कछुए की चाल से नीचे उतरते। कच्ची-पक्की पूरिया खाई थी, उनका प्रभाव भी प्रकट होने लगा। प्रत्येक मोड पर उस नदी के दर्शन होते, जिसके गर्भ मे खेदनसिह की दूकान है। पर प्रत्येक बार वह छल कर जाती। आख-मिचौनी खेलना शिशु को ही नही, मा को भी अच्छा लगता है। मा के आचल मे मुह छिपाकर शिशु कहता है, "मैं नही हूं मा, मुझे ढूंढो।" और मा शिशु को देखकर भी न देखने का बहाना करती है और शिशु विजय गर्व से खिलखिला उठता है। नदी भी हर मोड पर सामने आकर कहती है—"मैं हू, मुझे पकडो।" हम पकडने भागते हैं, भागते ही रहते हैं कि दूसरे मोड पर आकर वह फिर कहती है, "मैं यह तो हू, पकडो न।" इस पकडने मे पूरे तीन घटे लग जाते है। वह रही खेदनसिह की दूकान। आओ चाय पी लें। और बातो का तार जहा टूटा था वहा से उसे फिर जोड लें।"

आसमान मे वादल उमडते-घुमडते देखकर खेदनसिह भी अपना होटल वद करके हम लोगो के साथ हो लिया। न जाने कैसे चर्चा उसके विवाह को लेकर चल पडी। मैंने पूछा, "तुम्हारा विवाह हुआ कि नही ?"

वह लजाकर मुस्कराने लगा। बोला, "मा ने मेरी सगाई कर दी है। कुछ दिन वाद शादी होगी।"

"तुमने लडकी देखी है ? कैसी है ?"

उसका चेहरा सहसा नववधू के जैसा लाल हो आया। सकुचाता हुआ बोला, "अच्छी है। खेत मे काम करती है।"

फिर एक क्षण रुककर गभीरता से बोला, "परतु वावूजी १५ वर्ष का हो गया हू। अभी तक उससे कोई वास्ता नही है।"

हम रेशमी नगर के बासी, नारी का अर्थ मात्र जहा शरीर है, उसकी इस सरल निष्कपटता पर अचरज से भर उठे। इधर के लोगो पर अभी आदिम युग की सभ्यता का प्रभाव है। बाहरी सपर्क मे आकर छल-छिद्रो वाली विद्या यह सीख तो रहे हैं, पर अभी पचा नही पाये। जब हमे यह मालूम हुआ कि उसकी मगेतर वीफ गाव मे रहती है तो हमने उससे आग्रह किया कि वह उसे हम लोगो को दिखा दे।

लेकिन अभी जानकी चट्टी पर पहुचकर हिसाव करना था। श्रीप्रभा ने अपनी कण्डी का तनिक भी उपयोग नही किया था। लेकिन फिर भी रुपये देने पडे। जो वोभी हम लोगो के साथ रह गये थे, उनको हमने तुरत आगे रवाना कर दिया। फिर मैं परचूनिए का हिसाव करने लगा। देखता हू, दूध का भाव दो पैसे सेर अधिक लिखा है। उससे कहा तो वह वोला, "साहव यहा तो यही भाव है।"

मैंने तर्क किया, पर व्यर्थ। विवश होकर मुझे उसकी वात स्वीकार करनी पडी। लेकिन जव मैंने विल का जोड किया तो पाया, उसमे दो रुपये कम हैं। तुरत बोला, "यह है तुम्हारा हिसाव। दो पैसे के लिए वेईमानी करते हो और दो रुपये छोड देते हो।"

अव तो वह गिडगिडाने लगा। वोला, "हम तो मूरख हैं साहव। हिसाव क्या जानें ?"

यह कोई एकाकी घटना हो ऐसी वात नही है। सारे रास्ते इसी तरह

के अर्थशास्त्रियो से मुझे निपटना पडा। शुरू मे व्यर्थ हठ करने लगते और फिर हाथ जोडकर खडे हो जाते।

बीफ गाव मे न था खेदनसिह और न थी उसकी मगेतर। थे केवल भीख मागनेवाले वच्चे। उनमे एक युवती भी थी। गरीबी ने उसके रूप को धूमिल तो कर दिया था, पर राख मे छिपे अगार की तरह उसकी ऊष्मा वडी सरलता से अनुभव की जा सकती थी। मैंने उससे कहा, "तुमको लाज नही लगती? कितनी वडी हो?"

वह खिसियाकर बोली, "बाबूजी क्या करू? गरीवी के कारण हाथ फैलाना पडता है।"

मैंने एकाएक उसे देखा। न जाने उसकी आखो मे कैसी निरीहता थी। शीघ्रता से कुछ पैसे उसके हाथ पर रखे और आगे वढ गया। लग रहा था, जैसे कोई पाप किया हो।

धीरे-धीरे डेढ मील चलकर जब फूल चट्टी पहुचे तो धूप प्रायः ढल चुकी थी और सध्या का अलसाया अधकार वातावरण पर छाता जा रहा था। चट्टी सचमुच स्वच्छ और सुदर थी। पर हम लोगो के बोझी काफी देर से पहुचे थे, इसलिए दिल्ली के एक सेठ और कागडा की भूतपूर्व राजमाता के सगी-साथियो ने ऊपर के तल्ले के सभी अच्छे और सुविधा-जनक कमरो पर अधिकार कर लिया था। हमे नीचे की मजिल मे पत्थर के फर्शवाले दो कमरे मिले। वहा अपेक्षाकृत शाति थी। हमने विस्तर खुलवा दिये।

मार्ग मे यशपालभाई और मेरी तबीयत कुछ ढीली हो गई थी। यहां पहुचते-पहुचते तन-मन दोनो भारी हो आये। यद्यपि कोई विशेष बात नही थी, लेकिन फिर भी दल की व्यस्तता वढ गई। मार्तण्डजी हम दोनो को सव प्रकार की सुख-सुविधा देने के लिए परेशान हो उठे और घोरपडेजी स्टोव लेकर व्यस्त हो गये। थर्मामीटर लगाने पर मालूम हुआ कि बुखार नही है। थकान की गर्मी थी। दवा लेकर हम दोनो लेट गये। शरीर टूट रहा था। शिराएं जैसे फटी पडती थीं और आखें जैसे दहक रही हो। लेकिन दो क्षण ही लेटे होगे कि लगा जैसे छोटा-मोटा तूफान आ गया हो। एक के वाद एक व्यक्ति उस अंधेरे कमरे मे आकर हमसे

सहायता मागने लगे। विहार के एक वृद्ध सज्जन यमनोत्री की ओर जा रहे थे। बोले, "साहब, मैं एक धनी व्यक्ति के साथ यात्रा कर रहा हू। वह एक रात यमनोत्री मे ठहरना चाहते हैं। लेकिन मेरे पास इतने कपडे नही हैं। और वह देते नही हैं। मैं वहा ठहरा तो ठिठुरकर मर जाऊगा।"

मैंने सहसा लिहाफ हटाकर कहा, "आप उसका साथ छोड दीजिये।"

वह बोला, "साथ कैसे छोड दू? हम दोनो का बोझी तो एक ही है।"

इससे भी विकट समस्या कागडा की भूतपूर्व राजमाता की थी। उनकी बूढी परिचारिका अपनी भाषा मे घोरपडे को यह समझाने की असफल चेष्टा कर रही थी कि उनकी डाडी के बोझी ब्राह्मण हैं।

घोरपडे परेशान होकर बोले, "हैं तो फिर क्या हुआ?"

परिचारिका ने उत्तर दिया, "वाह, हुआ क्यो नही। राजमाता ब्राह्मणो के कधो पर बैठकर तीर्थयात्रा कैसे कर सकती हैं?"

एक साथी बोले, "क्यो इससे क्या होगा?"

परिचारिका ने कहा, "होगा क्यो नही। इससे यात्रा का पुण्य नष्ट हो जायगा। ब्राह्मण के कधो पर बैठना पाप है।"

वह चाहती थी कि उनकी डाडी किसी ऐसी डाडी से बदल दी जाय, जिसके बोझी ब्राह्मण न हो। पर ऐसा होने की सभावना वहुत कम थी। क्योकि डाडी का उपयोग अत्यत सपन्न लोग ही करते है। मिल जाने पर भी इस बात की क्या सभावना थी कि ब्राह्मण पर सवारी करने के पाप को ओढने के लिए वह तैयार हो जाय। स्वय ब्राह्मण बोझी भी पीछे हटने को तैयार नही थे। उनके लिए ब्राह्मणत्व से पेट की ज्वाला अधिक महत्वपूर्ण है। लेकिन सयोग की वात है उसी दिन एक ऐसे सहयात्री मिल ही गये, जिनके वोझी ब्राह्मण नही थे और जिन्हे ब्राह्मणो के कधो पर वैठने से पुण्य के क्षय होने की आशका भी नही थी। उसके साथ डाडी की अदला-वदली करवा देने पर राजमाता की समस्या सुलझ गई।

सवेरे जव उठे तो तबीयत काफी सभल चुकी थी। विना किसी व्यवधान के हम लोग चल पडे। हनुमान चट्टी पर पारसिंह से भेंट हुई। वही प्रसन्न मुद्रा, वही मुक्त हास्य। वर्षा होने पर जहा रुके थे उस चट्टी

वाले से भी बातें हुईं। और इस तरह मिलते-जुलते हम लोग सियाण (कुनसाला) चट्टी पर आ पहुचे। मार्ग मे राणा गाव के पास देखा कि जाते समय जो मकान खाली पडा था, उसके एक ऊचे चबूतरे पर अब १५-२० बालक-बालिकाए चिथडो मे लिपटे मूर्तिवत तीन पक्तियो मे बैठे हैं। हर पक्ति के बीच मे धुआ उठ रहा है। पता लगा कि यह बेसिक पाठशाला है। मैंने चकित होकर पूछा, "लेकिन यह धुआ कैसा है ?"

नवयुवक अध्यापक मातबरसिंह ने उत्तर दिया, "धुए से मच्छर-मक्खी उड जाते हैं। इधर की पहाडी मक्खिया झुण्ड बनाकर आक्रमण करती हैं। यह उन्हीसे बचने का उपाय है।"

हमारे शरीर इस तथ्य के साक्षी थे। उनके डक से बने लाल मुह-वाले सूझे घाव—उनको खुजाने मे जो रस आता है, उसको कोई भुक्त-भोगी ही समझ सकता है। सब बच्चे रेत मे अगुली से अक्षर बनाने का अभ्यास कर रहे थे। कुछके पास तख्तिया भी थी, जिनपर वे पहाडे लिख रहे थे। दस्तकारी के नाम पर वे बस लिफाफे बनाना ही सीखते हैं। न है परपरागत लोक-शिल्प, न है कोई नई दस्तकारी। मैंने पूछा, "और दस्तकारी सिखाने की सुविधा नही है क्या ?"

अध्यापक मातबरसिंह ने उत्तर दिया, "कागजो पर तो है, लेकिन जहा यातायात के साधन दुर्लभ हो, महीने मे एक बार डाक पहुचती हो, चार महीने हिमपात के कारण घरो मे बद रहना पडता हो, वहा सब चीजें कैसे उपलब्ध हो सकती हैं ?"

उसकी बातो मे सार था, लेकिन किसी दिन तो ये मार्ग सुगम हो ही जायगे। तब यातायात के साधन दुर्लभ नही होगे। हिमपात भी उन्हे घरो मे बद रहने के लिए विवश नही करेगा और नये भारत के निर्माता ये बच्चे मैदानो के बच्चो की तरह उचित शिक्षा पा सकेंगे। लेकिन अभी तो उस 'कब' के आगे एक बहुत बडा प्रश्न चिह्न लगा है।...

सहसा दृष्टि एक वृक्ष पर जाकर अटक गई। बडे अनोखे फूल थे उसपर। गुच्छे के रूप मे ऊपर की ओर फैलते चले जाते हैं और अत मे वह गुच्छा मदिर के कलश की तरह हो जाता है। पास ही एक पहाडी युवक जा रहा था। पूछा, "यह कौन पेड है, भाई ?"

वह बोला, "इसे पागुरी या पागुर लाल कहते हैं। इसके फल का नाम है गूंदा।"

"इस फल का क्या होता है ?"

"खूब पीसकर इसे भेड-बकरियो को खिलाते हैं।"

"क्यो खिलाते हैं ?"

"क्योकि इसे खाकर वह पहाडो पर कूदती हैं।"

मैंने हँसकर कहा, "अच्छा, यदि हम खा लें तो ?"

एकदम वह बोला, "आप भेड-बकरी हैं क्या ?"

और इतना कहकर वह मुस्कराता हुआ भाग गया।

आकाश डरावना होता आ रहा था। सुरमयी घटाएँ पूरे विस्तार को ग्रस चुकी थी। इधर की साझें प्राय भीगी रहती हैं, इसलिए सियाण चट्टी पर रात बिताने को विवश हो गये। अच्छा ही हुआ। भीड यहा भी बहुत थी। इसी भीड मे अचानक एक कन्नड साधु से भेंट हो गई। 'मार्ग मार्ग जायते साधू सत।" उनका नाम था रघुनाथ पद्मनाथ किणी। पूर्व आश्रम मे वह मैकेनिक थे। अपने वैराग्य की कथा बताते हुए उन्होंने कहा, "बचपन से ही कोई स्वप्न मे कहा करता था, घर छोड दो। विवाह के बाद जब एक सतान हो गई तो मैंने घर छोड दिया। परतु कुछ दिन बाद वापस आने की आज्ञा हुई। कहा, यह तुम्हारी परीक्षा थी। ५० वर्ष की आयु के बाद घर छोड देना। पत्नी भी इस बात से सहमत हो गई।"

उनके तीन लडकिया और दो लडके हुए। २६ वर्ष की आयु मे बडे लडके का विवाह करने का निश्चय किया। लेकिन लग्न बधन की तिथि से ठीक दो महीने पहले वह चल बसा। स्वय उनकी दाहे भुजा पर पक्षाघात हुआ। उनका मन जैसे टूट गया। सुख-दुख से ऊपर जो द्वद्वातीत अवस्था है उसीकी खोज मे वह निकल पडे। भ्रमण करते-करते हाथ आप ही ठीक हो गया। साधु का बाना धारण किये सात वर्ष हो गये हैं, पर अभी विधिवत सन्यासी नही हुए हैं। गुरू का आदेश है कि सन्यास तभी लेना चाहिए जब गिरने का डर न रहे। उसके बाद केवल एक बार यह घूमते-घामते अपने देश गये थे, लेकिन घर से नाता नही जोड सके।

मन को कुछ अच्छा नही लगा। शायद मैं नैतिक स्तर का व्यक्ति

हू । जो दायित्व मैंने ओढा है, उसे पूरा करने मे ही मेरी सार्थकता है, शेष पलायन है । योग मे मेरी गति नही है । वहा तो नैतिकता रूपहीन हो रहती है और दायित्व बधन नही रहता । इसलिए घर छोडकर साधु हो जाने मे अभी मेरा विश्वास नही है । लेकिन किणी वैसे बहुत सज्जन हैं । न अभिमान, न ढोंग, योगी-सा सरल मन और विचार भी आग्रहविहीन है । हिंदी खूब मजे की बोल लेते हैं ।

किसी प्रसग मे उन्होने कहा, "भाई, बात सारी भावना की है । एक ही नारी जब अपने बेटे को छाती से लगाती है तो उसमे से दूध की धार फूट पडती है, लेकिन जब उसका प्रेमी सामने आता है तो उसी वक्ष मे उद्दाम काम की आग भडक उठती है ।"

क्रोध की उत्पत्ति और स्थिति पर विस्तार से चर्चा करते हुए बोले, "मानव के क्रोध की चार अवस्थाए हैं, सुप्तावस्था, सूक्ष्म, अविच्छिन्न और उदार । सुप्तावस्था मे क्रोध सोता रहता है । व्यक्ति जान ही नही पाता कि उसे क्रोध हो आया है । सूक्ष्मावस्था मे क्रोध का ज्ञान तो रहता है, लेकिन किसी विपदा के भय के कारण वह प्रगट नही होता । अविच्छिन्न का अर्थ है कि क्रोध होने पर भी लोक-लाज के कारण उसे अतर मे ही छिपे रहने दिया जाता है । उदार अवस्था मे क्रोध विना किसी भय और लोक-लाज के प्रकट होता रहता है । उसे केवल बोध मे ही जीता जा सकता है । यू ज्ञानी लोग बहुत-से उपाय बताते हैं । जैसे प्रथम क्षण को टाल देना चाहिए, इत्यादि-इत्यादि । लेकिन बोध के अभाव मे कुछ भी संभव नही है ।"

उनके पास गर्म वस्त्र नही थे, यह देखकर भाभीजी ने अपना गरम शाल उन्हे दे दिया । वह बोले, "मा, हमे तो पुराना वस्त्र दो । इसकी देखभाल कहा करेंगे ।"

पर भाभीजी के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने उसे रख लिया ।

२७ मई की सवेरे हम लोग गगानी की ओर रवाना हुए । वर्षा के मेघ आकाश के समूचे विस्तार को घेरे हुए थे । रात भी अच्छा पानी पडा था । उसीमे स्नान कर पवन शीतल मंद हो आया था । हमारे मन भी भीगे हुए थे, इसलिए त्रस्त कर देनेवाले उतार-चढाव, भयदायक

मोड, डगमगाते पुल, कोई भी हमारे पथ की बाधा न बन सका। वर्षा की नन्ही-नन्ही बूदो का आनद लेते हुए हम यमुना चट्टी पहु च गये। यहा पर डाकघर था और उसी दिन डाक निकलनेवाली थी। कुछ पोस्टकार्ड खरीदे और शोभालाली से पेन लेकर तुरत कई पत्र लिख डाले। तभी विपरीत दिशा मे जानेवाले किसी यात्री ने पेन माग लिया। देने के बाद लेना बिल्कुल भूल गया। जब याद आई तो काफी मार्ग पार कर चुका था। लौटकर उसको ढूढने जाने की हिम्मत करना मूर्खता ही होती। यात्रा-पथो पर ऐसे आकस्मिक दान होते ही रहते हैं। भाग्य की विडबना देखिये कि शोभालालजी भी उस पेन को अपनी लडकी से मागकर लाये थे।

चट्टी के अत मे वह दूकान थी, जिसपर हमने जाते समय सकट की रात बिताई थी। शिशु गोवर्धन पूर्वत लेटा हुआ किलकारी मार रहा था। उसकी मा भी हँसती-लजाती हम लोगो से मिली। जीवन भी कैसी विचित्र यात्रा है। न जाने कितने सगी-साथी इस रगमच पर अपनी क्षणिक छवि दिखाकर लुप्त हो जाते हैं। उन्हीमे कुछ ऐसे होते हैं, जिनको वह क्षण अमर कर देता है। इस परिवार को सम्भवत हम कभी न भूल सकेंगे।

हलकी-हलकी बूदें अब मासल हो उठी थी। जाते समय जहा दावानल का प्रकोप था वहा अब जल और कुहर का साम्राज्य था। सबकुछ जैसे गहरी धुध की गुजल मे सिमट गया हो। मेघ भी सघन और वाष्प-सकुल थे। हम लोगो ने गति तेज कर दी। तभी सहसा राजमाता से भेंट हो गई। उन्होने तुरत अखरोट और भुने हुए आलू हमको खाने के लिए दिये। कैसी है यह मा की जाति। सतान को बस प्यार का अजस्र दान ही करती रहती है। इस प्यार ने हमारे पगो मे अनत स्फूर्ति भर दी और ६ घटे मे १२ मील का यह पथरीला दुर्गम मार्ग पार करके हम गगानी पहुच गये। १२ बजनेवाले थे। यहा रुकना आवश्यक था। जाते समय कुछ सामान छोड गये थे। भीड की चर्चा करना व्यर्थ है। चौकीदार देवीसिंह कही छिपकर जा बैठा था। किसी तरह उसको खोज निकाला और ऊपर के एक सुरक्षित कमरे पर अधिकार कर लिया। ऐसा लगा, मानो शिवाजी ने किसी दुर्ग पर अधिकार किया हो। होटल मे भोजन भी

अच्छा मिल गया। गर्म-गर्म मूग की दाल, आलू का साग, और रोटी। दुर्गम मार्गों पर यह भोजन अमृत हो रहता है।

देखता हू, राजमाता की एक चेरी ज्वर के कारण आक्रान्त है। वार-वार राह मे उसे बैठना पडता है। मैंने उसे कहा, "ऐसे दुर्गम मार्गों पर रोग को आमन्त्रित नही करना चहिए। तुम प्रतिदिन हिम जैसे शीतल जल मे स्नान करती हो, दवा लेती नही। तव स्वस्थ होने की आशा कैसे कर सकती हो ?"

करुण स्वर मे वह वोली, "मैं नौकरानी हू, राजमाता का खाना वनाती हूं। वह छूतछात मानती हैं। नहाना मेरे लिए वहुत जरूरी है।"

इस बात का कोई उत्तर मेरे पास नही था। राज अव नही रहे, पर अधिकार की क्षुधा सहज ही शांत नहीं होती। दवा देकर उस चेरी को मैंने विदा किया। इधर चिकित्सा की व्यवस्था अत्यत असतोषजनक है। हम लोग तो अपना पूरा प्रवध करके चलते हैं। दवा का नाम सुनते ही आस-पास के लोग घेर लेते हैं। उनकी सहायता करने का प्रयत्न भी रहता है, लेकिन 'नीम हकीम खतरये जान' इस कहावत का उदाहरण वनने की हमारी विल्कुल इच्छा नहीं है। तभी मार्ग मे एक आदमी को कण्डी मे जाते हुए देखा, जैसे कुछ क्षणो का ही मेहमान हो। उनकी पत्नी वहुत व्याकुल हो रही थी। वोली, "इन्हे खूनी पेचिश हो रही है। शरीर मे कुछ नही रहा। न जाने मेरे भाग्य मे क्या लिखा है ?'

मैंने कहा, "भाग्य की वात तो मैं नही जानता, डाक्टर भी नही हू पर पेचिस की दवा मेरे पास है।..."

करुण स्वर मे वह वोली, "आपकी वडी दया होगी, दीजिए न।"

वह वहुत व्यग्र हो रही थी और मुझे उतना ही डर लग रहा था। फिर भी मैंने दवा दी और समझाया, 'पहाडो पर अक्सर ऐसा हो जाता है। भोजन और पीने के पानी का ध्यान रखोगी तो तीन-चार दिन मे ठीक हो जायगे।"

फिर अंत तक उन लोगों से मिलना नहीं हुआ। विश्वास करना चाहिए कि वह व्यक्ति ठीक ही हो गया होगा। हर चट्टी पर इसी प्रकार नाना प्रांतो और नाना विचारो के लोग मिलते हैं। उन लोगो की बातें

सुनने मे बडा रस आता है। बाहर वर्षा हुए जा रही है। कमरे मे लेटे-लेटे मैं सबकुछ सुन रहा हू। एक यात्री बोझी से मोल-तोल कर रहा है। बोला, "क्या लोगे ?"

बोझी ने कहा, "तुम बताओ।"

यात्री बोला, "सामान तुमको ले जाना है, बताना भी तुमको ही चाहिए।"

बोझी ने सहज भाव से तर्क किया, "सामान तुम्हारा है, जिसका लडका होता है। वही नाम रखता है। इसलिए तुम्ही बताओ।"

सुनकर सहसा हँसी आ गई। मोलभाव की प्रवृत्ति भी मनुष्य को कैसा तार्किक बना देती है। साधु भी इधर बहुत मिलते है। गाजा पीते-पीते साधु हो जाते हैं, भीख मागते हैं। यह राष्ट्र, मनुष्य और बुद्धि सभीका अपमान है। आलस्य और अज्ञान कभी साधना के आधार नही रहे हैं। रह भी नही सकते। यह तो पलायन से भी घृणित पाप है। नियति का यह कैसा व्यग्य है कि अतरिक्ष के युग मे भी अधविश्वास मनुष्य को उसी तरह दबोचे हुए है।

यही सोचते-सोचते नीद आ गई। आख खुली तो घडी मे तीन बजे थे। आज वास्तव मे सो नही सके। तख्ते बिछाकर उनपर लेटे थे। माधव और मैं ऐसे स्थान पर थे कि कोई भी करवट लेता तो हम अनायास ही ऊपर उठ जाते। कैसा जीवन है ! तीन बजे, उठो, बिस्तर बाधो, आवश्यक सामान कधो पर डालो, शेष बोझी को सभलवाओ और चल पडो आगे के पथ पर।

६

"कहा नहीं, सहा जाता है"

दो मील तक बडा सुगम मार्ग था। सिमली चट्टी से मार्ग दूसरी ओर

मुड जायगा। डुण्डाल गाव से पैदल चलकर हम सिमली ही आये थे। अब यही से बाईं ओर गगोत्री का मार्ग पकडना है। मन भर आया। यह एक यात्रा का अत था और दूसरी का आरम्भ। कहते हैं यमनोत्री का मार्ग अपेक्षाकृत कठिन है। अपेक्षाकृत जनहीन, सुविधाए विरल, निर्घनता विपुल, पुल काठ के बने हैं, जिनपर पैर रखते प्राण कापते हैं। इसलिए इधर यात्री कम आते हैं। अधिकाश आते हैं धर्मभीरु वृद्ध नर-नारी। मृत्यु तब भय नही, मुक्ति हो रहती है, प्रेम और श्रेय दोनो...।

सामने नया मार्ग था और नए दृश्य। आरम्भ मे ही चढाई। एक मील तक विशेष कठिन नही है, लेकिन आगे पग-पग पर प्राण सिहर उठते है। कुछ गज चलते, फिर रुककर सासो को सम्भालते, मुह मे मिश्री डालते, पानी पीते या प्रकृति का निरीक्षण करते। मार्ग जितना दुर्गम है, प्रकृति उतनी ही मनोरम है, कहूगा दिव्य है। सघन वन, बीच-बीच मे प्रकृति द्वारा निर्मित, किलाई के चीड जैसे ऊचे घने वृक्षो और द्रुम लताओ के निकुज, वे तपस्वी सूर्य के ताप को स्वय सहकर यात्रियो को निरतर शीतल छाया प्रदान करते रहते है। कलकल-छलछल करते फेनिल झरनो का तो जैसे कोई अत ही नही है। मधुर गान गाते नाना रगो के पक्षी, निरतर मानसिक इन्द्र धनुषो का निर्माण करते रहते है। दस बज चुके, फिर भी सूर्य की किरणें धरती को स्पर्श करने का साहस नही कर रही थी। मन बार-बार यही रम जाने को मचल उठता है। परन्तु यायावर भी क्या कही रुकता है। हम भी इन नयनाभिराम दृश्यो को देखते हुए निरतर ऊपर चढते चले गये। इतना सघन वन कम ही देखा है। प्राकृतिक सुषमा के ऐश्वर्य के अतिरिक्त उपयोगी वस्तुओ का अभाव भी यहां नही है। नाना प्रकार की इमारती लकडी, नाना प्रकार की औषधिया, अखरोट, खूबानी आडू और अजीर..। नीचे के भागो मे खूबानी और अनार मिलते हैं। लेकिन रीछ और तेदुए भी दुर्लभ नही है। अकेले यात्री पर आक्रमण करना उन्हें विशेष प्रिय है।

आज के सहयात्रियो मे एक रामायणी पण्डितजी को सहज ही नही भुलाया जा सकेगा। सपूर्ण रामायण उन्हे कण्ठस्थ है। स्वर भी अत्यत श्रुति मधुर। इस कष्ट-साध्य चढाई की पीडा को भुलाने के लिए वह राम

वनवास के उदात्त करुण प्रसग की कथा कहने लगे। बोलते-बोलते वह इतने आत्म-विभोर हो उठते कि भूल जाते सामने चढाई है। द्रुति गति से दौड पडते। तब मार्ग मे कही रुककर हम पीछे देखते तो मुह से निकल पडता, "अरे, इतना ऊपर चढ आये।" हर चढाई जैसे आकाश मे जाकर खो जाती है और वही से मानो कोई उभक-उभककर हमे आने के लिए आमन्त्रित करता है। जब वहा पहुचते और नीचे देखते हैं तो वहा का विस्तार नयनो मे भरकर हमे गुदगुदा देता है।

चढे तो चाखे प्रेम रस - गिरे तो चकनाचूर

सगीत मे सम्मोहन होता है। वही सम्मोहन आज हमारी शक्ति बन गया। कागडा की भूतपूर्व राजमाता तक डाडी से उतर पडी। दुर्गम मार्ग पर पैदल चलने का सम्भवत यह उनका पहला अवसर था। एक और साथी उस पथ पर मिले। वह थे राची के व्यापारी श्री वासुदेव। युवक थे। किशोर माधव के साथ मिलकर वह क्षण-क्षण मे 'सियावर रामचद्र की जय, पवनसुत हनुमान की जय' के घोष से सारे वातावरण को गुजा देते। अनायास ही उनके कण्ठ के साथ अनेक और कण्ठ मिल जाते। तब हिमालय का वह सघन वन सचमुच सहस्र जिह्वाओं से बोल उठता। बीच-बीच मे पण्डितजी कहते, "चढाई को सुगम करने का एक ही उपाय है, अपने पैरो पर दृष्टि जमा दो, सामने के पथ को मत देखो।"

इसी तरह यमनोत्री की पर्वतमालाओ को पीछे छोडते हुए हम इस हरी-भरी उपत्यका के शिखर पर पहुच गये। इसका नाम है फलारचा की धार। धार अर्थात् शिखर। ८ हजार फुट की इस ऊचाई पर गर्मी जैसे समाप्त हो गई हो। शीत मुखर होने लगा। और हम शिखर-जय के आनद ले पुलक उठे। यहा चाय आदि की दुकानें हैं। हम लोगो ने इच्छानुसार चाय-दूध पिया। लेकिन अभी तो हमे सिंगोट चट्टी पहुंचकर रात के ठहरने का प्रबध करना था। इसलिए यशपालजी के साथ मैं शीघ्र नीचे उतरने लगा। जैसी दुर्धर्ष चढाई वैसी ही विकट उतराई। पैर टिकते ही न थे। इसपर हम सुगम लम्बे मार्ग को छोडकर छोटी-छोटी भयानक पगडण्डियो से उतरने लगे। सूर्य प्रखर हो उठा। सघन वन पीछे छूट गया। न थे झरने, न थे कुज। बस, प्रखर ताप से आलोकित पातालगामी

पथरीला मार्ग सामने था और थे घायल पैर लिये हम दो प्राणी। बार-बार हृदय कापता कि अब फिसले और जीवन का अत हुआ। कही-कही तो चतुष्पाद होकर चलना पडता था। सारे मार्ग पर पेडो से झर-झरकर सूखी चिकनी पत्तिया बिखरी पडी थी। फिसलने का आतक प्रति क्षण मन पर बना रहता था।

किसी तरह जीर्ण-शीर्ण सास लेकर सिगोट पहुचे। दुर्भाग्य जैसे हमारी राह देख रहा हो। कुछ सह-यात्री हमसे भी पहले पहुचकर यहा की एकमात्र धर्मशाला पर पूर्ण अधिकार जमा चुके थे। घायल पैरो मे पट्टी लपेटे स्थान के लिए लपकती एक नारी का चित्र आज भी आखो मे उभर-उभर उठता है। तीर्थ जैसे लक्ष्य न हो, लक्ष्य हो केवल रात्रि-शयन का स्थान।

प्रयत्न करने पर किसीके निजी मकान मे एक कमरा किराये पर मिल सका। वहा से कुछ दूर पर एक प्रपात दिखाई देता है। वही से पानी आता है। हम लोगो को स्नान और कपडे धोने की सुविधा इसी प्रपात के कारण हो गई। खाने-पीने की वस्तुओ के भाव यहा अपेक्षाकृत तेज है। घी ६ रुपये सेर, दूध १ रुपये दो आने सेर। दोपहर हो चुकी थी। यशपालजी भोजन के प्रबध मे व्यस्त हो उठे, परन्तु अमरसिंह के कारण आज विशेष कठिनाई नही हुई।

कमरा इतना छोटा था कि दल के सभी साथी वहा नही सो सकते थे। दो व्यक्ति तख्त पर, एक-एक दो बेंचो पर, तीन धरती पर सो सके। शेष को धर्मशाला के बरामदे मे शरण लेनी पडी। कई कमरो पर सुपरिचित इजीनियर दल ने अधिकार कर रखा था। राची का दल भी काफी बडा था। इस यात्रा मे अनेक बार गजटेड अफसरो और सेठो से हमारी स्पर्धा हुई है। आज इजीनियर दल अच्छे स्थान पर अधिकार करके भी कठिनाई मे पड गया। आधी रात तक उनके बोझी नही लौटे। जो अब-तक स्थान के लिए स्पर्धा कर रहे थे, वे ही अब सहयोग के लिए प्रार्थना करने लगे। स्त्री-बच्चे शीत के प्रकोप से आक्रात थे। राची के सेठो ने उनकी सहायता की, परन्तु सभी लोग अत्यत आवश्यक सामान लेकर ही चलते हैं। एस० डी० ओ० साहब की पत्नी के पास पहनने के लिए इस

समय धोती भी नही थी। बडे विनम्र स्वर मे उसने वासुदेव से कहा, "भाईसाहब, एक धोती मिलेगी ?"

वासुदेव तुरत अपनी पत्नी की धोती ले आया। सकट के समय सभी ऐसा करते हैं, परतु गजटेड अफसर की शान देखते-देखते मैं कुछ अधिक विरक्त हो उठा था। यह स्वर सुनकर मुझे आत्म-रति का-सा सुख मिला। क्या यह पाप नही है ? लेकिन जाने दीजिये, मन की बात नही कहूगा। हम लोगो ने भी अपने पास से कम्बल और लोई उन्हे दी। किसी तरह मिल-जुलकर रात कटने लगी। दो बजे के लगभग उनके बोझी वहा पहुच सके।

इसी झमेले मे आज सोना नही हो सका। सारा समय उस रात को बीतते देखने मे ही समाप्त हो गया। सवेरे चलने मे देर भी हो गई। देर का एक और भी कारण हो गया। बहुत ढूढने पर भी भाभीजी की सवारी का टट्टू कही नही मिल रहा था। वह रात उसके लिए भी अच्छी नही रही। किसीने उसे घायल कर दिया था। अब तो उसके बिना ही आगे बढने को हम विवश हो गय।

तीन मील की साधारण उतराई थी। नाकुरी पहुचने मे कोई कठिनाई नही हुई। भरासू उत्तर काशी के मार्ग पर यह वह स्थान है जहा यमनोत्री से आकर यात्री गगोत्री की ओर रवाना होते हैं। कई दिन बाद यहा फिर उमगती-उछलती भागीरथी के दर्शन करके मन-प्राण पुलक उठे। एक धर्म-भीरु साथी बोले, "काश, कल यहा आ पाते। गगा दशहरा कल ही तो था। इसी दिन गगावतरण हुआ था।"

किसी विशेष क्षण की वैज्ञानिकता मैं अभी नही समझ पाया। पर गणित है, तो विशेष क्षण का महत्व रहेगा ही। भावनात्मक विज्ञान मे तर्क कोई अर्थ नही रखता। मन को अच्छा लगता है, यही सापेक्ष मूल्याकन उसका आधार है।

लेकिन नही, आज कुछ सोचने को मन नही करता। उत्तर काशी पहुचने की उतावली है। गगा के किनारे-किनारे छह मील का समतल मार्ग है। उस विस्तृत मैदान मे तम्बाकू और आलू के खेत फैले पडे थे। और उनमे काम कर रहे थे प्रसन्न वदन स्त्री-पुरुष। झरनो को काट-काट

कर वे छोटी-छोटी नहरें सिंचाई के लिए लाते हैं और धरती उनसे उर्वरा होकर अन्नपूर्णा का विरद पाती है। धूप थी, फिर भी आनदपूर्वक आगे बढते चले गये। कठिन उतार-चढाव के वाद समतल पर चलना कितना अच्छा लगता है, जैसे तीव्र दर्द मे कोई कोमल स्पर्श शरीर को सहला दे। इसी पुलक मे तीन मील चले होगे कि पुराण-प्रसिद्ध उत्तर काशी दिखाई देने लगी। कई दिन तक उस दुर्गम और निर्जन प्रदेश मे रहने के बाद २५०० प्राणियो की इस नगरी ने नयनो को वहुत सुख दिया। धर्म-प्राण व्यक्ति मानते हैं कि कलि-काल मे काशी वाराणसी का पुण्य इतना प्रवल नही है जितना उत्तर काशी का। असी और वरुणा नदियो के बीच मे बसी इस नगरी मे काशी विश्वनाथ, बिन्दु माधव, दत्तात्रेय, परशुराम आदि के मदिर हैं। मणिकर्णिका घाट, साधु-सन्यासियो के क्षेत्र तो हैं ही, इसके अतिविरक्त भी बहुत-कुछ है। है दुर्लभ पर्वत सुषमा, प्राणदायक वायु और कोलाहल का अभाव। भागीरथी जिन तीन स्थानो पर उत्तर की ओर बहती है, यह स्थान उनमे एक है। काशी वाराणसी मे भी गगा उत्तरवाहिनी है। सम्भवतः इस स्थान का नाम काशी इसीलिए हुआ। उत्तर मे होने के कारण कालातर मे इसे उत्तर-काशी कहने लगे होगे।

सिंगोट से नौ मील चलकर लगभग साढे चार घटे मे जब उत्तर-काशी पहुचे तो नौ बजे थे। उत्तर-काशी मे बिडला धर्मशाला है। इसके व्यवस्थापक को हम लोगो के आने की पूर्व-सूचना मिल चुकी थी। इस-लिए स्थान प्राप्त करने मे असुविधा का कोई प्रश्न ही नही था। हम लोग वरुणा के पुल से नीचे उतरकर जब वहा पहुचे तो मन बहुत प्रसन्न हुआ। धर्मशाला बहुत ही स्वच्छ और सुदर है। आज यहा घर के समाचार मिलने की आशा थी। सो सबसे पहले डाक की तलाश की, लेकिन विशेष कुछ नहीं मिला। अखबार देखे, तो भी चौंका देनेवाला कोई समाचार न था।

मार्तण्डजी तथा घोरपडे आज अस्वस्थ दिखाई दिये। मेरा बाया टखना भी सूज गया था। नगर मे यह सूजन चिंता का कारण हो सकती थी, लेकिन यमनोत्री के मार्ग पर जो कुछ देख चुका था, उसके सामने वह कुछ

भी तो नही था। इसलिए सोचा, न चल सका तो घोडा कर लूगा। एक-दो के लिए रुकना आवश्यक हुआ तो रुक भी सकता हू, पर लौटूगा नही। रोज देखता था, किसीके पेट मे पीडा है, किसीको ज्वर है, किसी-के पैर घायल हैं। चला नही जाता, लेकिन मुख पर वही उल्लास है, वही उतावली है—"जाना है, जाना है, रुकने का है नही काम।" एक प्रौढ महिला को मैं कभी नही भूल सकता। पैरो मे अत्यत कष्ट था, लेकिन उसी उत्फुल्ल भाव से मुस्कराती हुई वह लकडी के सहारे आगे बढ रही थी। मैंने सहानुभूति प्रकट की तो बोली, "थकते हैं, पीडा भी होती है, पर तीर्थ मे उसे कहा नही जाता, सहा जाता है।"

इसे अदम्य विश्वास कहिये या अधविश्वास, इस अदम्य और अध के बीच की सीमा-रेखा बडी छलिया है। पर विश्वास किसी भी रूप मे हो, मनुष्य को अतिम लक्ष्य की ओर आनद से खीच ले जाता है। एक और नारी की याद आती है। सुदूर ग्रीक देश की वह युवती उत्तर-काशी के कुष्ठ आश्रम मे काम करती थी। उत्साह और उमग की जैसे प्रतिमूर्ति हो। अचानक वहा के छोटे-से बाजार मे घूमते हुए उससे भेंट हो गई। उसके साथ स्वामी शिवानद की शिष्या एक फ्रेंच प्रौढा भी थी। पर उन्होंने मौन व्रत लिया था। ग्रीक युवती से ही बातें होती रही। जब हमने उसके साहस और सेवा-भाव की प्रशसा की तो वह तुरत ही प्रखर स्वर मे बोली, "मैं ग्रीक देश की नारी हू। अबतक तुमने ग्रीक देश की नारी नही देखी है। मैं जानती हू, अपने देश का प्रतिनिधित्व अच्छी तरह करना चाहिए। ऐसा कुछ न करू, जिससे आप मेरे देश के बारे मे कोई अनुचित राय बना सकें।"

सुनकर दग हो आया। अति आधुनिक युग के बधु-बाधवी अप्रसन्न न हो तो मैं कहूगा, सेवा और कष्ट सहन मे नारी की तुलना नही है। विदेशो मे भी घूमा हू। अधुनातन नारी को भी देखा है, परतु इस विचार को बदलने का अवसर नही आया। अपवाद की बात मे नही कहूगा।

बहुत देर तक भागीरथी के तट पर बसे इस छोटे-से नगर के बाजार मे घूमता रहा। सब-कुछ यहा मिलता है, कचहरी, न्यायालय, डाक-तार-

घर, अस्पताल, रामकृष्ण पुस्तकालय, राजकीय उच्च माध्यमिक स्कूल, कन्या पाठशाला, कताई केन्द्र। सेना का केन्द्र भी है। बिडला धर्मशाला के अतिरिक्त कालीकमलीवालो की धर्मशाला और पजाब क्षेत्र है। डाक-बगला भी है। निरीक्षण भवन का निर्माण पेशवा ने उन सैनिको के लिए करवाया था, जो १८५७ के विद्रोह के बाद इधर आ गये थे। सन्यासियो के कई आश्रम हैं, जिनमे कैलास आश्रम, देवगिरि आश्रम और रामकृष्ण आश्रम प्रमुख है। ३,८०० फुट की ऊचाई पर बसे इस नगर की जलवायु सुखप्रद है। खूब स्नान किया, कपडे धोये। घाट पक्के बने हुए हैं। उन दिनो पानी कम था, इसलिए मुख्य धारा तक जाने के लिए छोटी-छोटी धाराओ को पार करने मे बड़ा आनद आया। प्राकृतिक दृश्य इतने सुदर हैं कि दृष्टि थकती ही नही...

: १० :

उत्तर-काशी

उत्तर-काशी का पुराना नाम बाडाहाट है। पौराणिक परपरा के अनुसार 'किरातार्जुन युद्ध' इसी स्थान पर हुआ था। वस्तुतः यह आर्यों की परंपरा रही है कि विजय करते हुए जैसे-जैसे आगे बढते गए हैं, वैसे-वैसे उन्होने पुराने नगरो को नये नाम दिये हैं। और उनके साथ किसी-न-किसी रूप मे अपने इतिहास का सबध जोड दिया है। उषा-अनिरुद्ध की कहानी गढवाल मे ऊखी मठ से भी सबधित है और सुदूर दक्षिण मे आन्ध्र प्रदेश से भी। राम की कथा हिमालय से लेकर दक्षिण भारत मे होती हुई दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशो मे फैल गई है। मलय देश की राजधानी क्वाला लपुर मे हमने एक ऐसी गुफा देखी थी, जिसके बारे में वहा यह मान्यता है कि पाडवो ने वनवास के तेरहवें वर्ष मे इसी गुफा मे अज्ञात वास किया था।

गढवाल के इतिहास मे उत्तर-काशी की सीमा के संबंध मे लिखा है; "टिहरी से ४५ मील पर गगोत्री के रास्ते मे भागीरथी के दाहिने किनारे की कुछ समतल-सी भूमि मे वह अवस्थित है। इसे सौम्य (उत्तर) काशी बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। पूर्व दक्षिण मे गगाजी का प्रवाह है, उत्तर मे असि गगा, पश्चिम मे वरुणा नदी, इसके पूर्व की तरफ केदारघाट, दक्षिण की तरफ मणिकर्णिका का परम पुनीत घाट है। मध्य मे विश्वेश्वर का मदिर है। गोपेश्वर, काल भैरव, परशुराम, दत्तात्रेय, जडभरत और भगवती दुर्गा के प्राचीन मदिर भी हैं।"

इस तीर्थ की महिमा का बखान करते हुए एक पण्डे ने कहा था, "मैदान की काशी भोग-भूमि है, उत्तर-काशी योग-भूमि। कलिकाल मे यही मुक्ति मिलती है।"

नही जानता, यह दावा कितना सत्य है। लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि अभी तक यह सुप्त नगरी के समान शात है। न कीर्तन है, न मदिरो से उठती हुई आरती के स्वर। ऐसा लगता है कि मानो किसी पहाडी युवती ने समाधि लगा ली हो। काशी विश्वनाथ का वर्तमान मदिर बहुत सादा, परतु सुदर है। इसका जीर्णोद्धार महाराज सुदर्शन शाह ने १८५७ ईस्वी मे करवाया था। उसके गर्भ-गृह मे विशाल शिवलिंग है। पार्वती, शिवशक्ति, मार्कण्डेय, साक्षी गोपाल तथा गणेश आदि देवताओ की अनेक मूर्तिया हैं, लेकिन उनमे कोई विशेषता नही है। फिर भी इन अगम्य प्रदेशो मे काशी विश्वनाथ को पाकर धर्म-भीरु भक्तो की श्रद्धा जैसे उमड पडती है।

इस मदिर के प्रागण मे और भी कई मदिर हैं। इनमे उल्लेखनीय है शक्ति का मदिर। इस मदिर मे बहुत बडे आकार का एक त्रिशूल है। अभी हमने कहा था, उत्तर-काशी का वास्तविक नाम बाडाहाट है। हाट का अर्थ होता है राजधानी। लेकिन बाडा शब्द का अर्थ अभी समझ मे नही आया। सभवत यह किसी राजा की राजधानी है। राहुलजी का विचार था कि इसका सबध गूगे (मानसरोवर) के राजाओ से रहा होगा। [illegible] दृष्टि से शक्ति के मदिर मे जो त्रिशूल है, वह बहुत महत्व-[illegible] है। पौराणिक मान्यता के अनुसार यह देवासुर-सग्राम के समय की

छूटी शक्ति है । परतु वास्तव मे यह २६ फुट ऊचा विशाल त्रिशूल है । नीचे पीतल और ऊपर अष्टधातु के बने इस त्रिशूल पर शुद्ध सस्कृत मे एक अभिलेख है । राहुलजी ने लिखा है, "यहा का विशाल त्रिशूल सारे गढवाल कुमायू मे सबसे पुरानी पुरातात्विक कृति तथा उसका अभिलेख, प्राय· सबसे पुराना अभिलेख है । लेख तीन पक्तियो मे है । पहली पक्ति के अक्षर कुछ छोटे तथा श्लोक शार्दूल विक्रीडित छद मे है । दूसरी मे बडे अक्षरो मे उसी छद का एक श्लोक है । तीसरी मे बहुत बडे अक्षरो मे स्रग्धरा है । पूरा लेख शुद्ध सस्कृत मे साफ और सुदर है ।

इन श्लोको मे पता चलता है कि प्रजानुरागी गणेश्वर नाम के राजा ने विश्वनाथ के अत्यंत उन्नत मदिर का निर्माण कराया और राज्य लक्ष्मी को अणु समझकर और उसे अपने प्रियजनो को सौंपकर, मत्रियो-सहित इन्द्र की मित्रता की याद मे उत्सुक होकर सुमेरु मदिर (स्वर्ग या कैलास) चला गया । उसके बाद उसका पुत्र प्रतापी श्री गुह राजा हुआ । वह अत्यत बलशाली, विशाल नेत्र तथा दृढ वक्षस्थलवाला था । सौंदर्य मे मन्मथ से, दान मे कुबेर से, नीति या शास्त्रो में वेदव्यास से बढ-चढकर था । इसीने भगवान के सामने इस शक्ति-स्तम्भ की स्थापना की थी ।

इस अभिलेख का अतिम श्लोक बहुत सुदर है—"जबतक भगवान सूर्य अपनी तरुण किरणो से गाढाधकार को नष्ट करते, नक्षत्रो की चित्र-चर्या को मिटाकर, गगन फलक मे अपने बिम्बरूपी तिलक को लगाते रहे, तबतक प्रतापी राजा गुह की यह कीर्ति सुस्थिर रहे ।"

त्रिशूल की ऊपरी मोटाई १ फुट १५ इच, नीचे की ८ फुट ९ इच, ऊचाई २६ फुट है । जिस लिपि मे यह अभिलेख लिखा गया है, वह ईसा की छठी-सातवी सदी की मानी जाती है । इसी लिपि मे केदार-बदरी के मार्ग पर गोपेश्वर का अभिलेख है । यह लेख भी त्रिशूल पर अकित है ।

परशुराम का मदिर भी अच्छा है । उसमे दशावतार की मूर्तिया हैं । पृष्ठभूमि तथा दाये-बाये पार्श्व मे नव-गृह की मूर्तिया हैं । उसीके निकट दत्तात्रेय का मदिर है । लेकिन यह मदिर उपेक्षित है । दत्तात्रेय के नाम पर यहा जिस प्रतिमा की पूजा होती है, वह वास्तव मे बुद्ध-मूर्ति है ।

राहुलजी ने लिखा है, "ग्यारहवी सदी के शुरू मे थोलिंग गुम्बा के बनानेवाले यशेप्रोद (ज्ञानप्रभ) के पुत्र देव भट्टारक नागराज ने यहा बडा-सा बुद्ध का मदिर बनवाया था, जिसकी अति सुदर बुद्ध-प्रतिमा आज भी दत्तात्रेय के नाम से पुज रही है। मूर्ति के पाद-पीठ पर तिब्बती भाषा और अक्षरो मे लिखा है, 'ल्ह ब्चन्-नगरजई थुन्-पा' (देवभट्टारक नागराज के मुनि)।

महाराज जयपुर का बनवाया हुआ एकादश रुद्र का मदिर भी सुदर है। अन्नपूर्णा के मदिर की मूर्ति अति आधुनिक जान पडती है। देखने के लिए भैरव, गोपेश्वर, आद्य शकराचार्य, भगवान रामचन्द्र, कालि, केदार तथा अम्बिका देवी के मदिर भी हैं। लेकिन उनका महत्व यात्रियो से अधिक पण्डो के लिए है। धर्म-भीरु व्यक्तियो की श्रद्धा पर डाका डालकर अर्थोपार्जन के नाना मार्ग वे खोजते रहते हैं। अधिकाश मदिरो की देखभाल तक नही होती। किसी तरह की व्यवस्था नही है। बस, यात्रियो को देखकर इधर-उधर से बच्चे पैसे मागने के लिए आ जाते हैं।

सुना था, उत्तर-काशी मे साधु बहुत रहते हैं। मधुकरी के लिए प्रतिदिन वे लोग प्रात आठ बजे से लेकर दस बजे तक काली कमलीवाले की धर्मशाला मे तथा दूसरे सदाव्रतो मे आते हैं और भोजन करके अपनी-अपनी कुटियो मे लौट जाते हैं। नगर के बाहर गगा के किनारे-किनारे उनकी कुटिया बनी हुई हैं। उनमे से कुछ साधु अपनी विद्वत्ता और तपस्या के कारण प्रसिद्ध हैं। पहले दिन जब हम लोग धर्मशाला मे पहुचे तो अधिकाश साधु जा चुके थे। दूसरे दिन राची के सेठो ने भण्डारा किया था, इसलिए हम लोग उत्साहपूर्वक ठीक समय पर पहुच गये। देखा, पगतो मे अनेक साधु बैठे हुए हैं। उनमे से अधिकाश नितान्त निष्प्राण और निस्तेज हैं। कुछ नागा भी हैं। उनकी आकृति और भोजन करने का ढग सब प्रभावहीन है। साधना की मस्ती छिपी नही रहती। बडी विरल है। यहा तो ससार से पलायन करनेवालो की सख्या ही कुछ अधिक है, मानो गेरुआ वस्त्र धारण करके किसी तरह भोजन पा लेना ही इनका इष्ट हो।

मन को अच्छा नही लगा, पर सुना था कि जो अच्छे साधु हैं, वे सदा-

व्रत लेने कही नही जाते । उनके लिए भोजन वही पहु च जाता है। स्वामी आनद, ब्रह्म स्वरूपानद, फलारी बाबा, स्वामी प्रज्ञानाथ तथा स्वामी विष्णु-दत्त उनमे प्रमुख हैं । इनमे भी स्वामी विष्णुदत्त सबसे विख्यात माने जाते हैं । इसलिए मन मे उनके दर्शन करने की उत्कण्ठा पैदा हो जाना स्वाभाविक था । नगर से दो मील भागीरथी के तट पर उनका आश्रम है । वही हम लोग पहु चे । उस समय वह भागीरथी के हिम जैसे शीतल जल मे खडे सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे । हम लोग तटवर्ती एक शिला पर बैठ गए । देखा, रग उनका श्यामल है, चेहरा और वक्ष भरा हुआ, नेत्र रक्तिम और शरीर का रुझान स्थूलता की ओर है । आयु ७० से अधिक नही मालूम होती । वैसे कुछ लोग उनकी आयु ११० वर्ष की बताते हैं । सदा नग्न और मौन रहनेवाले यह साधु निवृत्ति मार्ग के हठयोगी हैं । सवेरे दो घण्टे, दोपहर मे तीन घण्टे, साझ पडे एक घण्टा, वेगवती भागीरथी के हिम जल मे खडे होकर सूर्य की उपासना करते हैं ।

सहसा उनकी दृष्टि हमारी ओर मुडी । उसी क्षण उनके हाथ और होठो की गति तीव्र हो उठी । लगा, जैसे हमारे कारण उनकी एकाग्रता मे व्यवधान पडा हो । हम लोग वहा से उठ आये । जलाजलि का उनका यह क्रम बराबर चलता रहता है । मौन वह दो बजे के बाद छोडते हैं । पहले कुछ महीनो के लिए वह गगोत्री चले जाते थे, परतु इधर कई वर्षों से कही नही गये । हम लोगो की बडी इच्छा थी कि उनसे बातें करे । सामूहिक साधना के इस वैज्ञानिक युग मे इस व्यक्तिगत हठयोग का क्या दान है ? यह आत्म-समर्पण किसके प्रति है, किस उद्देश्य से है, यह हम उनके शब्दो मे जानना चाहते थे । साधना तो प्रयत्न और श्रद्धा का योग है, परतु फिर भी उनकी मुखाकृति पर स्पष्ट देख सका कि भीतर कही शका नही है । है केवल अपने पथ के प्रति अटूट आस्था ।

वायु का वेग यहां सहसा तीव्र हो उठता है । आधी, तूफान, वर्षा कल भी खूब आये थे । उस दिन (३० मई) भी प्रकृति का रूप अत्यत उग्र रहा । बारह बजते-बजते ही धुआधार वर्षा आरम्भ हो गई । रात तक होती रही । शका होने लगी कि कल चल भी सकेंगे या नही । ऊपर भी तूफान इसी तरह आता रहा तो क्या होगा ? तभी गंगोत्री से लौटे

हुए एक मारवाडी सज्जन से भेट हो गई। उन्होने तो हमे आतकित कर दिया। बोले, "साहव, पहाड के ऊपर चढना पडता है, सास फूलती है। ऊपर से गिरें तो वस, नीचे ही आते हैं। और साहव, पहाड टूटे हैं। पत्थरो पर पैर टिकता नही "

शब्दो से अधिक उनके बोलने मे आतक था, इतना कि मजाक वन-कर रह गया था—"दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।" मार्ग मे जहा कही भी पानी पीते तो उनकी याद आ जाती। नीचे की ओर देखकर कहते, "क्यो भाई, ऊपर से गिरें तो बस नीचे ही क्यो आते हैं, ऊपर क्यो नही चढते ?"

कोई नवयुग का न्यूटन ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। लेकिन हमे तो सोने से पूर्व काफी काम निबटाने थे। मन उदास-उदास था। पैर मे कष्ट इसका कारण नही था। कारण था नितात वैयक्तिक। इसलिए उस उदासी को तल पर न आने देने की प्राण-पण से चेष्टा करता रहा। दल मे व्यक्ति गौण हो रहता है।

यही सोचता-सोचता सो गया। दो दिन से पलग पर सोना होता है। शरीर सुख मानता है। सवेरे उठा देने का भार पूर्ववत घोरपडेजी पर ही रहा। वीस की सख्या से उन्हे विशेष प्रेम है। अक्सर तीन बीस पर उठ बैठते हैं और फिर किसीको नही सोने देते। लेकिन वैसे हैं ईमानदार। यात्रा-भर कभी भी चार वीस पर नही जगाया।

पण्डे हर कही मिलते हैं। नाम लिखने के लिए उनका आग्रह रहता है। पर हम अबतक टालते ही आये थे। यहा भाभीजी के आग्रह पर वह प्रतिज्ञा तोडनी पडी। पीतावर पाडे विजयी हुए। दक्षिणा पाकर उन्होने अपनी वही मे हमारा नाम भी अकित कर लिया। शायद कभी कोई वशधर आये तो जान ले कि उसके पुरखा भी यात्री रहे हैं। कल शाम खूब वर्षा हुई थी। उस रात को भी पानी पडता रहा। आशका हो चली थी कि शायद कल जाना न हो सके। लेकिन सवेरे जब घोरपडे की की आवाज कानो से टकराई तो उठकर देखा, आकाश निर्मल है और चारो ओर तारो का ऐश्वर्य बिखरा हुआ है।

: ११ :

पूर्णिमा पूजन

३१ मई को ठीक पाच बजे हमारा दल गगोत्री की ओर अग्रसर हुआ। साढे नौ मील पर मनेरी चट्टी हमारा लक्ष्य था। जीप का मार्ग है। कुछ ही दिनो मे इस मार्ग पर भी बस चलने लगेगी।[1] पक्की सडक के लाभ को पहाडी मजदूर भी जानता है। उसने कहा था—इनके बन जाने से आने जाने मे दिक्कत नही होगी। बीमार आदमी जो अस्पताल पहुचने से पहले ही मर जाता था, अब वहा पहु च तो सकेगा। ढाई मील आगे उसी ओर भागीरथी का सगम है। उसके बाद दृश्य अत्यत रमणीक हो उठते हैं। भागीरथी का रूप सचमुच ही लुभावना है। नीलवर्णी, क्षीणकाय, परतु गभीर यमुना के विपरीत एक स्वस्थ सुदर और मासल पर्वत-कन्या के समान कालिदास की यह तरगा, प्लवगा, कुरगा, गगा, ऐसी उछलती-उमगती चलती है कि दृष्टि थकती ही नही। कैसा है यह कलकल निनाद मानो अतर की उमग स्वर्गीय सगीत के रूप मे विश्व मे तरगित हो उठी है।

नमस्तेस्तु गगे त्वदग प्रसगाद् भुजगास्तुरगा· कुरगा. प्लवगा·।

मार्ग मे कई बार रुककर हम लोग चाय पीते थे और अपने नियम के अनुसार यशपालजी सहज भाव से चायवाले का नाम पूछ लेते। लेकिन मनेरी के मार्ग पर उन्हे न जाने क्या सूझा कि एक दुकानदार से उसकी पत्नी का नाम पूछ बैठे। बेचारा भोला-भाला युवक लजाकर अदर चला गया। सोचा होगा भला यह भी कोई पूछने की बात है। लेकिन यशपाल है हठी। दो-तीन और भी व्यक्ति वहा बैठे थे। उनसे बोले, "अरे, इसमे लजाने की क्या बात है? अच्छा तुम बताओ।"

उसने हँसकर कहा, "मेरी स्त्री का नाम तुलसा है।"

दूसरा बोला, "जयमा।"

---

१. अब भटवारी तक बस चलने लगी है।

तीसरे से पूछा तो बोला, "बीबी का नाओ !"

और वह अदर चला गया। फिर लौटा ही नही। चौथे व्यक्ति ने हमे गौर से देखा, मुस्कराया, "न जाने किस शहर के पछी है !"

आठवें मील पर पहुचकर पाया कि वर्षा के कारण पहाड का एक भाग टूट गया है और आगे का मार्ग अवरुद्ध है। पार्वत्य प्रदेशो मे इस प्रकार की घटनाए बहुत सहज हैं। उनपर से फिसल पडना भी उतना ही सहज है। हम लोगो ने बडी सावधानी से उस भयकर रास्ते को पार किया और मनेरी पहुच गये। एक ऊची चट्टान पर डाक-बगला बना है। ठीक नीचे छोटी-सी चट्टी है। सौभाग्य से उस दिन डाक-बगला खाली था। वही ठहर गये। देखता हू, चारो ओर चीड के मनोरम वृक्षो से सज्जित पर्वतमालाए शोभायमान हैं। सामने है मेघाछिन्न शाश्वत हिम-शिखर, नीचे से निरतर कलकल-नादिनी का सगीत उभर रहा है। बाई ओर के पर्वत पर क्रम से बसे हुए तीन गाव एक दूसरे के ऊपर मानो पाताल, मृत्यु और स्वर्ग के प्रतीक हो।

किनारे पर पडी एक शिला पर जा बैठा। चारो ओर शान्ति का साम्राज्य था। दूरबीन से मनुष्य की खोज करने लगा। सहसा पुकार उठा, "अहा! वह देखो, ऊपर के गाव मे एक नारी धान कूट रही है। कैसा सुदर है यह दृश्य। तीव्रगामिनी भागीरथी के किनारो को छूते हुए पहाड ऊपर-ही-ऊपर उठे चले जा रहे हैं। उनपर बने हैं छोटे-छोटे खेत। वह देखो, वहा हल भी चल रहा है। फिर गाव हैं, उनके ऊपर चीड की वृक्षावली है। और फिर है हिमशिखर। सबके ऊपर हैं सजीले मेघ, अलस भाव से लेटे हुए, मानो अपने हाथो से सवारी प्रकृति की रूपमाधुरी को पी रहे हो।"

चौकीदार न जाने कबका पीछे आ खडा हुआ था। मेरी उमगती वाणी सुनकर बोला, "आपको अच्छा लग रहा है ? लेकिन क्या आप जानते हैं कि जब बर्फ पडती है तो हम लोग कई-कई महीनो तक घरों मे कैद रहते हैं। दुनिया से हमारा कोई नाता नही रहता।"

मैंने कोई उत्तर नही दिया। यह व्यवधान मन को अच्छा नहीं लगा। पर वह तो राशन के लिए पूछने आया है। फिर तो स्नान, भोजन, विश्राम

इसीमे बहुत-सा समय बीत गया। वही से एक नाला बह रहा है। उसीमे जी-भरकर स्नान किया। उसके पास ही एक छोटा-सा बगीचा है, जिसमे केले के पेड हैं, पोदीना भी है। उसका भी उपयोग किया। सब नया-नया जो लगता है। जो नया है, वही आकर्षक है।

विश्राम के अनन्तर कुछ साथी नीचे घूमने चले गये। परतु मैं उसी शिलाखण्ड पर आ बैठा। न जाने कहा से आकर एक प्यारा-सा काला कुत्ता भी मेरे पास आ बैठा है। जैसे युग-युग का साथी हो। उसे देखकर धर्मराज की याद हो आई। ऐसे ही मार्ग पर तो एक काला कुत्ता उनके साथ हो लिया था। लेकिन अभी स्वर्ग दूर है। हा, दृश्य अवश्य स्वर्गीय है, भव्य, दिव्य और रम्य, सभी रूप हैं। सभी कुछ पवित्रता से भरनेवाला है। आकाश मेघाच्छन्न, प्रकृति निस्तब्ध, उस पार वह एकाकी कुटिया। सोचता हू, वह योगिनी या वियोगिनी। योग मे भी वियोग है, पर समष्टि के योग के लिए वह व्यष्टि का वियोग है। उच्चतर प्रिय मिलन के लिए निम्नतर का त्याग है। आसक्ति से मुक्ति है।

सहसा मेरी निगाह धारा के छोटे-बडे शिलाखण्डो पर जा अटकी। क्या ये गगा के मार्ग की बाधा हैं या बहन को जाते देखकर उससे गले मिलकर रो रहे हैं ? क्योंकि जहा मिलन है वही शुभ्र, श्वेत उफान है, शोर है। उस ओर की पर्वतमाला पर निचले भागो मे वृक्ष कम, खेत अधिक हैं। सघनता केवल शिखरो पर है। नीचे की चट्टी भी देख सकता हू। दुकानदार बिक्री कर रहे हैं। किनारे-किनारे बोझी खाना बनाने मे व्यस्त हैं। उस पार झरना गिर रहा है। बडा अच्छा लगता है। कुत्ता बीच-बीच मे प्यार से कुछ बोलता है, मचलता है। साढे छः बज चुके हैं, पर खूब प्रकाश छिटका है। मैं डायरी लिखने लगा। भाभीजी न जाने कब पास आ खडी हुई थी। बोल उठी, "सुशीलाजी को बडी लम्बी-चौडी चिट्ठी लिखी जा रही है !"

उनकी ओर डायरी करके मैं मुस्करा आया। धीरे-धीरे सध्या उस वनश्री पर छाने लगी। चतुर्दशी का चाद हँसता हुआ एक शिखर पर आ बैठा। दूरबीन उसकी ओर की तो उसकी विशालता आखो मे समाती न थी। चर्खा कातती हुई बुढिया न जाने कहा चली गई। वैस रह गये थे

अनत प्रकाश के बीच मे धुधले अधकार के बडे-बडे विशाल धब्बे, जैसे सत्य और असत्य, तम और ज्योति, मृर्त्य और अमर्त्य का समन्वय बताते हो ।

कुछ साथी नीचे भागीरथी के तट पर पहु च गये । आगे के मार्ग पर उस पार जाने के लिए एक लवा पुल है । लोहे के दो मोटे तारो पर लटकते हुए झूले जैसा । देखते ही प्राण काप उठते हैं। लेकिन मनुष्य तो सदा प्राणो के कपन को एक चुनौती मानता है । साथी लोग भी धीरे-धीरे बैठते-बैठते उस पार निकल ही तो गये । जिस समय बीच मे पहु चे तो क्षण-भर के लिए जैसे सकपका गये हो । झूला हिल रहा था और नीचे भागीरथी उद्दाम वेग से वह रही थी। लेकिन तभी पर्वत प्रदेश की कई महिलाए सिर पर बडा-सा बोझ रखे सहज-भाव से पुल पर से चली आईं। साथियो को देखकर समझी, कोई बडे अफसर हैं । एक बोली, "देखते है, कितना खतरनाक पुल है ? कभी-कभी बीच मे से लकडिया निकल जाती हैं । तव ऐसा लगता है कि गये नीचे । हमे रोज इसी पर से आना-जाना पडता है। यदि कोई इमे पक्का वनवा दे तो वडा पुण्य हो ।"

ऊपर आते समय एक यात्री मिल गया । हमारे साथी ने उससे कहा, "हजारो वर्षों से लोग यात्रा करने इधर आते रहे हैं । क्या ये रास्ते अधिक सुविधाजनक नही होने चाहिए ?"

यात्री बोला, "रास्ते की वात कहते हैं ? सवत् २०११ मे मैं पहली बार इधर आया था । उस समय कैसा रास्ता था, वावा रे वावा ! उसकी याद करके आज भी रोगटे खडे हो जाते हैं । पगडडी इतनी सकरी, इतनी भयकर कि पग-पग पर मौत हाथ पकडती थी । अव तो राजमार्ग हो गया है, दौडे चले जाओ ।

आज पहली वार कॉफी बनाई । सन्ध्या को प्राय भोजन नही होता। आलू और दूध लेते हैं । घर से लाया नाश्ता अभी चल रहा है। रात्रि को प्रार्थना से पूर्व सब लोग एक स्थान पर बैठ जाते हैं । प्राय महिलाए ही नाश्ता परोसती हैं । पर मार्तण्डजी भी सेवा के ऐसे अवसरो पर सदा आगे रहते हैं । उस दिन मेरे पैर मे कुछ अधिक दर्द हो आया था । न जाने

कैसे माताजी इस बात को जान गईं। चुपचाप अपनी बोतल मे गर्म पानी ले आईं। तब सहसा अपनी स्वर्गीय मा की याद करके आखे गीली हो उठी। इन दुर्गम प्रदेशो मे स्नेह का जरा-सा परस भी विचलित कर देता है।

सवेरे पौने पाच बजे ही हम लोट भटवारी की ओर चल पडे। सात मील तक जीप का राजमार्ग है।[1] उसके बाद पहाड गिर जाने के कारण रास्ता टूट गया है। इसलिए दो फर्लांग की भयकर चढाई चढकर शिखर पर पहुचे। और फिर उस ओर उतरना पडा। मानव के साहस को चुनौती देनेवाले ऐसे स्थल न जाने कितनी बार आते हैं। तीन मील पर मल्ला चट्टी थी। वहा से हमने देखा कि नदी के उस पार बहुत-से यात्री गगोत्री से लौटकर केदारनाथ की ओर जा रहे हैं। भटवारी के पास ही से एक रास्ता बूढा केदार की ओर जाता है। वहा से यात्री लोग त्रिजुगी-नारायण होकर केदारनाथ जाते हैं। मार्ग विकट है, परतु सीधा है। इसीलिए अधिकाश यात्री उसीका उपयोग करते हैं। भयकर चढाई भी उनके साहस को नही तोडती। यहीपर पिलगुना नाम की एक छोटी-सी नदी भागीरथी मे आ मिलती है। पर्वत प्रदेश की नदिया बडी छलिया होती हैं। वर्ष के अधिकाश भाग मे वे अबोध शिशु के समान खेलती रहती हैं। पर सहसा एक क्षण आता है जब उनका उद्दाम यौवन उग्र हो उठता है। तब उनका वेग आस-पास के सब कुछको लील जाता है।

बहुत नीचे गगा-तट के साथ-साथ केदारनाथ की ओर पुराना मार्ग जा रहा है। वह रास्ता अब बद कर दिया गया है। परतु फिर भी कुछ आख बचाकर उसी मार्ग से ले जाते है। ऊपर का नया मार्ग तब बन रहा था। उसपर से बडे-बडे पत्थर नीचे पुराने मार्ग पर गिर रहे थे। देखकर मन-प्राण काप-काप उठे। कही ये पत्थर यात्रियो पर गिर पडे तो? पडाव पर पहुचकर पता लगा कि कई यात्री उन पत्थरो की वर्षा से घायल हो गये हैं। लेकिन सौभाग्य से प्राण किसीके नही गये।

धूप तेज होती आ रही थी और भयकर चढाई-उतराई के कारण

1. अब बस जाने लगी है।

पैरो की शक्ति क्षीण हो चली थी। साढे आठ बजे जब भटवारी पहुचे तो मन लेट जाने को करता था। परतु यात्रा का अर्थ तो निरतर गतिमान होना है। सबसे पहले डाक-बगले पहुचे। कोई असुविधा नही हुई। मनेरी जैसा सौदर्य तो यहा नही है, पर घाटी मे बसी यह चट्टी नितात आकर्षणहीन भी नही है। अच्छी-खासी बस्ती है। ऊचाई ४,८०० फुट है। यहा का डाक-बगला अपने विस्तृत लॉन के लिए सदा स्मरण रहेगा। शौचालय एक तीव्रगामी नाले के ऊपर बना हुआ है, इसलिए गदगी का कोई प्रश्न ही नही उठता।

पुराणो मे इस स्थान का नाम भास्कर या भास्करपुरी आता है। किंवदती है कि सूर्य ने शिव की उपासना की थी। उसीकी स्मृति मे भास्करेश्वर महादेव का एक छोटा-सा मदिर यहा बना था। शैली दाक्षिणात्य है। इसकी स्थापना आद्य शकराचार्य द्वारा हुई थी, परतु अब यह जीर्णावस्था मे है। मूर्तिया भी सुदर नही हैं। शिव-लिंग के अतिरिक्त सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ की मूर्तिया हैं। शिव-पार्वती की मूर्तिया भिक्षुक के भेष मे हैं। इस प्रदेश मे मिथुन मूर्ति पहली बार देखी। पर्वत-शिखर पर शेष का मदिर है। उनके चरणो से नवला नदी निकलकर यही गगा मे लय हो जाती है। आज पूर्णिमा है, इस कारण यहा जीवन उमड आया है। पास के गावो मे नये-नये वस्त्र धारण करके गीत गाती हुई नारिया पूजा के लिए आ रही हैं। इस प्रदेश मे जगली गुलाब, जिसे इधर की भाषा मे कुजू कहते हैं, बहुत दिखाई देता है। तितलियो से घिरे ये गुलाब यहा के परिपेक्ष मे बहुत सुदर लगते हैं। गुलाब और नारी दोनो मे काफी समानता है, यह तब स्पष्ट देख सका।

वन-विश्राम-गृह के अतिरिक्त यात्रियों ठहरने के लिए यहा बाबा कालीकमलीवाले की धर्मशाला भी है। राजकीय अस्पताल, डाकघर, जूनियर हाई स्कूल और कताई-केन्द्र भी हैं। वन-विभाग के दफ्तर और आवास-गृह तो है ही। सुना था, यहा दक्षिण के एक अच्छे साधु रहते है। ११ वर्ष तक उन्होने मौन धारण किया है। इसलिए मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसलिए हम उनसे मिलने गये। देखा, एक लबे बरामदे जैसे कमरे मे वे एक ऊचे स्थान पर बैठे हैं। दुबले-पतले, इकहरा

बदन, भगवे वस्त्रो पर गर्म जाकट पहने हुए हैं । ग्रास-पास १५-२० नारिया बैठी भजन गा रही है—"सब मिल साधु सगत करते रहना ।" उनके वस्त्र रग-विरगे हैं । जेवरो से लदी है, जो सभी चादी के हैं । सहज देहातीपन और रगीनी की वे प्रतीक हैं । उस समूह मे दो युवतिया साडिया पहने इस बात का प्रमाण दे रही है कि नये युग का प्रभाव यहा भी आ गया है ।

हम लोग साधुग्रो का सम्मान करते हैं, लेकिन वे साधु क्यो बने, यह जानने की इच्छा सदा जाग आती है । परिचय के बाद धीरे-धीरे हम लोग चर्चा मे व्यस्त हो गये । बोलने मे उन्हे कुछ कठिनाई होती है, शायद अनेक वर्षों तक मौन रहने के कारण । कई क्षण उपदेश देते रहे । उसका सार यही है कि मन की अनुकूल वृत्ति राग और प्रतिकूल द्वेष है । ब्रह्म-ज्ञान बिना मुक्ति नही मिल सकती । स्वप्न तभी टूटेगा जब बोध होगा । नदी समुद्र मे मिलती है और खो जाती है । यही मुक्ति है । तप करने पर भी मुक्ति मिल सकती है ।

व्यक्तिगत चर्चा करने पर उन्होने हमे अपनी कहानी सुनाई । बीस वर्ष तक वह ब्रह्मचारी रहे, फिर विवाह किया । उस विवाह से उन्हे तीन कन्याए और एक पुत्र प्राप्त हुआ । १४ वर्ष गृहस्थ मे रहे, तीन वर्ष पत्नी के साथ वानप्रस्थी रहे, लेकिन फिर उसे सर्प समझने लगे । न जाने किस क्षण काट ले, इसलिए सब-कुछ त्याग कर दीक्षा लेने के लिए गुरु के पास पहुचे । गुरु बोले, "घर को त्यागकर दीक्षा लेने आये हो, लेकिन अभी तुम्हारी मा जीवित हैं । उनका पिण्ड करके आना ।"

मा को गये २१ वर्ष हो गये । अब किसीका कुछ पता नही । यशपालजी ने पूछा, "आपने जिस उद्देश्य से घर-बार छोडा, क्या उसकी सिद्धि हो गई ?"

उन्होने उत्तर दिया, "नही । मैं जिस रस्सी को काटने आया हू, वह अभी मेरे हाथ मे है । मैं अभी तप कर रहा हू ।"

माधव बोल उठा, "आपने अपने सुख के लिए परिवार छोडा, क्या यह स्वार्थ नही है ?"

वह बोले, "कौन मैं, कौन तू । मेरा-तेरा क्या ? किसने किसे छोडा ।

ब्रह्मज्ञान विना मुक्ति नही है और ब्रह्मज्ञान तर्कातीत है।"

दल मे से किसीने तुरत कहा, "आपने परिवार को छोडा, लेकिन यदि वह परिवार समाज का स्वस्थ अग न बना तो क्या उसके लिए आप दोषी नही होगे ?"

यह विवाद का आरभ था। वोले, "मैंने कहा न, ब्रह्म-ज्ञान तर्कातीत है, शेप अहकार है। हम ज्ञान देने नही तप करने आये हैं। चूहे की तरह बिल मे है। माया-ममता की रस्सी अभी तक काटी नही है। मैं वाद-विवाद नही करता। उसका कोई अत नही। हिमालय में आये हो, तर्क मत करो। यह तपोभूमि है।"

शोभालालजी बोले, "उसका मार्ग क्या है, यह तो बताइये ?"

उन्होने उत्तर दिया, "ज्ञान क्या एकाएक दिया जाता है ? विना कर्म मुक्ति नही होती।"

हम लोग कई थे और वह अकेले। अहिंदी-भाषी होने के कारण शुद्ध हिंदी वोल भी नही सकते थे। वहुत शीघ्र थक गये। कुछ व्यथित भी हुए। बाद मे जब मार्तण्डजी उनसे मिलने गये तो उन्होने कहा, "दिल्ली का दल तो मेरे गले हीं पड गया।"

गलती हमारी थी। यात्रा मे विवाद न करके साधू-सतो की वात सुन लेना ही काफी है। हमारा उनसे कोई परिचय नही था, न हमारा उद्देश्य किसीका विश्वास करना या किसीको विश्वास दिलाना ही था। हम तो केवल जिज्ञासु बनकर अध्ययन करना चाहते थे। वहा के लोगो ने बताया, "यह साधु लोक-सग्रही हैं, सचय नही करते। देने मे विश्वास करते हैं। जो मागकर लाते हैं, सदाव्रत लगाकर उसे गरीवो मे वाट देते हैं। जो यात्री किसी कारण कष्ट मे पड जाते है, उनके यह सवल हैं।"

सुनकर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। लेकिन यह वात मैं अभी भी न समझ सका कि अपने चारो ओर एक परिवार खडा करके उसे मझ-धार मे छोड देना और दीन-दुखी यात्रियो की सहायता करना, इन दोनो मे क्या सगति है ? परिवार यदि वाधा है तो उसे स्वीकार ही क्यो किया जाय ? और मुक्ति क्या साधु वनकर ही मिल सकती है ? तप क्या वन मे ही सभव है ? उलझन-ही-उलझन है। हम प्रार्थनामय होकर ही

कर्म क्यो न करें ?

आज पूर्णिमा थी। रात को खीर वनी। खीर-परावठे का नाश्ता करते-करते गाव का बचपन याद आ गया। मदिर मे गये तो एक बहन सस्कृत के श्लोको का बडे ही मधुर स्वर मे पाठ कर रही थी। उस माधुर्य ने क्लार्ति को जैसे सहला दिया हो। यह मधुर स्वर, यह मधुर खीर, जून का महीना होने पर भी सब कष्ट भूल गये।

दूसरे दिन (२ जून को) जब हम आगे बढे तो पाच नही बजे थे। कुछ दूर समतल मार्ग पर चलते रहे। फिर वही उतार-चढाव आरभ हो गया। चीड के सघन वन हमारे प्राणो मे शक्ति भर रहे थे। चार मील पर आगरा चट्टी के पूर्व हमने दीना और कूला नदियो के पुल पार किये। उसके बाद स्वय भागीरथी पर मुक्की का पुल पार करना पडा। वह इतना नाज़ुक है कि एक बार मे दो व्यक्ति या चार बकरी या दो खच्चर ही उसपर से जा सकते हैं, परतु दुर्बल होने पर भी वह मनेरी के पुल की भाति भयानक नही था। चालू रास्ते की उन दिनो मरम्मत हो रही थी। इसलिए उसे बद करके उस पार से एक अस्थायी रास्ता बना दिया गया था। उस रास्ते पर से जब हम पुराने रास्तो को देखते थे तो नुकीली चट्टानो के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नही देता था। सोचते थे कि इन पहाडो पर रास्ता कहा से जाता होगा। इस मार्ग पर एक मरणासन्न बूढे को काम करते देखा। तभी मन मे विचार उठा, जिस राज्य मे व्यक्ति इतना निरीह हो, उसे क्या सुराज्य कहा जा सकता है ? शायद वह दाक्षिणात्य साधु की तरह कह देगा, 'अभी धर्मराज्य कहा है ? उसकी खोज मे लगे है। जबतक खोज पूरी नही हो जाती, ये विसगतिया रहेगी ही।"

मन फिर उलझ चला। लेकिन मार्ग के दृश्य बार-बार उसको लुभाते है। सघन वन, पग-पग पर चट्टानो को सगीत सुनाते रजतवर्णी प्रपात, हरे-भरे पेडो के प्रतिमा जैसे कुंज, सुगधित वायु, सगीतज्ञ पक्षी, नाना रूप धरती गगा, कभी उतावली बावली ऊपर से गिरकर प्रपात बनाती, कभी शात गम्भीर, विस्तृत रेतीला तट छोडती और कही तटवर्ती पत्थरो को काट-छाटकर नाना रूप-कुण्डो और प्रतिमाओ का निर्माण करती। मार्ग विषम होने पर भी मनमोहक था। थकावट होती, पर दूसरे ही क्षण

तिरोहित भी हो जाती । चट्टानो के अवरोध से टक्कर लेती गगा का स्वर अपनी ओर खीचता और वहा फेनिल जाल देखकर मन उसमे उलझ जाता । वन-प्रातर मुझे अच्छा लगता है । एमरसन के शब्दो मे कह सकता हू, "वन मेरे प्रिय अभिन्न मित्र हैं ।"

ज्यो-ज्यो हम गगनानी के समीप पहु च रहे थे, वन की सघनता वढ रही थी । किसी तनवगी की तरह बेंत के हरे-भरे वृक्ष वेणु-कु ज के रूप मे बडे प्यारे लगे । सहसा उन्हीके बीच वन-विश्रामगृह का सूचना-पट देखकर मन पुलकित हो उठा । यात्रा का अत इन थकानेवाले दुर्गम मार्गों पर सदा सुखद लगता है । लेकिन यहीं से दुरूह चढाई का आरम्भ है, यह नही जानता था । चढते गये, चढते गये, पर द्रौपदी के चीर की भाति पथ का अत ही नही आ रहा था । जैसे ही एक चढाई पूरी करते तो एक नया मोड सामने आ जाता । फिर से नई चढाई आरम्भ हो जाती । त्रस्त हो उठे । तभी विधाता को जैसे हमपर दया आ गई । एक मोड के तुरत वाद हम विश्रामगृह के पास जा पहु चे, जैसे हमारी परीक्षा लेने के लिए ही वह छिपा बैठा हो ।

६ बज रहे थे । समुद्र तल से ६४०० फुट ऊपर आकर प्राण मानो लौट आये । गर्व से देखा, भागीरथी के उस पार गगनानी चट्टी हमारे चरणो मे प्रणाम कर रही है । वीच के मार्ग पर गर्म जल के प्रसिद्ध प्रपात हैं । चारो ओर ऊची-ऊची चोटियो पर हैं, गर्वीले मानव द्वारा बसाई गई वस्तिया । सबकुछ भूलकर देर तक दूरबीन से उन्हीको देखता रहा । साथी पौने दो घण्टे के बाद वहा पहु चे । स्कूल के बच्चे छुट्टी पाकर उसी मार्ग से ऊपर जा रहे थे । ये छोटे-छोटे वच्चे प्रतिदिन कितना उतरते-चढते हैं, थकते नही, स्वभाव हो जाता है । तिब्बत की नारियो को दिल्ली के राजमार्गों पर लडखडाते देखा है । पर्वत प्रदेश की एक नारी ने एक यात्री से पूछा था, "तुम्हारे मुल्क मे क्या ऐसी सडकें नही हैं ?"

यात्री ने उत्तर दिया, "नही । वे तो विल्कुल समतल हैं । वहते चले जाओ ।"

सुनकर अचरज से वह नारी काप उठी, "हाय राम, तव तो तुम लोग थक जाते होगे ।'

यही बात इन बच्चो के सबध मे कही जा सकती है। जब मैंने उनसे चौकीदार के सबध मे पूछा तो वे बोले, "ऊपर हमारे गाव मे रहता है। अभी भेजते हैं।"

और यह कहकर वे मृगशावक भागते चले गए। मैं देखता ही रह गया।

: १२ :

"जाओ महाराज, जाओ!"

गगनानी अपने गर्म कुण्डो के लिए प्रसिद्ध है। ऋषि कुण्ड, व्यास कुण्ड और नारद कुण्ड उसमे प्रमुख हैं। उनके साथ नाना प्रकार की घटनाओ का सबध स्थापित करके पडा लोग खूब पैसा कमाते हैं। एक प्रपात की ओर सकेत करके एक साधु ने हमसे कहा, "यह यमुना की धारा है, जो गधमादन पर्वत से निकलती है।"

इन गर्म कुण्डो के पास शीतल जल का भी एक झरना है। इसे नर्मदा की धारा कहते हैं। किसी समय गगोत्री तक जाने का मार्ग नही था, तब यात्री लोग गगनानी को ही गगोत्री मानते थे।

कुण्डो का पानी इतना गर्म है कि सहसा उनमे हाथ नही दिया जा सकता। जिस कुण्ड मे कपडे धोये जाते हैं, उसका स्पर्श तो किया ही नही जा सकता। ऋषि कुण्ड का पानी भी काफी गर्म है। उन बीहड दुर्गम मार्गों पर चलकर थका-मादा यात्री जब यहा पहुचता है और धीरे-धीरे ऋषि कुण्ड मे उतरता है तो उसका शरीर जैसे नवजीवन पा जाता है। नई स्फूर्ति से भरकर वह आगे के दुर्गम पथ पर बढ जाता है। जिस समय मैं कुण्ड मे उतरने की चेष्टा कर रहा था तो सहसा काप उठा। मानो किसीने मेरी कमर मे इजेक्शन लगा दिया हो। तडपकर देखा बडी-बडी नीली मक्खिया आक्रमण कर रही है। ये मक्खियां सूई की तरह

डक मारती हैं। लेकिन एक बार झनझना देने के अलावा उस डक का और कोई असर नही होता। जैसे शरारती बच्चे चिकौटी काट लेते हैं।

गगनानी के साथ एक प्राचीन कथा जुडी हुई है। गगा-तट पर रहने वाले एक मल्लाह की पुत्री मत्स्यगधा नाव से यात्रियो को पार किया करती थी। एक बार पराशर मुनि पार जा रहे थे। उम कन्या के शरीर मे उठनेवाली गध से वह मुग्ध हो उठे। नाव मे ही उन्होने मत्स्यगधा से विवाह किया। उस विवाह के परिणामस्वरूप वह वेदव्यास की माता हुईं। मत्स्यगधा पूर्वजन्म मे पाराशर ऋषि की पुत्री थी। जब उनको इस तथ्य का पता लगा तो वह बहुत दुखी हुए। उस जन्म मे किसी पाप के कारण कामधेनु ने उन्हे श्राप दिया था, "तुम अपनी पुत्री से विवाह करोगे।" उसी श्राप के फलस्वरूप उन्होने मत्स्यगधा से विवाह किया। लेकिन यह भी तो पाप ही था। उसका प्रायश्चित्त करने के लिए वह गगनानी आये और २४ पुरश्चरण किये। एक पुरश्चरण मे एक अक्षर के २४ लाख पाठ किये जाते हैं।

यह कथा कहातक सत्य है, नही मालूम, लेकिन महाभारत मे इतना अवश्य प्रगट है कि जो मत्स्यगधा वेदव्यास की माता थी, वही बाद मे राज शान्तनु की पत्नी बनी। उसीके कारण राजकुमार देवव्रत आजन्म अविवाहित रहने का व्रत लेकर भीष्म बने। मत्स्यगधा का वास्तविक नाम सत्यवती था। उन्होंने चित्रागद और विचित्रवीर्य को जन्म दिया था।

भोजन करने के बाद कुछ देर विश्राम करना चाहा। लेकिन मक्खियो के कारण सभव न हो सका। दिन भी थकने लगा था। सध्या घिरती आ रही थी। बादल भी जैसे यात्रा से लौटने लगे थे। हम लोग नीचे चट्टी पर घूमने चले गए। खुला स्थान है। यात्रियो के लिए कालीकमली वालो की धर्मशाला है। काफी देर घूमते रहे। जब सर्दी बढने लगी और तूफान के आसार भी प्रगट हो आये तो लौटकर तुरत विश्रामगृह पहुचे। क्या देखते हैं, तीन साधु हमारे स्थान पर अधिकार जमाने के लिए तत्पर हैं। खूब अग्रेजी बोल लेते हैं। कहने लगे, "हम बगले मे ठहर जाय।"

चौकीदार ने उत्तर दिया, "यह स्थान घिरा हुआ है।"

साधु कुछ तीव्र हुए। बोले, "सभी स्थान घिरे हुए हैं। हम कहा ठहरेंगे। तुम लोगो मे इस वेश के लिए श्रद्धा नही।"

यशपाल बोले, "श्रद्धा तो है, लेकिन हम क्या करें। जगह नही है। और फिर बिना अधिकारियो की अनुमति के यहा ठहरने का नियम भी नही है।"

तरुण साधु सहसा क्रुद्ध हो उठे। बोले, "नेसेसिटी नोज़ नो लॉ।" आवश्यकता कायदे-कानून नही जानती।

यही तीव्र विवाद का आरभ था, लेकिन उनको वहा से जाना ही पडा। स्थान भी तो नही था। साधु तीव्र प्रकृति के थे। उनके वस्त्र मात्र गेरुए थे। जैसे धर्मभीरु यात्रियो की श्रद्धा पर डाका डालने के लिए पहन लिये हो।

शीत का प्रकोप निरतर बढ रहा था। हमे उन साधुओ के लिए दुख था। लेकिन इतनी श्रद्धा भी हममे नही थी कि उनको बगलें मे स्थान देकर स्वय नीचे चट्टी पर जाकर रहते। प्रार्थना के बाद आज हम लोग ९। बजे ही लेट गये। वातावरण निस्तब्ध था। मात्र भागीरथी का कल-कल स्वर सुनाई दे रहा था। उस मनोरम सगीत को सुनते-सुनते न जाने कब नीद आ गई।

अगले दिन चलने से पूर्व ऋषि कुण्ड मे स्नान करने का लोभसवरण न कर सके। भयकर शीत और घोर अधकार लेकिन गर्म जल के कारण मन का सब अवसाद दूर हो गया। देवदार के वन भी पास आ गये थे। लोहारीनाग तक के चार मील बिना विशेष कठिनाई के पार कर गए। परतु इससे आगे की चढाई ने प्राणो को थका दिया। सहसा सोचा, प्रकृति के उठानो के साथ मन भी क्यो नही उठ सकता। उठता है, पर इतना त्रस्त हो जाता है कि बहुधा वह उठान अर्थहीन हो रहती है। वस्तुत उठने की प्रक्रिया वातावरण पर इतना निर्भर नही करती जितनी वातावरण को जीनेवाले मनुष्य के अतर मन पर।

बीच-बीच मे मार्ग बन रहा था, इसलिए अत्यत विषम नये पथ का सामना करना पडा। छोटे-बडे अनगढ-अव्यवस्थित पत्थर परेशान करने

लगे। कही-कही तो ऊपर के मार्ग पर जानेवाले यात्रियो पर बरस पडते थे। एक महिला को देखा, जिसके सिर पर ऐसा ही एक पत्थर श्रा गिरा था। खून से लथपथ कराहती वह आगे बढ रही थी। थोडा श्रौर श्रागे बढे तो एक दल को उधर से लौटते हुए देखा। सदा की तरह 'गगा माई की जय' का नारा लगाया। लेकिन दल मे एक महिला थी, उदास, भीगी श्राखो से करुणाभरे स्वर मे वह बोली, "मुझसे जय नही बोली जाती।"

उसके स्वर मे इतना दर्द था कि मन भीग श्राया। बबई राज्य के एक दल के साथ वे पति-पत्नी दोनो यात्रा करने श्राये थे। मार्ग मे श्रचानक पति गिर पडे श्रौर तुरत ही उनका प्राणात हो गया। हृदय पर पत्थर रख-कर उसने स्वामी का दाह-सस्कार किया, लेकिन यात्रा समाप्त नही की। धर्मप्राण हिंदू के विश्वास के श्रनुसार पति पुण्यात्मा थे, स्वर्ग गये। परतु पत्नी क्या करे। उसका मन कहा जाय। फिर भी उसका साहस श्रद्भुत था। जी-जान से सपूर्ण विषाद को श्रतर मे समेटे थी। यात्रा-पथ के सहयोगियो मे नारियो का साहस सचमुच श्रद्भुत है। एक श्रौर महिला की याद श्राती है। क्षीणकाय, घायल पैर, पर मृगी की भाति दौडती है। थकती ही नही। पडाव पर सबमे पहले पहुचकर सबसे श्रच्छा कमरा घेर लेती है श्रौर फिर भोजन बनाने मे व्यस्त हो जाती है। जैसे यही उसका लक्ष्य हो।

लोहारीनाग चट्टी पर एक चायवाले से बडा मनोरजक वार्त्तालाप हुश्रा। बडा बातूनी था। उसके वस्त्र बहुत मैले थे। मैंने पूछा, "तुम लोग नहाते हो कि नही?"

बडी श्रल्हडता से हीरालाल ने उत्तर दिया, "हम लोग पानी से नही, हवा से नहाते हैं।"

जैसे इस प्रश्न को उसने अपना श्रपमान समझा हो। शहरी लोगो की श्रशक्तता पर व्यग्य श्रौर श्रपनी शक्ति पर गर्व करते हुए उसने उच्च स्वर मे घोषणा की, "तुम लोग शहरी हो। जरा-सा चलने के लिए तुम लोगो को कार चाहिए। हम लोग पहाडी हैं। श्रालू खाते हैं, जौ खाते हैं श्रौर यहा से सीधे बर्फ के पहाडो से जमनोत्री पहुच सकते हैं। सीधे रास्ते

कुल १३ मील है। आप लोग दो-तीन जनम मे उस रास्ते को पार नही कर सकते। डेढ दिन मे केदारनाथ पहुच सकते हैं। दो दिन मे गगोत्री। उस रास्ते को देखते ही तुम लोगो की छाती दहल जायगी। यहापर तीरथ करने आये हो तो भी 'राम-राम' कहकर चढ पाते हो। कुछ लोग तो 'कण्डी-कण्डी' पुकारते हैं। जरा ठड लगी तो नाक बहने लगती है। हम लोगो को क्या भुगतना पडता है, यह तुम क्या जानो। जाडे के दिनो मे चार महीने मगसिर से फागुन तक बर्फ मे बद रहते हैं। वही खाना, वही पीना, वही बीमार पडना। कोई मर गया तो बस वही फेंक देना। हरि इच्छा। लेकिन तुम डरते क्यो हो ? सीधा रास्ता है, चले जाओ।"

उसका यह भाषण सुनकर स्तब्ध रह गये। हमारे जैसे ही वे मनुष्य है। लेकिन उनके सोचने का दृष्टिकोण कितना अलग है। प्रकृति चुनौती देती है, परतु मानव परास्त नही होता। अपने अदम्य साहस के बल पर उस प्रकोप को सहन करता हुआ अपना अस्तित्व बनाये रखता है। हीरालाल खेती-बाडी करता है, यात्रा के समय दुकान चलाता है। शेष समय गगोत्री का जल हरिद्वार तक पहुचाता है। एक घडे के ६० रुपये लेता है।

उसकी बातो से उत्साहित होकर हम खूब तेज चले। लेकिन प्रकृति की भीषणता भी उग्र होती चली गई। पारसाल हिमालय इतना क्रुद्ध हो उठा था कि उसने बेरीनाग चट्टी को बिल्कुल ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और गगा के मार्ग को इस प्रकार अवरुद्ध कर दिया कि वह एक बहुत बडी शात नीली झील बन गई। उद्दाम यौवन की स्वामिनी जैसे एक प्रौढ तपस्विनी की भाति मानो कही बहुत दूर देखती हुई अलस-भाव से लेटी हो। जल स्फटिक के समान निर्मल, स्थिर और शात।

यहा लकडी का एक खतरनाक पुल बना है। उसपर से होकर हम फिर सुदर मार्गों पर चलने लगे। मार्ग मे भेड-बकरियो के अनेक दल मिले। प्रतिदिन मिलते रहते हैं। इन दुर्गम प्रदेशो मे ये ही तो यातायात के साधन हैं। इनपर लादकर नमक चावल आदि ले जाते है। ऊपर से आलू नीचे लाते है। शेर जैसे बडे-बडे काले कुत्ते बडी कुशलता से इनकी रखवाली करते हैं। वन-गाय भी हैं। इन्हे झब्बू सुरा गाय या चवर गाय
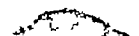
कहते हैं। पीठ पर बोझ लादकर ये बडी शान से चलती हैं और उनके गले की निरतर बजती हुई घण्टिया यात्रियो को चेतावनी देती रहती हैं। इतनी सीधी और सजग होती है कि उनके मालिको को उन्हें डाटने-फटकारने की आवश्यकता नही होती। पर्वतीय प्रदेशो मे लोगो को फासले का अदाज नही होता। मार्ग मे हमने पूछा, "अगली चट्टी कितनी दूर है?"

उत्तर मिला, "डेढ मील।"

लेकिन डेढ मील चलने के वाद हम चट्टी नही पा सके। फिर पूछा, "अब चट्टी कितनी दूर रह गई है?"

उत्तर मिला, "डेढ मील।"

थका मन झुझला आया। अबतक जो डेढ मील चले थे, वह सब व्यर्थ हो गया। लेकिन अनेक यात्राओ के वाद हम अभ्यस्त हो गये थे। क्षणिक झुझलाहट के बाद हँसकर रह गये। आज की रात हमे सुक्खी चट्टी पर बितानी थी। जैसे-जैसे वह पास आ रही थी, चढाई भी भयानक होती जा रही थी। लेकिन देवदार के वृक्षो से निर्मित सघन वन, चादी के समान झरते हुए मादक झरने थकने ही नही देते थे। देवदार के वृक्षो को देखकर उस दिन सहसा ऐसा लगा जैसे वे मनुष्यो की महत्वकाक्षा के प्रतीक हो। आकाश से बातें करते वे अनमनस्क से खडे हैं।

गिरिवर के उर से उठकर
उच्चाकाक्षाओं से तरुवर
हैं झाक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता कर (पत)

लेकिन वे चिता करते रहे। मनुष्य के मन को तो प्राणो की सजीवनी से भर देते हैं। इसलिए हम लोग ६ मील का यह दुर्गम पथ लगभग चार घण्टे मे पूरा करके सुक्खी पहुच गये। देखते क्या हैं, दो साधू एक स्थान पर हाथ जोडे खडे हैं और कह रहे हैं, "जाओ महाराज, जाओ।"

लेकिन वहा तो कोई भी नही था। बडा आश्चर्य हुआ। पता लगा, वहा एक साप था। तीर्थयात्रा मे किसीको मारने की कल्पना भी ये लोग नही कर सकते, इसलिए वे हाथ जोडकर सर्पराज से प्रार्थना कर रहे

थे। बोले, "देखिये नागदेवता ने हमारी प्रार्थना मान ली और चले गये।"

हमे उनकी बातो पर हँसी आई। लेकिन उनके सामने कैसे हँस सकते थे। आगे बढ गये।

पर्वतो से घिरी हुई सुक्खी चट्टी समुद्र से ८,७०० फुट ऊचाई पर बसी हुई है। हरीतिमा खूब है, लेकिन कई दिन से डाक-बगले मे ठहरने आ रहे थे, इसलिए भीड के भीतर इस साधारण चट्टी पर ठहरना बहुत अच्छा नही लगा। बडी कठिनता से एक छोटा-सा कमरा पा सके। लेकिन प्राकृतिक दृश्यो का सौदर्य हमे अपनी ओर खीच रहा था। बहुत देर तक अखरोट, खुबानी के पेडो को देखते घूमते रहे। सामने श्रीकण्ठ सिर ऊचा किये खडा था। उसका हिम-शिखर ऐसा लगता था मानो प्रकृति का हास्य पुजीभूत हो गया हो। दूरबीन से उसे देख रहे थे कि आस-पास कुछ बच्चे इकट्ठे हो गये। निपट-निरीह, अर्ध-नग्न और गदे। दूरबीन देखने को वे बहुत उत्सुक थे। पास बुलाकर उनसे बाते की। दूरबीन भी दिखाई, पर मन को बहुत कष्ट हुआ। इधर रोग बहुत हैं। कमर और कधो पर बेतरतीब मास का ढेर देखकर मन न जाने कैसा हो जाता है। प्रकृति इतनी सु दर और मनुष्य इतना अस्वस्थ और कदर्य ! और उद्धत भी।

सध्या को चाय पीने एक दूकान पर गये तो वह बोला, "जहा से आटा लिया है, वही से दूध-चाय लो।" लेकिन जब कुछ कठोर होकर बाते की तब सबकुछ मिल गया। रात के समय प्रकृति का रूप और भी मादक हो आया। सामने पहाडी के ऊपर से चद्रमा अपनी अमृत किरणो से उद्वेलित करने लगा। उसका यौवन जैसे बाहर फूट पड रहा हो और चारो ओर सबकुछ सुदर-ही-सुदर हो उठा हो। बहुत देर तक उसे देखता रहा। पर वह भी तो 'चरैवेति चरैवेति' का उपासक है। वह दृष्टि से ओझल हुआ तो उसके प्रकाश से हिमशिखर प्रदीप्त हो उठे। उस दीप्ति से मन उमग आया। तभी सहसा वहा कोलाहल मच उठा। पास ही मराठी-दम्पति सोये हुए थे। उन्हीके पास बलिया की ओर के कुछ यात्री आ लेटे। तब वह मराठा स्त्री अपनी भाषा मे जोर-जोर से उन्हे डाटने लगी। वह नही जानती थी कि हम लोग उसकी भाषा नही समझते। समझती थी, जोर-जोर से

बोलना काफी है। उधर वलिया की टोली के भी एक सज्जन उसी तरह उस स्त्री के जवाब मे अपनी मातृभाषा मे बोलते चले जा रहे थे। अद्भुत दृश्य था। कोई किसीकी भाषा नही समझता था। लेकिन स्वर मे चुनौती थी और रात त्रस्त हो रही थी। उनको शात करने मे काफी समय निकल गया। नीद मे एक बार व्यवधान पड जाता है तो वह रूठ ही जाती है। झपकी लगी ही थी कि सदा की भाति घोरपडे का स्वर मस्तिष्क पर घन की तरह पडा, "उठो-उठो, तीन वजकर वीस मिनट हो गये।"

एक वार मन मे आया कि कह दू, "भाड मे जाय तीन वजकर वीस मिनट, मैं नही उठता।" लेकिन—

यात्रा करो, यात्रा करो, यात्री दल
मिला है आदेश
अव नहीं समय विश्राम का।

सो उठ बैठा और सोचने लगा साधु की वात।

कल सध्या को एक घायल साधु से भेंट हुई थी। वह प्राय सज्ञाहीन थे। चोटो पर टिंचर लगाई, खाने को फादर मुलर की गोलिया दी, फिर चाय पिलाई और अत मे एक कोठरी मे उन्हे लिटा दिया। देखते क्या हैं कि सज्ञाहीन से वह बार-वार उठ बैठते हैं और इधर-उधर कुछ टटोलते हैं। पता लगा, उनके पास एक बोरी थी, जिसमे कुछ रुपये थे। धन की माया कुछ ऐसी ही होती है। अर्ध-चेतन अवस्था मे भी वह उस मोह से मुक्ति नही पा सके। लेकिन वह बोरी भी उन्हे नही मिली। अगले दिन जाने से पूर्व हम उसे नही देख सके। उस समय उठाना उचित नही था। लेकिन जब यात्रा से लौट रहे थे तो मालूम हुआ कि वह दूसरे दिन ही मर गये थे।

चलते-चलते पाच वज गये। एक मील की कडी चढाई के वाद उतराई आ गई। वहुत अधिक नही थी। उसके पश्चात् समतल मार्ग था, सुखद और सुहावना। वहुत दूर तक भागीरथी यहा शात, गभीर, सर्पाकार गति से वहती है। मार्ग मे पग-पग पर झरने आते हैं। उनपर पडी लकडियो पर से उन्हे पार करना पडता है। अद्भुत वात है कि जहा भागीरथी ने उछलना छोडा, वहा यात्री उछलने-कूदने लगे। हम लोग भी

उछलते-कूदते झाला चट्टी पहुच गये। तीन मील के इस मार्ग का पता ही नही लगा। यहा चाय ली। दृश्य और भी सु दर होने लगे। पर्वत शिखरो पर हिम चमक रहा था। चारो ओर देवदार के वृक्ष महत्त्वाकाक्षी तपस्वियो की भाति खडे है। बडी प्रिय लगती है उनकी आकृति। नीचे विस्तृत मैदान है जिसमे गगा अनेक धाराओ मे होकर वह रही है, मानो प्रकृति नटी की वेणिया लहरा रही हो। वह विस्तार जैसे मन को स्फूर्ति से भर देता है। अवतक की यात्रा के ये सर्वोत्तम दृश्य है।

: १३ :

हरसिल का सौंदर्य

हरसिल का नाम बहुत वर्षों से सुनते आ रहे थे। प्रातीय सरकार इसको ऊनी वस्त्र और सेव के बगीचो का महत्वपूर्ण केन्द्र बनाने का प्रयत्न कर रही है। प्राकृतिक दृष्टि से यह सचमुच ही बहुत मनोरम प्रदेश है। सेव के उपवन, देवदार के वन, भेड-पालन-केन्द्र, कुटीर उद्योग, सु दर स्त्री-पुरुष, मानो किन्नर और किन्नरिया यही रहते आ रहे हो।

हरसिल के सबध मे पुराणो मे एक रोचक कथा आती है। एक बार जलधर नाम के दैत्य ने कैलासपति शिव पर आक्रमण किया। वर्षों तक उन दोनो मे मारातक युद्ध होता रहा। अत मे शिव विजयी हुए, परतु इस विजय का कारण उनकी शक्ति नही थी, जलधर की पत्नी वृन्दा का पतन था। वह पतिव्रता थी और उसका वह पातिव्रत्य उसके पति का अभेद्य कवच था। विष्णु इस रहस्य को जानते थे। उन्होने माया से जलधर का रूप धारण किया और वृन्दा के पास पहुचे। पति को पास पाकर उसका मन विचलित हो उठा। बस, उसी क्षण उसका पातिव्रत भग हो गया और जलधर का अभेद्य कवच भी टूट गया। तब शिव ने तुरत उसका मस्तक काट डाला। जब वृन्दा को इस छल का पता लगा तो वह क्रुद्ध

हो उठी। उसने विष्णु को शाप दिया, "तू शिला हो जा।"

विष्णु ने भी वृन्दा को शाप दिया, "तू तुलसी होकर सदा मेरे चरणों मे रह।"

दोनो शाप सत्य हुए। आज भी पौराणिक लोग शालिग्राम शिला पर तुलसी चढाते हैं। दोनो का विवाह भी बडी धूमधाम से किया जाता है। कहते हैं, विष्णु इसी स्थान पर शिला बने थे। 'हरिशिला' का अपभ्र श ही 'हरसिल' है।

इसका नाम हरि-प्रयाग भी है। और इसके दो भाग हैं। पहले भाग को वोगरी कहते हैं। इस गाव मे प्रवेश करते ही पाया कि दाहिनी ओर के एक पक्के मकान के बरामदे मे एक सुदरी ऊन कात रही है। उस रूप को देखकर आश्चर्य हुआ। अबतक जिनको देखते आ रहे थे, उनसे वह एकदम भिन्न थी। गौर वर्ण, तीखे मोहक नक्श। साथी उसकी फोटो खीचने के लिए व्यस्त हो उठे। घोरपडे बोले, "इधर देखो।"

तब हमारी ओर दृष्टि उठाकर वह मुस्कराई, मानो कहती हो, "अच्छा, तुम फोटो खींचना चाहते हो। खींच लो। सभी यात्री ऐसा करते हैं।"

वास्तव मे इस गांव मे जाढ जाति के लोग रहते हैं। ये तिब्बत के भोटियों की ही एक उपजाति है। पौराणिक काल मे उन्हे हमने देवयोनी कहा है। किन्नरो के सगीत पर हम मुग्ध थे, परन्तु हमने उनके रूप की जो कल्पना की थी, उसमे उनका चेहरा घोडे के समान था। यह रहस्य स्पष्ट नही हो सका है। परन्तु आज तो ये लोग निश्चय ही वर्णसकर हैं। मिश्रित रक्त ही ऐसा सौन्दर्य प्रस्तुत कर सकता है। युवतिया सलवार, कुर्ता और कोट पहनती हैं। गढवाल की दूसरी नारियो की तरह जेवरो से लदी नहीं रहती। मैंने उस युवती से पूछा, "दिन मे कितनी ऊन कात लेती हो?"

वह बोली, "सेर भर।"

"चादर दिखाओगी?"

उसकी मा पशमीने की सुदर चादर ले आई। मैंने पूछा, "क्या कीमत है?"

बोली, "छब्बीस रुपये।"

लेकिन हम तो यात्रा पर थे। क्रय-विक्रय की व्यवस्था लौटती बार ही सोची जा सकती थी। बोले, "अच्छा, आती वार लेंगे।"

और आगे बढ गये। दूर से देखने पर यह गाव मदिरो का गाव लगता है। अनेक ध्वजाए फहराती हुई दिखाई देती हैं। लेकिन ये ध्वजाए उन लोगो ने गाढी है, जिन्होंने कोई-न-कोई मानता मानी हैं। यहा के अधिकाश निवासी बौद्ध है, कुछ नानकपन्थी भी हैं।

हरसिल (८४००) की इस उपवस्ती को देखते हुए हम आगे बढ गये। भेडो के गिरोह चारो ओर बिखरे हुए थे और धरती पर झरनो और धाराओ का जाल बिछा था। उनको पार करना बहुत अच्छा लगता है। उस पार हरिगगा अथवा जलधरी भागीरथी मे आकर मिलती हैं। एक ओर नदी ककाडा भी भागीरथी मे मिलती है। उसके सगम पर लक्ष्मी-नारायण का मदिर है। हरसिल का सीमान्त ऊन केंद्र भी यही है। वहा हमने पट्टू और थुलमे आदि देखे। बिक्री अच्छी होती है। मुख्य मार्ग पर बाईं ओर डाक-बगला बना है। विल्सनसाहब नाम के एक अग्रेज ने इसका निर्माण १८६० ई० मे कराया था। वास्तव मे इस प्रदेश को खोजने का श्रेय विल्सन को ही है सोचता हू, अग्रेज जाति ने हमे दास बनाया, परतु अपने ही स्वार्थ के लिए सही, उन्होने अनेक ऐसे काम भी किये, जो सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेगे। दुर्गम प्रदेशो की खोज, अलघनीय नदी-नालो पर पुलो का निर्माण, निर्जन प्रदेशो मे विकास-कार्य, इत्यादि। कैसा विशाल बगला बनवाया है! यही बगला अब यात्रियो के लिए डाक-बगला बन गया है। वन-विभाग, निर्माण-विभाग के कार्यालय, स्पेशल पुलिस का केंद्र, डाकघर, अस्पताल, सभी कुछ है। यहा हमने एक पागल व्यक्ति को भी देखा। वह निरन्तर चीख-चीखकर चमडे की निंदा करता रहता। फिर कह उठता है, "शरीर भी चमडा है, पर वह भजन गाता है।"

और वह गाने लगता है। डाक-बगले से चारो ओर की प्रकृति का बडा मनोरम रूप दिखाई देता है। एक के बाद एक पर्वत-शृखला उभरती चली जाती है। उनके पीछे सबसे ऊपर हैं, हिमशिखर, जो मौन तपस्वी की तरह न जाने किस युग से वहां खडे तप कर रहे हैं। सूर्य की किरणों

जब उनका आलिंगन करती हैं तो नाना रूप इन्द्रधनुषो का निर्माण हो उठता है। जैसे किसी चित्रकार ने रगडती तूलिका से उन्हे रूप दिया हो। नीचे विशाल प्रागण मे सेवो के उपवन और सामने की पहाडी ढलानो पर देवदार के सुदर वन यहा की सबसे मूल्यवान निधि हैं, आस-पास के स्रोतो से उठता हुआ कलकल-छलछल का मधुर निनाद मस्तिष्क की सलवटो को समतल करता हुआ हृदय मे जैसे उन्माद भर देता है।

आगे ढाई मील तक का वह राजमार्ग इतना सुन्दर था कि समय का पता ही नही लगा। दोनो ओर के वृक्षो की छाया मे हम शीघ्र ही धराली पहुच गये। यह महत्वपूर्ण बस्ती कभी गगोत्री की शीतकालीन राजधानी थी, परन्तु पास ही बहने वाली क्षीर-गगा (जो श्रीकठ से आती है) मे दस वर्ष पूर्व ऐसी भयानक बाढ आई कि यह प्राय नष्ट हो गई। यहा पवार लोग बसते हैं। ये क्षत्रिय हैं। भेड पालते हैं और नैलग घाटी से होकर तिब्बत के साथ व्यापार करते हैं। चीन के अप्रत्याशित आक्रमण के कारण यह व्यापार अब प्राय समाप्त हो गया है। यहा से सुप्रसिद्ध श्रीकठ शिखर के सुदर दर्शन होते हैं। और गगा के ठीक उस पार मुखवा गाव दिखाई देता है। वहा गगोत्री के पडे रहते हैं। वही पर मार्कण्डेय ऋषि और पाडवो ने भी कुछ समय तक निवास किया था। जब भयकर शीत के कारण गगोत्री का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तब भागीरथी की पूजा यही मार्कण्डेय तीर्थ मे होती है। गगोत्री मे दीवाली के दिन मदिर के पट बद होते हैं। तबसे छ महीने तक मुखवा ही मुख्य बन जाता है। इसीलिए इसका नाम मुख्य मठ भी है। मुख्य शब्द का अपभ्रश ही मुखवा होता है। यही पर हमने शिव-मदिर भी देखा जो बाढ आने के कारण रेती मे धस गया है और बराबर धसता जा रहा है। अब केवल शिखर मात्र दिखाई देता है।

भोजन-विश्राम के बाद पौने दो बजे हम फिर अपने लक्ष्य की ओर चल पडे। एक मील पर हत्याहारिणी नदी मिलती है, जो क्षीरगगा की तरह उत्तरवाहिनी है। आगे चार मील पर जागला चट्टी आती है। उसको सहज ही छायापथ कहा जा सकता है, समतल, शीतल, वृक्षो से आच्छादित। उसे पूरा करने मे लगभग सवा घटा लगा। ऐसा लगता था मानो

सघन कुजो के बीच से होकर जा रहे है। यहा हम चाय पीने के लिए रुके और सामने देखा, उस भयकर चढाई को जिसपर अब हमे चढना था। कभी यहा काठ का छोटा-सा एक डाक-बगला भी था। परन्तु अब तो पुल के पास तीन-चार दुकानें शेष रह गई हैं। यही से होकर एक मार्ग मुखवा को जाता है। जैसे ही हमने चढना शुरू किया, प्राण विद्रोह कर उठे। कडी पथरीली चढाई है। कही-कही पर मार्ग अत्यत सकरा है और चक्र-व्यूह जैसे मोडो से भरा हुआ है। चट्टानो को पकड-पकडकर चढना होता है। इस मार्ग पर नैलग घाटी, पुलमसुध और झल्लू खागा होकर तिब्बत की ओर जाने की राह है। नैलग घाटी हमारी सीमान्त सेना का एक प्रमुख केन्द्र है। ऊचाई १७,००० फुट है। चीन के आक्रमण के कारण इसका महत्व बहुत बढ गया है। सतर्कता और जागरूकता भी बढी है। मार्ग प्रशस्त किये जा रहे हैं।

कुछ दूर आगे बढने पर भीषण नाद सुनाई देने लगता है। देखा बाईं ओर के भूवराकार पर्वतो के वक्ष को चीरती हुई उन्मादनी-सी एक नदी भागीरथी मे आकर मिल गई है। नीलगगा, जाडगगा तथा भोटिया गगा इसीके नाम हैं।

यह सगम देखकर मुझे बदरीनाथ के मार्ग पर विष्णुप्रयाग के पास अलखनदा और विष्णुगगा के सगम की याद आ गई। वह उन्माद अब भी रोमाचित कर जाता है। यहा भी धारा ने पर्वतो को काट-काटकर न जाने कितनी गुहाए, प्रतिमाए और कुण्ड बना डाले है। उन डरावने कटावो के कगार पर से पथरीला, सकरा आकाशगामी मार्ग जाता है। भयानक मोडो का कोई अत ही नही है। कथा आती है कि जब गगा भगीरथ के पीछे-पीछे जाती हुई इस प्रदेश मे आई तो उसका वेग इतना प्रबल था कि वह महर्षि जन्हु के आश्रम को बहा ले गई। यह सारा प्रदेश महर्षि जन्हु ही का था। अपने आश्रम की यह दुर्दशा देखकर वह अत्यत क्रुद्ध हो उठे और आचमन करके भागीरथी को पी गये। राजऋषि भगी-रथ ने जब यह देखा तो वह बहुत दुखी हुए। उन्होने कातर होकर महर्षि से भागीरथी को मुक्त करने की प्रार्थना की। महर्षि प्रसन्न हुए और उन्होने अपनी जाघ चीरकर भागीरथी को फिर धराधाम पर जाने दिया।

इसीलिए भागीरथी का एक और नाम हुआ जाह्नवी ।

यह एक रूपक कथा है । कोई भी व्यक्ति देख सकता है कि जाडगगा और भागीरथी दोनो मानो हिमाचल के वक्ष को चीरकर आगे वढ रही हैं । जाह्नवी की घाटी अपेक्षाकृत विस्तृत है, वेग भी उसका उद्दाम है । भागीरथी गहन गह्वर मे होकर वहती है । कही-कही तो वह घाटी इतनी सकरी है कि भागीरथी दिखाई भी नही देती । यही देखकर किसी कवि ने कल्पना की होगी कि जन्हु ऋषि ने जाघ चीरकर जाह्नवी को मुक्ति दी । वस्तुत जैसे राजऋषि भागीरथ ने भागीरथी का पता लगाया उसी प्रकार महर्षि जन्हु ने नीलगगा का पता लगाया होगा । इसीका नाम जाह्नवी हुआ और गगा के अनेक नामो मे यह भी प्रसिद्ध हो गया ।

यह स्थान एक साथ ही भव्य और भयावह है । इस अद्भुत सगम मे जाह्नवी के नीलवर्ण और भागीरथी के दूधिया जल को स्पष्ट ही देखा जा सकता है । लेकिन नीचे देखना भी दुस्साहस ही है । दृष्टि झुकते ही तन-मन सिहर उठते है । नीचे अनत गहरी घाटी, ऊपर अनत ऊचे शिखर, उसके भी ऊपर आकाश से वातें करते हुए देवदारु के वृक्ष, कहते हैं कि इन्ही वृक्षो के वीच मे कभी नीलगगा का झूलता पुल था । वहुत-से यात्री उसको पार कर सकने का साहस नही कर सकते थे । इसी सगम को प्रणाम करके लौट आते थे । अभी भी अतरिक्ष मे ३५० फुट की ऊचाई पर उसके अवशेष दिखाई देते हैं । कुछ भाग मुडा-तुडा असहाय-सा नीचे धारा मे पडा है । सुना है, अव फिर इस पुल को पक्का वनाने की योजना है, क्योकि सैनिक दृष्टि से यह मार्ग हमारे लिए अत्यत महत्वपूर्ण है ।

अतिम आधा मील की व्यूह पथवाली चढाई सचमुच ही दम तोड देती है । अचानक देखा कि इसी मार्ग पर कोलाहल मच उठा है । एक वृद्धा वुरी तरह रो रही है । अपना सव कुछ एक पोटली मे वाधकर वह उसे सिर पर रखकर चल रही थी । चट्टान का सहारा लेते हुए सहसा वह पोटली भागीरथी की अगम्य घाटी की ओर गिर पडी । सव कुछ लुट गया, यह सोचकर वह वृद्धा निष्प्राण हो आई । लेकिन सयोग देखिये, पोटली कुछ गज नीचे जाकर ही एक चट्टान मे अटक गई थी । एक दुस्साहसी ने नीचे उतरकर उसे उठा लिया । वृद्धा जैसे जी उठी ।

यात्रा का अत समीप आ चुका था। बुरी तरह त्रस्त हो रहे थे, लेकिन फिर भी न जाने किस अदम्य विश्वास के सहारे हम शिखर पर पहुच गये। साढे छ मील का यह कसाले का मार्ग हमने तीन घटे मे तय किया। शिखर पर एक छोटा-सा पठार है। उसपर बनी हुई है एक धर्म-शाला, दो-तीन दुकानें और भैरव का छोटा-सा एक मदिर। लेकिन प्रकृति यहा बहुत मादक हो उठी है। अत्यत सुरम्य वनश्री, विधाता की ओर उन्मुख देवदार की मनोरम वृक्षावली, मानो पक्षीगण पख खोले तप मे लीन हो या फिर अपनी आकाश-निवासिनी प्रेमिकाओ से प्रेमालाप कर रहे हो। शब्द वहा मौन हो रहता है। उनके पीछे हैं वे गगनचुम्बी हिमशिखर, जो इस तन्मयता को देखकर मुग्ध हो उठे हैं। इनके बीच से बहती हुई शीतल मद वायु तन-मन की सारी थकान को क्षण-भर मे तिरोहित कर देती है। शीतकाल मे कैसी मनोरम लगती होगी, यह शात, मौन प्रकृति, जैसे कोई योगिनी समाधिस्थ हो गई हो। लगभग ६२०० फुट की ऊचाई है, लेकिन यहा का शीत इतना कष्टप्रद नही है। धर्मशाला सुदर भी है और बडी भी। लेकिन भीड इतनी थी कि बडी कठिनता से एक ही कमरा मिल सका। हम सब उसमे सो नही सकते थे। तब सोने का स्थान प्राप्त करने के लिए हमने और दूसरे यात्रियो ने जो जोड-तोड और जो प्रयत्न किये, वे आज के विश्वयुद्ध को बचाने के लिए किये गए प्रयत्नो के समान ही अद्भुत थे।

यमनोत्री के मार्ग पर जाते हुए अनेक व्यक्तियो ने हमसे कहा था कि गगोत्री का मार्ग अपेक्षाकृत सरल है, परतु भटवारी, सुक्खी और भैरव-घाटी की सकटापन्न चढाई के बाद हम उन बंधु से सहमत नही हो सके। परतु इस ओर की प्रकृति अत्यत ऐश्वर्यशालिनी है, इसीलिए मार्ग सुगम मालूम होते हैं। यह ऐश्वर्य जैसे सारी थकान को सहला देता है। सामने ही म्याहण नाम की एक चोटी दिखाई देती है। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें जब उसपर पडती हैं तो उसकी रक्तिम आभा जैसे मन मे उतर जाती है।

आज फिर मा की याद हो आई। लखनऊवाली माताजी ने बडे स्नेह से परावठा खिलाया, जैसे कभी बचपन मे खाते थे। घी-नमक लगा-

कर गोली बनाकर। पेट के कष्ट के कारण परावठे छोडे युग बीत गया। पर मा के हाथ का विष भी अमृत हो रहता है। उन मातृस्वभावा प्रेमिल महिला के हाथ उस रात वही अमृत मिला। विधाता हर कही स्वय नही जा सकता, इसीलिए उसने मा का निर्माण किया है।

: १४ :

जहां भगीरथ ने तप किया

यद्यपि हमारा कमरा स्वच्छ, सुदर और लकडी का नया-नया ही बना था, फिर भी उसमे बारह व्यक्तियो के सोने की सभावना नही थी। रिम-झिम-रिमझिम वर्षा होने लगी। उसने देवदार के सान्निध्य मे सोने की सभावना को समाप्त ही कर दिया। तब साम, दाम, दड, भेद से, किसी तरह बोझियो और दूसरे सेवको को पडछत्तियो मे स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। सफल भी हो गये। उनमे बस लेटा ही जा सकता था। लेकिन इन दुर्गम मार्गों पर "एरडोऽपि द्रुमायते" इस न्याय के अनुसार उनका महत्व राज-महल से भी अधिक होता है। यह सब करने के बाद भी यशपालजी को बाहर बरामदे मे ही सोना पडा। "सबको असुविधा हो, इससे तो अच्छा है, मैं ही थोडी-सी असुविधा क्यो न उठा लू।" यह उनका तर्क था। ठीक भी था। किसी एक को यह असुविधा उठानी ही थी। यह सौभाग्य उन्हीको मिला। लेकिन जिसे हमने थोडी-सी असुविधा की सज्ञा दी है, वह अत मे भयकर प्रमाणित हुई। उस रात बरामदे का दृश्य सचमुच अद्‌भुत हो उठा था। काश! कोई चलचित्र बनानेवाला वहा होता! आदमी से आदमी सटे पडे थे और उनमे भी थे अधिकाश साधु लोग। गाजा-सुलफा उनका प्राण है। निरतर पिये जा रहे थे और वह धुआ हम सबके तन-मन पर साप की गुजल की तरह घिरता आ रहा था।

यशपाल जहा लेटे थे, वह स्थान ठीक हमारे कमरे की देहरी के बाहर था। उनके एक ओर था एक साधु, दूसरी ओर थी एक साध्वी। दोनो बगाली थे। पर साधु जितना शात और सौम्य था, साध्वी उतनी ही चचल और वाचाल थी। उसपर ज्वर-ग्रस्त थी। जमनोत्री के मार्ग पर उसे भीख मागते देखा था। उस दिन भी भीख ही माग रही थी। बाते करते-करते सहसा वे शब्द-युद्ध मे उलझ गये। इस युद्ध के बीच यशपाल सव्यसाची की तरह लेटे थे। साधु न गाजा पीता था, न सुलफा। मानता था कि ऐसा करने से भगवान के चरणो मे प्रीति नही होती, परतु वह साध्वी तीव्र स्वर मे उसका प्रतिवाद किये जा रही थी, "कैसे नही होती ? दम लगाते ही प्रभु के चरणो मे पहुच जाते है।"

उनकी ये बाते सुनकर कुछ देर तो हमारा मनोरजन हुआ, लेकिन फिर मन दुखी हो उठा। बहुत देर तक वे दोनो अपने-अपने पक्ष को नाना तर्क वितर्कों से पुष्ट करते रहे। दोनो ही आग्रही थे। किसी निर्णय पर पहुंचने का प्रश्न ही नही उठता था। दूसरे साधु-सन्यासी भी नशे मे बडबडा रहे थे। सोचने लगा, किस अज्ञान मे पडे हुए हैं ये लोग। इनके जीवन का अतिम लक्ष्य भगवे वस्त्र पहनकर क्या भीख मागना और गांजा-सुलफा पीना ही है ? क्या ये ही चतुर्थ आश्रम के गौरव और धर्म के रक्षक हैं ? छि छि।

उस सुरम्य प्रदेश मे वह रात सचमुच नरक की रात थी। अधोवायु, अपानवायु और गाजे-सुलफे की गध, वर्षा की झडी और वह अटपटा कोलाहल, कुछ लोग बैठे थे, कुछ गा रहे थे, कुछ पैरो को पेट मे सिकोडे एक-दूसरे से सटे पडे थे, एक-दूसरे की चादर खीच रहे थे। कमरे के भीतर हम लोग भी सो नही पा रहे थे। बाहर का गदा धुआ शीत के भय से जैसे अदर जाकर घुटता जा रहा था। हम व्याकुल विवश, इस दृश्य के मूक साक्षी-मात्र बने रहे।

अभी रात शेष थी, पर प्राणवायु के लिए व्याकुल होकर मैं बाहर निकल आया। देखता हू , गहरी धुध ने सबकुछ को ग्रस लिया है। मेघ सघन और वाष्प-सकुल हैं। न है भव्य हिम-शिखर, न है गगनचुम्बी देवदार। तरल पारदर्शी अधकार मे से बस एक विराट छाया ही परिलक्षित

होती है। फिर भी कुछ लोग मारी रात मुक्त ग्राकाश के नीचे वर्षा की रिमझिम मे बैठे रहे हैं। बीच मे ग्रलाव जल रहा है। उसके चारो ग्रोर गोलाकार पक्ति मे बैठे हैं वे ग्रामीणजन जिनकी श्रद्धा की कोई थाह नही है। कैसा है श्रद्धा का यह ग्राल-जाल, जो मनुष्य को भयकर-से-भयकर बाधा से जूझने की शक्ति देता है। सुख-दुख के द्वद्व से ऊपर उठा देता है। न है राशन, न है रोशनी के लिए मिट्टी का तेल। पानी का भी ग्रकाल है। कही दूर से टीन की एक नाली बनाकर वहा पानी लाया गया है। चौकीदार चीख-चीखकर कहता है, "कितनी लकडी पडी हुई है लेकिन कोई धर्मशाला बनाता ही नही।"

सदा की भाति उस दिन भी हम लोग पाच से पूर्व ही ग्रपने ग्रतिम पडाव की ग्रोर रवाना हो गये। तब पूर्व मे सूर्य की किरणो ने इद्रजाल की माया जैसा एक वितान तान दिया। जो चट्टानें सिमट गई थी, वे पसरने लगी। मेघो की सघनता को चीरकर जब प्रथम किरण ने उनको चूमा तो प्रकृति लाज से लाल हो ग्राई। दिगदिगत उस दीप्ति से उल्लसित हो उठे। हम भी रात की जुगुप्सा को भूलकर जैसे किसी स्वर्ग मे पहुच गये हो। प्रारभ मे हल्की-सी चढाई मिली, लेकिन गगनचुम्बी वृक्षो से ग्राच्छादित ग्रौर सूर्य-किरणो से दीप्त हिमशिखर भी पास ग्राते जा रहे थे। उन्हींको देखते हुए हम उस चट्टानो से भरे पथरीले ग्राकाश-पातालगामी मार्ग पर ग्रागे बढते चले गये। डेढ मील पर हमने ग्रखरोटो से घिरे मैदान को देखा, जिसे ग्रखरोट-थाथर कहते हैं। उसे पार करके पहुच गये नेंगचीपाट। यहा दुधारू गाय रहती है। यही से देवघाट के शिखर दिखाई देने लगते है। प्रपातो ग्रौर सघन वनो ने तो जैसे हमे मोह ही लिया था। मार्ग की कठिनाई का पता ही न चला। विशाल चट्टानो ने ग्रनेक भव्य दृश्यो का निर्माण किया है, पर वे विकराल ग्रौर भयानक भी हैं। दूध इधर प्रचुर मात्रा मे मिलता है। सभवत उसीके सहारे साढे छ मील का वह मार्ग हमने दो घटे मे पार कर लिया। एक पठार को पार करते ही हमने गगा के उस पार एक सुदर बस्ती को देखा। यही तो मगोत्री है। ग्रौर क्या हो सकता है ? तभी एक बधु ने कहा, "गगोत्री की मुख्य बस्ती इसी पार है। वे तो यहा रहनेवाले साधुग्रो के मठ है।"

जिस समय हम गगोत्री पहुचे, सात बज रहे थे। २५ मई को जमनोत्री से चले थे और आज ५ जून को १२ दिन मे लगभग १०० मील चलकर अपने लक्ष्य पर पहु च गये। लक्ष्य-प्राप्ति और गगोत्री के प्रथम दर्शन के कारण जो सुखद अनुभूति हमको हुई, उसको शब्दो मे बाधना कठिन है और अनावश्यक भी। ठहरने के लिए यहा काली कमलीवालो की धर्मशाला के अतिरिक्त और भी धर्मशालाए है। पजाब सिंधु क्षेत्र है, पडो के घर है। घूम-फिरकर सभी स्थान देखे और देखी यहा की गदगी। अच्छा नही लगा। स्वच्छता का महत्व जिस दिन समझ पायगे उसी दिन मुक्त हो सकेंगे। काली कमलीवालो की धर्मशाला मे जो सुविधाजनक कमरे थे, वे एक सेठ के दूत ने पहले ही घेर लिये थे। यह दूत हमे अक्सर परेशान करते रहे। बडी कठिनता से नीचे के दो कमरे मिल सके। सामने हिमशिखरो के चरणो मे बहती पतित-पावनी भागीरथी है। दाहिनी ओर अन्नपूर्णा और भागीरथी के मदिर है। कहते है, यह मदिर उसी स्थान पर बना हुआ है, जहा भागीरथ ने तप किया था। लो ! हिमशिखरो पर सूर्य की किरणें पडने लगी। वे दीप्त हो उठे। दूरबीन से देखा तो "रजत-स्वर्ण-प्लातिनम" के वे रग मानो आखो मे समा गये। मन पुलक-पुलक उठा। परतु स्वीकार करूगा, जिस सौंदर्य की कल्पना मैंने की थी, यह दृश्य उसको छूते भी नही।

यह प्रदेश गगोत्री क्यो कहलाता है ? इसके शायद दो कारण हैं। जिन स्थानो पर भागीरथी उत्तरवाहिनी है, उनमे एक यह भी है। दूसरा कारण इसका यह है कि यह स्वय ठेठ उत्तर मे है। इसी कारण इसका नामकरण हुआ गगोत्री। यह समुद्र-तल से १००,३९० फुट की ऊचाई और टिहरी के टकनोर परगने मे २१ अक्षाश और ७५ दशमलव ५७ देशातर पर स्थित है। कहते हैं कि १९वी सदी के पूर्वार्ध मे गुरखा सेनानायक अमरसिंह थापा ने यहा गगा का मदिर बनवाया था। लेकिन प्रकृति के प्रकोप से वह एक दिन टूट गया। इससे भी पूर्व जो मदिर यहा था, वह लकडी का था। आजकल जो मदिर है, वह जयपुर के महाराजा ने बनवाया है। पूजा के लिए यहा रावल या महत की प्रथा नही हैं। मुखवा ग्राम के गृहस्थ पडे ही सब व्यवस्था करते हैं। मदिर के ऊपर एक बडा शिखर है, जिसके

चारो ओर दस अन्य शिखर है। प्रात काल सूर्योदय के समय जब बाल-रवि की किरणें इन शिखरो पर पडती हैं तो उनका स्वर्णिम वर्ण वडा ही सुरम्य प्रतीत होता है। मदिर वैसे छोटा ही है। इन दुर्गम मार्गों पर वडे मदिर सहज नही हैं। काकासाहब कालेलकर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है, "गगोत्री मे गगा-मैया का मदिर इतना छोटा है, मानो किसी तप पूत ऋषि की आद्य-प्रेरणा या धर्मस्फुरणा हो।" मदिर के गर्भगृह के केंद्र मे गगा-जमुना की अत्यत मनोहर नाना आभूषणो और मणि-मुक्ताओ से विभूषित मूर्त्तिया है। इनके नीचे क्रमश आद्य शकराचार्य, महालक्ष्मी, अन्नपूर्णा, सरस्वती, भगीरथ और जाह्नवी की मूर्त्तिया हैं। शकर और गणेश भी है।

भगीरथ की मूर्त्ति देखते ही नयनो मे अनेक चित्र उभर आये। इस सम्राट ने लोकहित की कामना से प्रेरित होकर इन दुर्गम प्रदेशो मे कितनी साधना की होगी। ऐसा लगा जैसे वे अभी भी शिखरो और घाटियो मे जल-प्रवाहो के लिए मार्ग खोजते घूम रहे हैं। उन्हें बाध रहे हैं कि मैदानो मे बसनेवाले असख्य नर-नारियो के तन-मन की प्यास बुझा सकें, भूमि उर्वर बना सकें। पौराणिक कथा सत्य हो या न हो, लेकिन इतना अवश्य सत्य है कि भगीरथ नाम का एक नरेश निश्चय ही गगा के उद्गम की खोज मे इधर आया था। इन पर्वत प्रदेशो मे आज भी अनेक सिद्धपीठ ऐसे बताये जाते हैं, जिनपर बैठकर की गई तपस्या कभी व्यर्थ नही जाती। दूसरा चित्र आद्य शकराचार्य का है, जिन्होने भारत की सास्कृतिक एकता के लिए न केवल भारत के चारो दिशाओ मे अपने मठ स्थापित किये, बल्कि उधर भारत के मठो मे दाक्षिणात्य पुजारी होगे ऐसा नियम भी बना दिया। "हिमालय के इन शिखरो पर से दक्षिण और उत्तर दोनो दिशाओ मे और भारत व तिब्बत दोनो देशो में धर्म-प्रवाह प्रवाहित कर अद्वैत के जीवन-सिद्धात की और सर्वैक्य के हृदय मे धर्म की लहर फैला देने का सकल्प भी उन्होंने यहा रहकर किया होगा।"[1]

भारत की सास्कृतिक एकता हमारे पूर्वजो को इतनी प्रिय थी कि

---

१ हिमालय-यात्रा—काका कालेलकर, पृष्ठ १७७

प्रत्येक सस्कार के समय पुरोहित जल की घटिका मे गगा, जमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि सप्त सरिताओ का आह्वान करता है ।

गगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

वैदिक ऋषि उत्तर भारत की गगा-जमुना के साथ दक्षिण की गोदावरी और नर्मदा को भी नही भूला है । शकर इसी परपरा के महान् भारतीय दार्शनिक थे ।

मदिर का प्रबध एक समिति के हाथ मे है, जिसके पाच सदस्य है । एक मत्री है । पाच पुजारी हैं और पाच ही उनके नायब हैं । बारी-बारी से वे सब पूजा करते हैं । इस मदिर के समीप दो और मदिर हैं । एक भैरव का, दूसरा शिव का । भैरव के मदिर मे भैरव और शिव की मूत्तिया हैं । शिव के मदिर मे शिवजी के पास सगमरमर के पट्ट पर शिव-पार्वती की मूत्तिया उत्कीर्ण हैं । मदिर के बाहर नदी की छोटी-सी प्रतिमा है । कला की दृष्टि से कोई भी मदिर उल्लेखनीय नही है । इनका महत्व केवल सहज सौंदर्य और मानव की श्रद्धा के कारण है । इस कारण भी है कि भारत के एक बहुत बडे भू-भाग को उपजाऊ बनानेवाली, धनधान्य से भरनेवाली अन्नपूर्णा-रूपिणी भागीरथी यहा धरती पर आती है । प्राचीन काल मे भागीरथी का वास्तविक उद्गम गगोत्री में ही रहा होगा । जिस हिमानी से वह निकलती दिखाई देती है, वह निरतर पिघल रही है । इन हजारो वर्षों मे उस हिमानी का अठारह मील पीछे हट जाना असभव नही है ।

भारतवासियो को सदा से प्रकृति से प्रेम रहा है । उन्होने ब्रह्म की आराधना, उपासना सदा भयानक रूपमयी प्रकृति के प्रागण मे ही की है । भगवान् वेदव्यास ने नदियो को विश्वमाता के रूप मे माना है, '**विश्वस्य मातर. सर्वा सर्वशः चैव महाफला ।**' आध्यात्मिकता और भौतिकता का जो समन्वय गगोत्री मे दिखाई देता है, वह शायद अन्यत्र दुर्लभ है । वास्तव मे और किसी जाति या देश ने भूगोल को अध्यात्म का रूप दिया ही नही । इस प्रदेश मे देवदार के सघन वन हैं, जो न केवल मनोरम हैं, बल्कि हृदय को पवित्रता से भरनेवाले हैं । पहाडी ढलानो और शिखरो पर

खडे ये तुग-शीर्ष वृक्ष वनश्री की शोभा के मानो मानदड हैं। कालिदास ने देवदार को शकर का पुत्र कहकर उसकी महत्ता प्रकट की है। एक हाथी ने देवदार के सहारे अपनी कनपटी खुजलाई। वह छिल गया। उसे देखकर पार्वती ऐसी व्यथित हुई, जैसी बाणो से घायल कार्तिकेय को देखकर हुई थी। देवदार को देखकर मनुष्य को सचमुच ऐसा लगता है जैसे वह स्वय विश्वात्मा के समीप पहुच गया हो। प्रसिद्ध पर्यटक फ्रेजर १८१५ ईस्वी मे यहा आया था। उसने लिखा है, "यहा का दृश्य उस अद्भुत पवित्रता के अनुरूप ही है, जो उसके लिए मानी जाती है।" निश्चय ही डेढसौ वर्ष पूर्व पवित्रता अधिक रही होगी। आज भी यद्यपि यहा का दृश्य उसकी पवित्रता के अनुरूप है, लेकिन फिर भी न तो केदारनाथ जैसी स्तब्ध कर देनेवाली भव्यता है, न त्रियुगीनारायण की वनश्री का ऐश्वर्य है। बदरी विशाल के नर-नारायण जैसी रोमाचक शोभा भी यहा नही है। जिस प्रकार कही और गगा बहती है, उसी प्रकार यहा भी गगा के दर्शन होते है। मार्ग मे मिलनेवाली जाह्नवी मे भागीरथी से कही अधिक विपुलता है।

शीत के कारण मन मे दुविधा थी कि स्नान करें या पचस्नानी से मुक्ति मिल सकती है। जल अत्यत शीतल था। स्पर्श करते ही फुरफुरी आ जाती थी। फिर भी तीर्थ है, ऐसा सोचकर किनारे पर पहुचा। देखता हू कई साहसी पुरुष अदर प्रवेश करके पत्थरो के सहारे गोते लगा रहे हैं। यह जैसे मेरे स्वाभिमान को चुनौती थी। मैं तुरत अदर चला गया। फिर तो आखें मूदकर खूब गोतें लगाये। ऐसा लगता था मानो शरीर हिमशिला होता जा रहा है, लेकिन बाहर आने पर जब बदन पोछा तो अतर की ऊष्मा का परस पाकर जैसे सारी थकान दूर हो गई। हमारी देखा-देखी अब तो सभी साथियो ने अदर घुसकर ही स्नान किया। कमरे मे लौटकर घोरपडे ने तापमान देखा तो ६० डिग्री था। कल्पना से तुरत दिल्ली पहुच गये। वहा का तापमान अवश्य ११२ डिग्री के आस-पास रहा होगा। कहा यह अस्थिमज्जा को जमानेवाला शीत और कहा तन-मन को झुलसानेवाला ग्रीष्म। कैसा विचित्र है हमारा देश!

भोजन और विश्राम मे काफी समय बीत गया। तूफान के बादल आज

भी उमडे थे । निकल भी गये । पत्र लिखे । तीन बज चले थे । शीत उग्र होने लगा कि तभी आ गये साधु किणी । गोमुख की चर्चा करते हुए बोले—मैं चाहता था, पर जा न सका । बगाली लोगो का एक दल आज ही लौटा है, परतु घबरा रहा है ।"

गोमुख की चर्चा दो-तीन दिन से चल रही थी । किणी महाशय सकेत मात्र पर अपने एक स्वप्न की चर्चा करने लगे । ठीक याद नही आता गोमुख के प्रसग से उसका क्या सबध था । ऐसा लगता है, उनके बहुत-से काम स्वप्न से परिचालित होते है । गोमुख-यात्रा के सबध मे उन्हे कोई स्पष्ट आदेश शायद नही मिला था । घटना कश्मीर की है । उन्होने स्वप्न मे एक सात-आठ वर्ष की लडकी को देखा था, जो उनसे कह रही थी, "हमारे घर जाओ ।"

सवेरे उठे तो किसीने भोजन के लिए बुला भेजा । पूछा, "आप पूर्वाश्रम मे क्या करते थे ?"

किणी महाशय ने उत्तर दिया, "मैं मैकेनिक था ।"

वह बोले, "तब तो आप पास के गाव मे चले जाइये । एक एजिन खराब हो गया है, उसे ठीक कर सके तो अच्छा होगा ।"।

वह वहा गये । क्या देखते हैं कि उस घर पर वही सात-आठ वर्ष की कन्या है, जो स्वप्न मे आई थी । चकित रह गये । उन्होने एजिन ठीक किया और छ महीने तक वही घूमते रहे । इन्हीं गृहस्वामी ने उनकी अमरनाथ-यात्रा का भी सब प्रबध किया ।

स्वप्न-विज्ञान के बारे मे बहुत मतभेद है । पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सभी स्वप्न सत्य नही होते । जिन स्वप्नो का सबध अव्यक्त मन से है, वे प्राय सत्य हो जाते है । अरस्तू के अनुसार हमारा अव्यक्त मन हर समय काम करता रहता है । जाग्रतावस्था मे सूक्ष्म मन आश्चर्य-जनक रूप से सूक्ष्म अध्ययन को अपने पास सुरक्षित रखता है । यही साधारणतया स्वप्न बनकर हमारे सामने आता है । राष्ट्रपति अब्राहम लिकन ने ११ अप्रैल १८६५ की रात मे एक स्वप्न की चर्चा की थी । वह एक पार्टी मे निमन्त्रित थे और अत्यत उदास थे । पत्नी ने उदासी का कारण पूछा तो वह बोले—मुझे एक सपना याद आ गया है । अभी चार-

पाच दिन पहले देखा था। सहसा मैंने किसीके रोने का स्वर सुना। बिस्तर से उठकर मैं उस दिशा मे गया। चारों ओर प्रकाश जगमगा रहा था। परतु जब मैं पूर्वी कमरे मे पहुचा तो देखा, किसीके शव के पास सैनिक विलाप कर रहे हैं। मैंने पूछा, "किसकी मृत्यु हो गई है।"

सैनिक ने उत्तर दिया, "राष्ट्रपति लिंकन की। उनकी हत्या की गई है।"

उसके ठीक तीसरे दिन लिंकन की हत्या हुई। यह सभी जानते हैं कि चुनावो के बाद से ही उनकी हत्या का खटका बना रहता था। लिंकन हँस पडे थे, परतु उनका अव्यक्त मन भयभीत हो गया था। वही भय सपना बन आया। किणी महाशय साधु हो गये थे, परतु अव्यक्त मन अभी मैकेनिक को नही भूल पाया था। शायद हम लोगो का अव्यक्त मन भी सदा यात्राओ के लिए उत्सुक रहता है, इसीलिए कभी-न-कभी अवसर मिल ही जाता है।

हम लोग घूमने के लिए निकले। बाजार बहुत छोटा है, परतु सभी आवश्यक सामान मिल जाता है। उसे देखते हुए हम लोग पुल पर से होकर उस पार पहुचे। देखते क्या है कि एक ओर धारा ऊपर से उतावली भागी चली आ रही है। दक्षिण दिशा मे हेमकूट पर्वत है। उसीके पास है केदार हिमानी। वही से निकलकर उत्तरवाहिनी केदारगगा भागीरथी मे अपनेको विसर्जित कर देती है। इसीके आस-पास अधिकाश साधुओ के आश्रम फैले पडे हैं। हम लोग उनके बीच से होकर सीधे ब्रह्मकुण्ड पर पहुच गये। यहा भागीरथी का रौद्र रूप देखकर सचमुच डर लगता है। ऐसा जान पडता है, मानो उन्मत्त भागीरथी तीव्र गति से छलाग मारती हुई तीन धाराओ मे बटकर उस कुड मे कूद पडती है। उसके प्रवाह की तीव्रता और उसका प्रखर नाद तो पहले मन को कुछ कपायमान कर देता है, फिर हृदय पुलकित हो उठता है। जल के सतत सघर्ष से चित्र और स्थापत्य कला के नाना नये रूप वहा दिखाई देते हैं। मानो किसी अदृश्य कलाकार ने युगो की सतत साधना के बाद उनका निर्माण किया हो।

ब्रह्मकुड के पास ही सूर्यकुड है। ये दोनों कुड प्रवाह के वेग के कारण

नष्ट होते जा रहे हैं। लेकिन गौरी-कुड आज भी उस प्राचीन कथा का स्मरण दिला रहा है, जिसके अनुसार शिव गगा के वेग को अपनी जटाओ मे वाधा था और फिर भगीरथ के तप करने पर अपनी जटाओ को निचोडकर उसे मुक्ति दी थी। भागीरथी की जो स्थिति इन कुडो के आस-पास है, उसको देखकर निश्चय ही तत्कालीन कवि ने यह कल्पना की होगी। एक स्थान पर मार्ग वहुत सकरा है। उसपर एक विशाल चट्टान अड गई है। उसीके असख्य झरोखो मे से वहती हुई भागीरथी शात होती चली जाती है। कथा आती है कि जव शिव ने यहा भागीरथी को अपनी जटाओ मे धारण किया तो उस आघात से वह स्वय पाताल मे धसने लगे। भागीरथी उनकी चुनौती से क्रुद्ध हो उठी थी और अपने वेग मे उसने प्रलय की गति भर दी थी। गौरी आगे चट्टान पर वैठी तप कर रही थी। उन्होने जब शकर को रसातल जाते हुए देखा तो अपने तप के वल से भागीरथी को वही रोक दिया। वस्तुत नदी की धारा इस गह्वर मे जिस विशाल प्राकृतिक शिला पर गिरती है, उसे शिवलिंग कहते है। कहते हैं कि भागीरथी की गति कितनी ही तीव्र क्यो न हो जाय, यह पाषाण-शिला वही रहती है, उसपर चढकर ही जल आगे वढता है। साधारणतया वह दिखाई नही देती, परतु शीत काल मे वर्फ जम जाती है तव वह दिखाई देनी है। पानी का प्रवाह तव भी निरतर वना रहता है। इस प्राकृतिक रचना को ही तत्कालीन किसी धर्मप्राण व्यक्ति ने पौराणिक आख्यान का रूप दिया होगा। गौरीकुण्ड के दाईं ओर ऊपर एक शिला पर छोटे-से मदिर की आकृति उत्कीर्ण है। कहते हैं, यह वही मदिर है जिसमे गौरी पूजा किया करती थी। भूरी चट्टान पर श्वेत रेखाओ से निर्मित यह आकृति कभी मिटती नही। पर यह अलौकिक या शाश्वत रचना है, इसपर सहज विश्वास नहीं होता। हो सकता है, इसके निर्माता ने ऐसी रासायनिक क्रिया द्वारा इसका निर्माण किया हो, जिससे ये रेखाए सहज ही नष्ट न हो सकें। इसमे अधिक इस मदिर का और कोई महत्व नही है।

गौरी-कुण्ड की गहराई इतनी है कि ऊपर चट्टान पर खडे होकर नीचे देखने से हृदय काप आता है। धर्मप्राण व्यक्ति मानते हैं कि यहा से आगे

का जल सुदूर दक्षिण मे रामेश्वरम् मे चढाने के योग्य नही रहता । न जाने किस दूरदर्शी ने भारत को सास्कृतिक एकता मे आबद्ध रखने के लिए यह परिपाटी चलाई थी कि गगोत्री के यात्री यहा से गगाजल ले जाकर ठेठ दक्षिण मे समुद्र के मध्य मे स्थित रामेश्वरम् के मदिर मे चढायें और रामेश्वरम् से आनेवाले यात्री अपने साथ सागर का जल लेकर ठेठ उत्तर मे हिमालय मे स्थित बदरीनाथ मे चढाये । गौरी-कुण्ड मे भी सेत-बध की रेती विधिपूर्वक समर्पित की जाती है । इस क्रिया को सेत-तर्पण कहते है। क्या यह इस बात की द्योतक नही हैं कि भारत की सास्कृतिक एकता की कल्पना सदा अखण्ड रही है । भौगोलिक सीमा के कारण उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम का भेद भले ही रहा हो, भारतवासियो के हृदय मे मानवता के स्तर पर कभी कोई भेद-भाव नही रहा ।

जहा एक ओर मेरा मन भारत की अखण्डता की कल्पना करता रहा, वहा इन कुण्डो को देखकर मुझे ऐसा लगा कि भागीरथी के इस उग्र रूप को देखकर इस स्वदेश के इजीनियरो ने उसके वेग को कम करने के लिए यहा बाध बनाया था । बाद मे किसी कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति से उसे वह रूप दिया, जो आज भारत के जन-मानस पर अकित है ।

गौरी-कुण्ड के पीछेवाला प्रदेश पटागना अथवा पाण्डवधुना कहलाता है । महाभारत के युद्ध मे अपने परिवारवालो की हत्या का जो पाप पाण्डवो को लगा था, उसी प्रायश्चित्त करने के लिए महर्षि वेदव्यास की आज्ञा से उन्होने यहा देवयज्ञ किया था । इसीके पास रुद्रगगा रुद्र हिमालय से निकलकर भागीरथी मे प्रवेश करती है ।

गगोत्री मे देखने के लिए इसके अतिरिक्त और कुछ विशेष नही है। लेकिन आस-पास अनेक सरोवर, उद्गम का स्थल और अन्य प्राकृतिक दृश्य हैं। अनेक साहमी यात्री इन स्थलो को देखने के लिए जाते रहते हैं। लेकिन अधिकाश गगोत्री को ही अपना चरम लक्ष्य मानते है । गगोत्री गगा का उद्गम नही है । उसका उद्गम अठारह मील ऊपर गोमुख मे है। वर्ष मे मुश्किल से पन्द्रह-बीस यात्री ही वहा पहुचते हैं । सामरिक महत्व के कारण अब भारत सरकार ने वहातक पगडडी का निर्माण करा दिया है । लेकिन उस समय वहा जाने का कोई ठीक मार्ग नही था । दिशा

निर्देश तक नही था । यात्रियो को अपना मार्ग आप ही बनाना होता था । जाते समय जो मार्ग बनाया जाता है, लौटते समय भीषण वायु, हिमपात अथवा पर्वतो पर लुढक-लुढककर गिरनेवाले शिला-खण्डो की वर्षा से वह नष्ट हो जाता है । हमारे दल के कई व्यक्तियो की गोमुख जाने की बडी इच्छा थी । परन्तु ऋतु क्षण-क्षण मे उग्र रूप धारण कर रही थी । गदराए मेघ आकाश के पूरे विस्तार को घेरे हुए थे। किसी भी क्षण वर्षा हो सकती थी । और वर्षा होने पर वे मार्ग सचमुच अगम्य हो उठते हैं । इसलिए यह स्वाभाविक था कि दल के बुजुर्ग शकित हो उठे। इसी ऊहा-पोह मे एक व्यक्ति से भेंट हुई । वह थे स्वामी सुदरानद ।

: १५ :

ब्रह्मचारी सुंदरानंद

गगोत्री के मार्ग पर हमे कई ऐसे व्यक्ति मिले थे, जो गोमुख होकर लौट रहे थे । उनमे एक महिला भी थी । वह अत्यत त्रस्त थी । बोली, "गोमुख जाने के कारण ही मेरी यह दशा हो गई है ।"

हमारे एक साथी ने कहा, "हम तो स्वय वहा जाने का विचार रखते हैं ।"

महिला बोली, "नही-नही, आप उधर न जाइये । बडा विकट मार्ग है ।"

क्या यह हमारे लिए चुनौती नही है । एक महिला उस भयकर मार्ग से होकर गोमुख हो आई और जीवित है । पुरुष होकर क्या हम नारी की सलाह को मान लें और पराजित हो जाय। किशोर माधव के रक्त मे उबाल था और उत्तरदायित्व का अकुश भी अभी उसने स्वीकार नही किया था । इसलिए भय से वह अभी अपरिचित था । उसने दृढ स्वर मे कहा, "हम अवश्य चलेंगे ।"

कुछ और आगे वढे तो एक वगाली युवक से भेट हुई। वह भी गोमुख होकर आ रहा था। घोरपडे को हैट पहने देखकर उसने पूछा, "कहा से आ रहे है और कहातक जायगे?"

घोरपडे वोले, "हम लोग दिल्ली के पत्रकार और लेखक हैं। गगोत्री जा रहे है।"

उसने कहा, "आप गोमुख भी जाय। मैं वही से होकर आ रहा हू।"

घोरपडे ने पूछा, "क्या हम गोमुख जा सकते हैं?"

उसने दृढ स्वर मे कहा, "क्यो नही जा सकते। आपको जाना ही चाहिए। मार्ग विकट अवश्य है, पर अच्छा मार्गदर्शक आपको वहा ले जा सकता है।"

हम लोग उत्फुल्ल होकर नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगे। उसने हमे इस सवध मे पूरी जानकारी दी। मार्गदर्शको तक के नाम वता दिये। कहा, "वहा एक ब्रह्मचारी है स्वामी सुदरानद। उनसे आप अवश्य मिल लीजिएगा। सवकुछ ठीक हो जायगा।"

यही नाम हमारी आशा वनकर रह गया था। माधव वजिद था कि वह अवश्य जायगा। हममे से कुछ लोग अनिर्णय के झूले मे झूल रहे थे। प्रकृति के कोप का डर था। निश्चय हुआ कि पहले स्वामी सुदरानद से मिल लिया जाय। माधव और घोरपडे तुरत उस पार स्वामी तपोवन के आश्रम मे स्वामी सुदरानद से मिलने चल पडे। अट्ठाईस वर्षीय आध्र प्रदेश निवासी धारा-प्रवाह हिंदी वोलनेवाले सावले रग के उस ब्रह्मचारी को हमने कभी डगमगाते नही देखा। अपने गुरू की तरह वह भी साहसी पर्यटक है। कुछ देर वाद हमारे दोनो साथी उनसे मिलकर लौट आये और वोले, "हम वहा जा सकते है। स्वामीजी सताईस-अट्ठाईस वार गोमुख हो आये हैं। इतना ही नही, उन्नीस-वीस हजार फुट ऊचे उन शिखरो को लाघकर तीन-चार वार वदरीनाथ की यात्रा भी कर चुके हैं। मार्ग कठिन अवश्य है। लेकिन सुयोग्य मार्गदर्शक के लिए कोई भय नही है।"

इतना सवकुछ होने पर भी दल के लोग आश्वस्त नही हो पा रहे थे। मार्तण्डजी, भाभी, शोभालालजी और काकी, इन चारो का तो न जाने का निश्चय था। लखनऊवाली माताजी भी नही जा सकती थी।

माधव हर स्थिति मे जाने को तैयार था। घोरपडे, यशपाल और मैं मध्य-रेखा पर खडे थे। जाने का सकल्प तो था, परतु चारो ओर से भय और आशका के जो मेघ घिरते आ रहे थे तथा प्रकृति का प्रतिक्षण बदलता रूप उन्हे जो बल दे रहा था, उसके कारण कभी-कभी मन डावाडोल हो उठता था। ऐसे समय स्वामी सुदरानद स्वय हम लोगो के डेरे पर आये। देखकर मन आश्वस्त हो गया। श्याम वर्ण, सुदृढ शरीर, स्नेहिल नयन, तरल मुस्कान, निर्भीक निश्छल उस सरल ब्रह्मचारी से सब लोगो ने प्रश्न-पर-प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। दल की नारिया कुछ अधिक भयाकुल थी। स्वय गगोत्री के रहनेवाले हमे डरा रहे थे। यहापर जो पुलिस का दीवान रहता था, उसने भी कहा कि हमे इस समय वहा नही जाना चाहिए। रास्ता बहुत खराब है। हम लोग उसका काम बढाएगे। पचायतनामे की तैयारी करना भी वहा मुश्किल है। उसकी बातो से ऐसा लगता था कि जैसे हममे से कोई-न-कोई अवश्य गिरकर मर जायगा। उसका बाते करने का ढग अच्छा नही लगा। घोरपडे तो बोले तक नही। कुछ और भी व्यक्ति उधर जाने का विचार रखते थे। उनमे से कुछ कृत-सकल्प थे और कुछ आकाश की ओर देख रहे थे।

स्वामीजी ने कहा, "आप जाना चाहते हैं तो जा सकते हैं। यदि मेरे साथ चलने से आप निश्चित निर्णय कर सकते हैं तो मैं चलने को तैयार हू। सवेरे ९ बजे मुझे बुला लीजिये।

कोई परिचय नही। किसी तरह की कोई बाध्यता नही, फिर भी तुरत तैयार हो गये। परिव्राजक ऐसे ही होते हैं। तब हमारा अनिश्चय न जाने कहा तिरोहित हो गया। हमने कहा, "हम अवश्य जायगे।"

स्वामीजी जिस सहज भाव से आये थे, उसी सहज भाव से वापस लौट गये। कह गए, सामान कम-से-कम ले। पहनने के आवश्यक कपडो के अतिरिक्त दो-दो कम्बल ही साथ रखे। तीन दिन लग सकते हैं। उसके लिए चूरमे और खाने की अन्य वस्तुओ का प्रबध कर लें।

बार-बार आश्वस्त करके स्वामीजी चले गए। ४ बज चुके थे। वर्षा रुक गई थी, परतु वे शिखर जो कल तक रीते थे अब हिम-सम्पदा पाकर शुभ्र श्वेत हो उठे। हम लोग यात्रा की तैयारी मे जुट गए। चूरमे का

भार महेन्द्र होटल को सौप दिया। बाजार के लोग अब भी डर पैदा कर रहे थे। लेकिन स्वामीजी ने जिस मार्गदर्शक की व्यवस्था की, उसका नाम था दलीपसिंह। वह एवरेस्ट-विजेता तेनसिंह के साथ ऊचे-ऊचे शिखर पार कर चुका था। मार्ग मे भी उसके शौर्य की कहानी सुन चुके थे। इस-लिए मन आश्वस्त हो रहा। लेकिन बाधाओ का अत अभी नही आया था। सहसा आकाश भयकर रूप से क्रुद्ध हो उठा। इधर की मध्याह्न साधारणतया भीगी रहती हैं। पर आज तो तूफान से लक्षण थे। जब-जब ऐसा होता है, कई-कई दिन तक आकाश नही खुलता। इसलिए जा सकेंगे, ऐसा विश्वास से नही कहा जा सकता था। तभी एक साधु वहा आ गये। उन्होने हमे असमजस मे पडे देखा तो कहा, "आपका गोमुख जाना उचित नही है। पहाड की ढाल पर गिरते हुए मलवे मे से केवल चार अगुल के रास्ते पर से होकर जाना होना है। एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर पैर रखकर आगे बढना बहुत कठिन है। उस समय जिस पत्थर पर पैर रखा जाता है, वह अपनी जगह टिका रहेगा या यात्री समेत गगा मे समाधि लेगा, कोई नही जानता।"

सकट की हम बहुत सुन चुके थे, पर मार्ग मे मिले उस बगाली युवक की मूर्ति बार-बार आखो मे उभर उठती थी और गूजने लगते थे स्वामी सुदरानद के शब्द, "इतना सोचना-विचारना क्या ? चलिये मै साथ चलूगा।"

अभी तक जिन व्यक्तियो के जाने की चर्चा थी, उनमे सब पुरुष ही थे। दल मे सबसे कम आयु की महिला श्रीप्रभा थी। उसने यशपालजी से पूछा, "क्या मैं भी आपके साथ जा सकती हू ?"

उसकी ऐसी इच्छा प्रकट करना ही बडे साहस का काम था। यशपालजी तुरत साथ ले जाने को तैयार हो गये। जो वयोवृद्ध थे, उन्होने रोकने की चेष्टा की, लेकिन यशपालजी ने स्पष्ट कहा, "तुम्हारा मन हो तो जरूर चलो।"

उस रात ८ बजे प्रार्थना की, फिर दूध पीकर सोने के लिए लेट गये। स्थिति तब भी स्पष्ट नही थी। बहुत-कुछ ऋतु पर निर्भर था। साधु किणी की तरह स्वप्न मे भी हमे कोई स्पष्ट या अस्पष्ट आदेश नही मिला। सवेरे

जब पाच बजे आखे खुली तो सबसे पहले दृष्टि आकाश की ओर उठी। वह उसी तरह घिरा हुआ था। मन काप उठा। महिलाए पहले ही शकाकुल थी, अब पुरुष भी सोचने लगे, वर्षा हो गई तो ?.

स्थानीय व्यक्तियो ने कहा, "सकट आने की पूरी सम्भावना है, लेकिन फिर भी कुछ साहसी व्यक्ति जाते ही है, घायल भी हो जाते हैं।"

पुलिस का दीवान आज और भी दृढता से हमे जाने के लिए मना करने लगा। हम सबकी बातें सुनते, आकाश की ओर देखते और मन-ही-मन प्रार्थना करते, "हे सूर्यनारायण, दर्शन दो। क्यो हमारे मार्ग की बाधा बन रहे हो ? इधर कब-कब आना होता है।" पर सूर्यनारायण तो अडिग थे। आठ बज जाने पर भी आकाश नही पिघला। अब क्या होगा ? क्या सचमुच नही जा सकेगे ? तभी देखा कि दूसरे दल के सदस्य भी ऋतु के कारण कुछ शकित हैं। लेकिन उस दल से एक बधु थे श्रीदत्त। क्षीणकाय, अत्यत दुर्बल। कदम रखते पूर्व मे तो पडता पश्चिम मे। लेकिन मानसरोवर हो आये थे। वह बोले, "मैं तो जाऊगा। कुछ भी क्यो न हो, अवश्य जाऊगा।"

और तर्क-वितर्क मे बिना पडे वह चल भी दिये। धीरे-धीरे उनके सभी साथी उनके पीछे रवाना हो गये। हमारे लिए यह एक और चुनौती थी। हमने इसे स्वीकार किया और निश्चय किया कि जायगे। यदि मौसम खराब हो गया तो बीच से लौट आयगे। पुलिस का दीवान मानो हमारे पीछे ही पड गया हो। बोला, "आपने तय ही कर लिया है तो जाइये, लेकिन काम जोखिम का है। हम लोगो की मुसीबत होती है। और कोई मर जाय तो मुझे फिकर नही है, लेकिन आप बडे आदमी है। पचायतनामा भरना पडेगा। अभी पिछले साल धरासू के मार्ग पर दो मारवाडी गायब हो गये थे। अबतक उनके बारे मे जाच की जा रही है, कुछ पता नही लगा।"

फिर वह हमारे मार्गदर्शक दिलीप की ओर मुडा। डाटने लगा, "तुम लोग पैसो के लोभ मे यात्रियो को सकट मे फसा देते हो। अब मैं एक रजिस्टर बनाऊगा और जाने से पहले तुमसे दस्तख़त कराऊगा।

तुम्हें लाइसेंस लेना होगा। मैं तुम्हे ठीक कर दू गा।"

दिलीप कुछ नही बोला, लेकिन हमपर जो प्रतिक्रिया हुई, वह यह थी कि हम तुरन्त चलने को तैयार हो गये। यह पुलिसवाला नवाबजादा आखिर क्या समझता है ? लेकिन अभी एक और बाधा शेप थी। ठीक समय पर हमारे बोझी लालच के शिकार हो गये। अधिक पैसे मागने लगे। हम भी अडिग थे, उन्हे छोड दिया। स्वामीजी तुरन्त स्थानीय बोझी बुला लाये।

और हम चल पडे। ६ जून शुक्रवार का दिन था। ९ बजकर १० मिनट हो चुके थे। विदा की वह बेला, एक साथ भय और उत्साह, आशकाओ और मगल-कामना से भर उठी।

: १६ :

नैलंग-श्रेणी की छाया में

दल मे आठ व्यक्ति थे। सर्वश्री घोरपडे, यशपाल जैन, माधव उपाध्याय, श्रीप्रभा जैन, स्वामी सुदरानद, दिलीपसिंह, बोझी और मैं। शेष व्यक्ति हमारे आने तक वही रुकनेवाले थे। सामान बहुत अधिक नही था। खाने-पीने की कुछ चीजें थी, कबल थे। अधिकाश सामान बोझी ने उठा लिया। कुछ दिलीपसिंह ने लिया। दूरबीन, कैमरे, दवाइया, आदि पूर्वन हम लोगो के झोलो मे थी। जिस समय हम लाठिया सभालकर भागीरथी के किनारे-किनारे आगे बढे तो मेघ गर्जन कर रहे थे। ऐसा जान पडता था मानो प्रकृति हमारी परीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध है। कुछ आगे बढते ही हल्की बू दो ने हमारा स्वागत किया। लेकिन अब तो चलना है, चलना है, रुकने का है नही काम। लगभग आधा मील चलकर हमने शाश्वत हिम पुल पर से भागीरथी को पार किया। इस ओर आकर मार्ग अत्यत भयावह हो उठता है। ऊचे गोलाकार कगार पर एक पैर टिकाने

जितनी एक अस्थायी पगडण्डी बन गई थी, वह भी फिसलनी थी। तन-मन काप उठे। पैर रखते ही ऊपर से पत्थर खिसकने लगते। दोनो हाथो से धरती को पकड-पकडकर किसी तरह हमने उसे पार किया। दो साथियो को तो स्वामीजी मानो उठाकर ले गये। अचरज यह कि वह इस भयानक मार्ग पर ऐसे चलते थे जैसे कोई बालक मा की गोद मे मचलता हो। बोले, "आप लोग आसमान मे बादल देखकर डर रहे थे, लेकिन अब वे ही आपके लिए वरदान बन गये हैं।"

उस समय हम एक गिरे हुए पहाड की ढाल पर चल रहे थे। किसी भी क्षण गगा के गर्भ मे पहुच सकते थे। लेकिन जहा एक ओर यह भयानक मार्ग हमारे साहस को चुनौती दे रहा था, दूसरी ओर प्रकृति का मुक्त वैभव हमे रोमाचित करने लगा था। सामने देवघाट के शिखर थे। भीमकाय शिलाखण्डो के बीच से होकर भागीरथी नीचे की ओर वह रही थी। दाहिने और बायें के हिमशिखर मानो हमारे पथ को आलोकित कर रहे थे। सहसा हम लक्ष्मी-वन जा निकले। इसे गगा-बागीचा भी कहते है। इसकी शोभा देखते ही बनती है। नाना प्रकार के जामुन, पापामोल, आदि सुस्वादु फलो के वृक्षो ने, सुगधित औषधियो के द्रुम-दलो ने, नाना रूपधारणी पुष्पलताओ ने, उसे वनकन्या की तरह सवारा था। स्वामीजी उसकी शोभा का वर्णन करते न थकते थे। बोले, "रूप का निखार देखना हो तो वर्षा के तुरत बाद आइये। अगो पर पुष्पो की छटा, मुख पर फलो का उन्माद, मनुष्य कामनातीत हो जाता है।"

कहा तो मृत्यु-रूपी मार्ग, कहा ऋद्धि-सिद्धि जैसा यह वैभव। मन कांपता भी था, विभोर भी होता था। उग्र तपस्या के बाद ही तो इन्द्रपद मिलता है। इसी मार्गपर बहुत दूर तक गगा-तुलसी (छावर) और अजवायन की महक से महकते रहे। सहसा सामने एक गुफा दिखाई दी। स्वामीजी बोले, "यह अघमर्दनी गुफा है। इसका एक नाम गर्भयोनि भी है। पहले इसको पार करना बहुत कठिन था। भागीरथी का जल भर जाता था। लेकिन अब चरवाहो ने पेड का एक मोटा तना बीच मे डाल दिया है।"

दो भयकर सकीर्ण चट्टानो के बीच का यह मार्ग बडा कसाले का था। किसी तरह ऊपर चढकर हमने इसे पार किया। फिर कभी चट्टानो को लाघते, कभी गुफाओ के ऊपर होते, कभी वृक्षो के नीचे से निकलते और कभी जल में से होकर आगे बढते चले गये। दाहिनी ओर देव-घाट के हिम-शिखर पास आते जा रहे थे। बाई ओर बडे-बडे शिला-खण्डो को रससिक्त करती भागीरथी तीव्र वेग से समतल भूमि की खोज मे भागी जा रही थी। तभी स्वामीजी ने सूचित किया, "देखो, देवघाट से आनेवाली यह मनोहारी देवगगा भागीरथी को आत्म-समर्पण कर रही है। इस पवित्र सगम को देखो।"

वहा शाश्वत हिम का साम्राज्य था। देवघाट का वास्तविक नाम देवगाट या देवगाड है। गढवाली भाषा मे नदी को गाड भी कहते हैं। लगभग बीस वर्ष पूर्व देवघाट शिखर का कुछ भाग टूट गया था। उसका मलवा (वराड) देवगगा के मार्ग से वहकर भागीरथी मे आ गया था। तव जल के अवरोध और फिर तीव्र प्रवाह से धराली तक प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया था। गगोत्री के घाट-हाट आदि सब वह गये थे। किस क्षण यह मायावती सुदरी प्रकृति रुद्र-रूप धारण कर लेगी, यह कोई नही जानता।

इस मार्ग पर हमने एक-एक करके ऐसे आठ बर्फ के पुल पार किये। नदी शब्द का उच्चारण करते ही उसका जो रूप हमारे मस्तिष्क मे उभ-रता था वैसी जल से भरी नदिया यहा नही दिखाई देती। वर्षा-ऋतु मे उफनकर कभी-कभी वे रुद्र-रूप धारण कर लेती है, लेकिन साधारणतया उनका रूप एक नाले जैसा होता है। शिखर पर से आने के कारण प्रवाह अवश्य बडा तेज होता है, और समूचा पाट पत्थरो से भरा रहता है। इतना ही नही, रात के समय उनपर बर्फ जम जाता है और कही-कही तो वह बर्फ नितात कच्चा होता है। एक ऐसे ही स्थान पर घोर-पडे का पैर घुटने तक बर्फ मे धस गया, परतु दूसरा पैर दृढता से ऊपर जमा रहा। दुर्घटना होते-होते बच गई। हम लोग सावधानी से एक-एक पत्थर की जाच करके फिर आगे बढते थे। कभी-कभी अगला पैर उठाने पर पिछले पैर के नीचेवाला पत्थर स्थान छोड देता था। तब रस्सी

पर दौडनेवाले नट की तरह शरीर को साध लेना पडता था। असफल भी हुए, चोटें भी खाईं, पर प्राण-रक्षा निरतर होती रही। शीत इतना था कि बार-बार मार्ग मे आग जलाकर शरीर को चेतन करना पडता था।

इस प्राकृतिक प्रदेश मे जडी-बूटियो की बहुलता है। भोज-वृक्षो का तो जैसे यहा साम्राज्य है। वैसे चीड भी हैं, वन-पीपल भी दिखाई देता है, पर भोज-वृक्षो का वैभव निराला है। श्वेत-पीत आभावाले इस वृक्ष के उपयोग भी अनेक हैं। इसकी छाल कागज के समान है। तपोवन-निवासी प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि इन्ही भोज-पत्रो पर ज्ञान को स्थायित्व प्रदान करते थे। ये ही भोज-पत्र उनका तन भी ढाकते थे। आज इस प्रदेश मे भोजन के लिए पत्तलो का काम देते है। शीघ्र जलनेवाली इसकी लकडी शरीर को गर्मी पहुचाती है। इसके लबे-लबे तने धारा के दो किनारो को मिलानेवाले अस्थायी सेतु बन जाते है। इसकी छाल को काठ की छत के नीचे लगाने पर पानी नही झरता।

थोडा और आगे बढे तो स्वामीजी बोले, "यह लीजिए, अब हम बागलावास आ गये।"

बागला एक प्रकार का वृक्ष होता है। उस स्थान पर इन वृक्षो का बाहुल्य है। इसी कारण सुविधा के लिए उस प्रदेश का यह नाम पड गया है बागलावास। ईंधन की कमी नही है। इसी कारण भेड-बकरियो को चरानेवाले गाही लोग यही डेरा डाले रहते हैं। आस-पास चरागाह भी खूब हैं। आज हमारा लक्ष्य चीडवासा था। कभी उस वन मे चीड के वृक्षो का बाहुल्य रहा होगा। आज तो बाहुल्य भोज-वृक्षो का है। और दूर उनके पीछे खडे है देवघाट, भृगुपथ और शिवलिंग के शाश्वत हिम-शिखर—क्षण-क्षण मे रजत-स्वर्ण-प्लातिनम का रूप लेनेवाले। पर उस दिन तो पूरा आकाश सुरमई घटाओ से भरा हुआ था और वे शिखर ऐसे खडे थे जैसे श्वेत केशधारी अन्तर्मुखी मुनिगण ब्रह्म की आराधना मे लीन हो। इसके विपरीत उस पार भारत की उत्तरी सीमा के चिर-प्रहरी हिमाचल की वज्र वक्षवाली उत्तुग पर नितात नग्न नैलग-श्रेणी को देखकर मन आतकित भी होता था और गर्वित भी। महसा महाकवि

इकवाल की ये पक्तिया याद हो आई, जैसे यही वैठकर कवि ने उनकी रचना की हो।

परबत वो सबसे ऊचा हमसाया आसमा का।
वो सतरी हमारा वो पासवा हमारा ॥

क्षितिज के उस पार से जैसे एक और कवि गा उठा हो

यह देखो योगीश्वर गिरिवर अटल हिमाचल तु ग शिखर।
यह देखो उसकी गोदी मे गंग खेलती बिखर-बिखर ॥

तभी सहसा मुझे 'दिनकर' की ये पक्तिया याद आ गई

मेरे नगपति मेरे विशाल
साकार दिव्य गौरव विराट
मेरी जननी के दिव्य भाल।

स्वामीजी बोले, "उस ओर उस पर्वत को देखो।"

दृष्टि उठी। देखा, उस पर्वत पर हिम-ही-हिम है। स्वामीजी वोले, "उसके नीचे रत्नो की खान है।"

मैंने पूछा, "कोई उनतक पहुच सका है ?"

"नही, अभी तो नही। एक बार एक स्विस दल यहा आया था। घूमते-घूमते उसके जूते की कील सोने की हो गई है। वहुत खोजा, वहुत खोजा, पर वह पारस पत्थर न मिला।"

मैं बोला, "स्वामीजी, क्या सचमुच पारस पत्थर होता है ?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "सुनता हू, होता तो है। लेकिन अभी तक देखा नही।"

मन मे सहसा उठा—काश, हम उसे देख पाय और फिर सोना-ही-सोना हमारे पास हो जाय। लेकिन तभी उस लोभी राजा की कहानी याद आ गई, जिसने देवदूत से वरदान मागा था कि जिस वस्तु को वह स्पर्श करे वह सोने की हो जाय। वरदान उसे मिला। सोना भी मिला, लेकिन उसने उसका जो मूल्य चुकाया, वही उसके लिए अभिशाप वन गया। उसका भोजन, उसके वस्त्र, पीने का पानी, यहातक कि उसकी अपनी पुत्री उसके स्पर्श से सब सोने के हो गये। तब त्रस्त होकर वह पुकार उठा था, "हे देवदूत, अपना वरदान वापस ले लो।"

मन-ही-मन मैंने कहा, "हे देवदूत, ऐसा वरदान कभी किसीको मत देना।"

तभी आकाश के समूचे विस्तार पर आधिपत्य जमाए काले कजरारे मेघ जैसे धरती से मिलने को आतुर हो उठे। नन्ही-नन्ही बूदे पडने लगी। लेकिन अब इतना आगे बढ आये थे कि लौटने की बात सोच भी नही सकते थे। नयन चीडवासा की धर्मशाला को देखने को व्यग्र हो रहे थे। स्वामीजी बार-बार कहते, "वही तो है उस मोड के उस पार। वह जो चीड के वृक्षो की पक्ति दिखाई दे रही है।"

लेकिन वह पक्ति तो मृग-मरीचिका की तरह पास आती ही नही थी। पत्थरो पर चलते-चलते पैर दुखने लगे थे, टागे भर आई थी। भागीरथी के तट पर नाना रूप पत्थरो के अतिरिक्त और कुछ भी तो नही था। शिखर पर कही-कही दस-पाच कदम का समतल मिल जाता था तो प्राण जैसे लौटे आते थे। लेकिन कई स्थानो पर इतना तेज ढाल था कि पैर रखते ही शरीर मे सिहरन कौंध-कौंध जाती थी। जरा झिझके कि नीचे भागीरथी की वेगवती धारा मे प्राणो का विसर्जन हो जाता।

बगाली दल हमसे कुछ पहले चल दिया था। लेकिन इस भयानक मार्ग पर निरन्तर दूरी बनाये रखना असभव था। दूरबीन के द्वारा हमने उनको ढूढ लिया और फिर शीघ्र उनसे जा मिले। तब साथ-साथ कभी प्राणो को कपानेवाले तलवार की धार जैसे रपटते कगार पर चलते, कभी लुढकते-फिसलते पत्थरो पर नृत्याभिनय करते, कभी गगा के तटवर्ती जल मे उतरते, चीडवासा की धर्मशाला के पास पहुच गए। ऐसा लगता था मानो मार्ग द्रौपदी के चीर की तरह कभी समाप्त ही नही होगा। लेकिन जहा आरम्भ है, वहा अन्त अनिवार्य है। नौ बजकर दस मिनट पर गगोत्री से रवाना हुए थे। दो बजकर दस मिनट पर चीड-वासा पहुच गये। सामने धर्मशाला थी। चिर एकाकी उस समतल भूमि मे वह धर्मशाला ऐसी लगी, मानो युग-युग से तप मे रत कोई तपस्विनी हो। देखकर रोमाच हो आया। इस नितात निर्जन भयकर प्रदेश मे समुद्र-तल से ११८३० फुट से ऊपर, उत्तुग शिखरो से घिरी, भोजपत्रो के सान्निध्य मे भागीरथी के बाये तट पर वह धूलभरी उपेक्षित, अरूप,

काली दीवारोवाली धर्मशाला नदन-भवन से बढकर लग रही थी—, मृत्यु के आगन मे जीवन के वरदहस्त की छाया जैसी। बाईं ओर थी भागीरथी की वेगवती जलधारा, जिसकी प्रचड ध्वनि वायुमडल मे गुजित हो रही थी, और दाईं ओर के पर्वतो पर थे चीड के हरे-भरे वृक्ष, जो उस वनश्री की शोभा थे। जगह-जगह बिखरे पत्ते, अधजली लकडिया, राख के ढेर। उनपर बिस्तर डालकर आग की व्यवस्था मे लगे। वायु का वेग तीव्र गति से बढ रहा था। लेकिन तभी जैसे प्रकृति की परीक्षा पूरी हो गई। आकाश निर्मल हो आया। सूर्य ने विहँस कर आवरण उतार दिया। किरणें हँस पडी और वह स्वर्णिम हसी हिम-शिखरो पर बिखर गई। वे उस परस से पुलककर ऐसे मुस्कराये जैसे प्रेमी प्रिया को पाकर मुस्करा उठता है। सभी साथी किलकारी मारते हुए बाहर आ गये। एक बोले, "कैसी माया है, जबतक चले, मेघ छाये रहे।"

दूसरे ने कहा, " कितना अच्छा हुआ, उस भयकर मार्ग पर पहाडी धूप खिली रहती तो क्या आज यहा पहुच पाते ?"

सच ! क्या प्रकृति जान-बूझ कर हमपर कृपालु ? रही क्या कल हम यहा से चार मील दूर अपने लक्ष्य गोमुख सानद पहुच सकेंगे ?

लेकिन इतना सोचने का अवसर कहा था ? साथियो को भूख भी लग आई थी। तुरन्त चूरमा बटने लगा। चाय बन रही थी। इस प्रकार खाते-पीते कभी भोज-पत्र उतारते, कभी घूमने लगते, कभी बैठकर डायरी लिखते, पत्र लिखते, फिर आग सेंकते। फिर सहसा बाहर चबूतरे पर आकर हँस हँसकर उमग-उमगकर गर्व से भर-भरकर आस-पास की प्रकृति को देखने लगते। सोचने लगते, भोजवृक्ष की महासुकुमार त्वचा भीषण प्रकृति को रुद्रता कैसे सह लेती है, जैसे झरना पत्थर की रगड को।

भागीरथी के उस पार के शिखर नक्षत्रो से मत्रणा करने के लिए मानो एक दूसरे से होड लेते हुए ऊपर, और ऊपर, उठते चले जा रहे थे। उसी उत्तुग नैलग श्रेणी मे सहसा एक गुफा-सी दिखाई दी। उसके द्वार पर हिम का शिवलिंग बना हुआ था। आस-पास हिम तो क्या, झरना तक

नही, दूर्वा तक नही, फिर भी शिखर से बूद-बूद पानी टपकता रहता है, जमता रहता है। जमकर हिम की एक आकृति-सी बन गई है, जो वर्ष भर बनी रहती है। वायु के थपेडे उसके ऊपरी भाग को छीलते रहते है। ऊपर से बर्फ पिघलकर नीचे आजाती है। नीचे का भाग कुछ मोटा हो जाता है। ऋतु के अनुसार भी उसमे परिवर्तन होता है। शीतकाल मे इतनी बर्फ जमती है कि वह स्तभ-सा दिखाई देता है। उसीको यहा के निवासी कहते है शिवलिग। अमरनाथ की गुफा मे भी इसी प्रकार का शिवलिग बनता रहता है। दूर से देखने पर ऐसा लगा था, जैसे कोई मनुष्य घुटने मोडकर आराम कर रहा हो।

धीरे-धीरे बढते हुए अन्धकार की काली छाया हिमशिखरो पर उतरने लगी, जैसे सबकुछ कुहरे मे लिपटता जा रहा हो। वायु और भी तीव्र हो उठी। गोमुख के उस ओर २२,४६५ फुट ऊचा हिमशिखर भागीरथ शिखर के नाम से प्रसिद्ध है। पुरातन पुरुष की भाति वह निरन्तर गभीर भाव से नीचे की सृष्टि को देखता रहता है। भोजवृक्षो के वन के ऊपर २२२१८ फुट ऊचा भृगुपथ है। हिमशिखरो की आकृति बहुधा शिवलिग की तरह हो जाती है। इसीलिए हिमालय मे कैलास और शिवलिगो का प्राचुर्य है। इन शिखरो के आधार पर ही आर्य मनीषियो ने मन्दिरो के शिखरो की कल्पना की थी। अध्यात्म, दर्शन और अर्चना, सब यही तो पनपे है। काका कालेलकर के शब्दो मे—"हिमालय अगर किसी चीज की दीक्षा देता है तो वह है भूमा की और मनुष्य गद्गद् होकर बोल उठता है—"यो वे भूमा तद् अमृतम् यदल्प ते मर्त्य।"

"मनस्तु महदस्तु च" अपने मन को, चित्त को, हृदय को, जितना हो सके बडा करो, अनत की भाषा मे सोचो..."

हमारे जितने भी प्रयत्न हो, सार्वभौम हो, सस्कृति भूमा है, इतिहास भूमा है, यह सत्य हिमालय के इन शिखरो पर अकित है। यही सोच-सोचकर मन तरल पावनता से भरने लगा। दृष्टि फिर प्रकृति की ओर मुडी। अस्ताचलगामी सूर्य मानो शैलराज की सन्ध्या-आरती उतार रहा है। आरती के उस मधुर मद प्रकाश मे ये शिखर नाना रूप धारण करने लगे। रजत-स्वर्ण-प्लातिनम् नाना वर्ण नेत्रो मे चमक उठे। परतु अत

मे अधकार की जय हुई और श्यामवर्ण के आवरण मे सारी प्रकृति मौन हो रही। कई क्षण उत्तुग हिमशिखर मानो नक्षत्र बनकर प्रकाश का जयघोष करते रहे, मानो अधकार को प्रकाश की राह दिखाते हो। परतु फिर वे भी अस्तित्वहीन हो रहे। वह शाति और वह एकात, घनघोर अनहद ध्वनि के सिवा वहा कोई शब्द न था।

१७ :

वह रात, वह ठिठुरता अंधकार

अधकार के साथ ही शीत ने भी सवकुछ को ग्रस लिया। वाहर खडे रहना असभव हो गया। धर्मशाला मे चार वडे कमरे हैं, चार कोठरिया और दो वरामदे है। हिम और हिंसक पशुओ के साम्राज्य मे वे कमरे कैसे हो सकते हैं, इसकी कल्पना सहज सभव है। लेकिन इस समय वे ही हमारे लिए राजभवन हो गये। धूलभरे फर्श पर विखरे भोजपत्र, सूखी टहनिया, अधजली लकडिया, राख के ढेर, उपेक्षित काली दीवारें, कोने मे आग जल रही है और उससे उठता हुआ धुआ कमरे मे उमड-घुमड रहा है। सास लेना कठिन हो गया है। निमिषमात्र मे लगा, जैसे चीख उठूगा, "किवाड खोल दो, नही तो मैं मर जाऊगा।" लेकिन वाहर तो शीत का साम्राज्य है। सबकुछ कुहर मे डूवा हुआ। प्राणो को शून्य करनेवाली झझा चल रही है। भीतर धुआ, वाहर झझा, आज का मनुष्य क्या ऐसा ही नही है ?

मैं किसी विचार मे डूव जाता हू। न-न, न-न, आज विचारो से मुक्ति मिले, मुझे रात की व्यवस्था मे मदद देनी चाहिए। देखता हू, भोजपत्रो और टहनियो पर कवल विछा दिये गए है। आग खूव तेज हो रही है और दिलीप विना दूध की कालीमिर्चवाली गर्म-गर्म चाय ले आता है। अहा, जी गये। पीकर शरीर मे गर्मी भर आती है। लेकिन फिर भी हम

आग को घेरकर बैठ जाते है। पैरो को सेंकते है और बीच-बीच मे उत्तेजित हो उठते हैं। ऊचाई पर आकर क्रोध बढ जाता है। आदमी झुझलाने लगता है। कुछ क्षण के लिए हम भी झुझलाते हैं। छोटी-छोटी बातें बवण्डर बन जाती हैं। लेकिन शरीर तो ऊष्मा चाहता है, इसलिए थोडी देर बाहर घूमकर फिर आग के पास जाने को विवश हो जाते है। धुए के कारण आखो से निरतर कडवा पानी झर रहा है।

सोचने लगता हू सहसा धर्मशाला की बात। चीडवासा इसका नाम है। मार्ग मे चीड के अनेक वृक्ष हैं, अतिम वृक्ष यहीपर है। अर्थात् चीडवासा क्षेत्र की यह सीमा है। समुद्र तल से ११८३० हजार फुट ऊपर।[1] पहले यात्री लोग तबू लेकर आते थे। लेकिन जिस मार्ग पर स्वय को ले चलना कठिन है, वहा तबुओ को लाना और भी कठिन रहा होगा। सपन्न और साहसी लोग ही कभी बोझियो को लेकर यहा आते रहे होगे। इस धर्मशाला के कारण आज और भी अनेक व्यक्ति इधर आने का साहस कर सकते है।

यात्रियो को सुविधा हो, इसलिए कुछ बर्तन भी यहा सुरक्षित है। कुछ साधु भी कभी-कभी यहा वर्ष-भर रहते है। एक कमरे मे स्वामी तत्वबोधानदजी रह रहे थे। जब कण-कण भूमि पर हिम का साम्राज्य छा जाता है, शिव ताण्डव नृत्य करने लगते है तब भी वह वही रहते हैं। उस अधकार मे उनकी झलक-भर ही देख पाया।

हम लोग जब हर प्रकार से गर्मी प्राप्त करने की चेष्टा मे लगे है तब स्वामी सुदरानद पास की अधेरी कोठरी मे अकेले भोजन की व्यवस्था मे व्यस्त हैं। श्रीप्रभा ने बहुत आग्रह किया। आग्रह की वह अधिकारिणी थीं, लेकिन स्वामीजी नही माने। हम लोग हठ करके आलू काटने बैठ गये। यही हमारी विजय है। दिलीप आटा गूथता है और स्वामीजी तन्मय होकर चूल्हे के पास बैठ जाते हैं। न उनको धुआ परेशान करता है, न अधकार। मोमबत्ती जलाकर हम उस अधकार को प्रकाशित करने

---

१ इस धर्मशाला का निर्माण मुरादाबाद के ठाकुरद्वारवाले सेठ रघुनंदनदास ने कराया था।

की कोशिश करते हैं और उसी टिमटिमाते प्रकाश मे आलू के गर्म-गर्म साग की सोंधी-सोंधी गध हमे उत्साह से भर देती है। हम लोग फिर बातो मे लग जाते है। कुछ क्षण बाद स्वामीजी किवाड खोलकर कहते हैं, "आ जाइये, भोजन तैयार है।"

कैसा स्वादिष्ट था यह भोजन। उस नितात निर्जन हिम और झझा के प्रदेश मे रसेदार गर्म-गर्म साग, गर्म-गर्म रोटिया, वह आनद आया कि शायद अमृत पीने मे भी न आता हो। उसपर भी स्वामीजी का निश्छल स्नेह-पूरित आग्रह, मा का स्नेह भी जैसे फीका पड गया हो। सबसे अत मे उन्होने माधव के साथ बैठकर खाया। माधव सबसे छोटा जो है। स्नेह का सबसे अधिक अधिकारी यही है। स्वामीजी नैष्ठिक ब्रह्मचारी और हम नागरिक गृहस्थ। हमने सन्यासी को प्रणाम करना और उसकी सेवा करना ही सीखा था। लेकिन आज उसकी सेवा लेकर जैसे हम लज्जित हो उठे। पर साहचर्य और स्नेह ने उस ग्लानि को जैसे धो दिया। प्रकृति के प्रागण मे न कोई बडा है, न छोटा।

बाहर सबकुछ अधेरे मे डूब गया था। अधेरा गाढी स्याही उडेलता-प्रत्यक्ष ही आ गया है मेरे पास। झझा जैसे हमको उडा ले जायगी। उस निस्तब्ध अधकार मे केवल गगा का कलकल-छलछल शब्द ही हमे जीवन का आभास दे रहा था। न थे ब्रह्म की आराधना मे लिप्त हिम-शिखर, न दीप्त नक्षत्र-मण्डल और न पवित्र देवदार के वन। बस था अनत अधकार। इच्छा जागी कि इस भयानकता को और समीप से देखा जाय। लेकिन जहा दिन मे आवागमन निरापद नही है, वहा तो रात को घूमना सभव कैसे हो सकता है। वन्य पशु रात मे ही बाहर आते हैं। तभी तो वैदिक ऋषि ने गाया था

> **हम से दूर रखो युगल भेडियों को**
> **देवि रात्रि, रक्षा करो लुटेरे से**
> **सुरक्षित ले चलो हमे उदासी के पार।**[1]

लुटेरे भालू इधर बहुत हैं। उनकी अनेक रोमातिक कहानिया आज

---

१ रात्रि की ऋचा

हम दिन-भर सुनते रहे थे। वह नारी को उठाकर ले जाते हैं। तलवे चाटकर उनको चलने के अयोग्य बना देते हैं, इत्यादि-इत्यादि।

फिर अदर आ गए और अच्छी तरह किवाड भी बंद कर लिये। धुआ दम घोटने लगा। लेकिन सहसा कानो मे सगीत की ध्वनि फिर गूंज उठी। सतीशचद्र को गाने का बहुत शौक था और ऐसे वातावरण मे सगीत प्राणो का सबल बन जाता है। वह ध्वनि हमे जैसे ममोहिनी शक्ति से भरने लगी और धीरे-धीरे आंखे बोझिल हो उठी। इस छोटे-से कमरे मे, जिसके एक कोने मे अग्नि प्रज्वलित हो रही थी और धुआ पूरी शक्ति के साथ उमड-घुमड रहा था, हम पाचो प्राणी पूरे कपडे पहने, कबलो मे लिपटे, एक-दूसरे से सटे पडे थे। सहसा घोरपडे की नाक बज उठी, मानो यह कह रहे हो, कडवा धुआ हो या भीषण झझा, नशीली नीद की एक लोरी प्राणो को स्वप्नलोक मे पहुचाने के लिए काफी है।

लेकिन मैं क्या करू, नीद की परिया मेरी आखो मे झाकती ही नही। एक के बाद एक चित्र उभरते हैं। धुधले तीखे कुहर मे लिपटे, धूप से उजले, रेखाए कही उलझकर, कही गहरी होकर, किसी अज्ञात अतर को ऊपर खीच लाती हैं। कभी मर्म को छू देते है, कभी प्राणो को सहला देते हैं। सहसा मैं उठ बैठा। धीरे-धीरे शब्दहीन साथियो को बचाता हुआ खिडकी के पास जा पहुचा और थोडा-सा उसे खोल दिया। निमिषमात्र मे बर्फीली वायु का एक तीव्र झोका मुझे झकझोरता हुआ वहा बिखर गया और धुआ तेजी से बाहर की ओर भागा। टिमटिमाती हुई मोमबत्ती की लौ अतिम बार फडफडाई। कई क्षण बाहर झाकता खडा रहा। न कोई आकार, न रग। है केवल अभेद्य अधकार। सुन पाया केवल उसको चीरकर उठ रहा व्याकुल विकल भागीरथी का शब्दनाद। लेकिन इस अभेद्य को भेदकर कुछ आकार नयनो के आकाश पर उभर रहे हैं—यक्ष, किन्नर, उनकी सगीतमयी प्रेमिकाएं और सिद्ध। सहसा सोचने लगा कि इन निर्जन प्रदेशो मे सहसा सुमधुर सगीत सुनाई देता है। कहते हैं, गधर्व और किन्नर गाते हैं। लेकिन क्या यह सच है ? गंधर्व और किन्नर जातिया अवश्य हैं और इन्ही प्रदेशो मे रहती थी। लेकिन आज वे

कहा हैं। आज तो प्रकृति ही सगीत अलापती है। निरतर बहनेवाली वायु जब वेणु-वन के वृक्षो से टकराती है तब ऐसा लगता है जैसे किसी नटनागर ने बासुरी बजाई हो। दूर चरवाहो के पशुओ के गलो मे लटकती हुई घटिया भी जब-तब बज उठती हैं तो वायु का स्पर्श पाकर उनका स्वर नाना वाद्ययत्रो का सगीत बन जाता है। हिम की चादर के नीचे से उठता हुआ भागीरथी का स्वर भी तो सुमधुर सगीत मे बदल जाता है। रघुवश काव्य मे कवि कालिदास ने रघु की हिमालय-यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा है

भुर्जेषु मरमरीभूता कीचक ध्वनि हेतवः।
गगाशीकरिणो मार्ग मरुतस्त सिषे विरे ॥

अर्थात्—वहा भोजपत्रों मे मरमर करता हुआ वेणुओ के रध्र मे प्रवेश करके बासुरी-सी बजाता हुआ गगाजी के सीकरो का स्पर्श पाकर शीतल हुआ वायु रघु की सेवा कर रहा था।

प्रकृति का यही चमत्कार कवि की भाषा मे मनुष्य को नाना कल्प-नाए करने के लिए प्रोत्साहित करता रहता है। जिस प्रकार आकाश-मण्डल मे गधर्व नगर का प्रतिबिंब दिखाई देता है, उसी प्रकार हमारे कल्पनाजगत मे गधर्व और किन्नर साकार हो उठते हैं।

दो ही क्षण मे इतना कुछ सोच गया। अधिक देर तक खडे रहना असभव था। विवश, खिडकी बद करके फिर आ लेटा। स्वामी सुदरा-नदजी मेरे पास ही लेटे थे। उन्हे भी नीद नही आ रही थी। अपने जीवन की कहानी सुनाने लगे। आध्र प्रदेशवासी वह नवयुवक अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था। पाच बहनें थी, लेकिन सबके मोह से मुक्ति पाकर वह ज्ञान की खोज मे भटकता रहा। पद्रह वर्ष की आयु थी। बनारस, हरिद्वार, कहा-कहा नही गया। एक बार टिकट कलैक्टर ने पकड लिया। गिरने के कारण पैर मे चोट आ गई। चार महीने मुगलसराय अस्पताल मे रहना पडा। वहा से मुक्ति पाकर हरिद्वार पहुचे और गाजा पीनेवाले एक साधु के पास रहे। धूनी के लिए चार मील से लकडी लानी पडती थी, न लाते तो भोजन नही मिलता था। अवसर पाकर एक दिन भाग निकले। कई दिन तक कच्चा आटा फाकने के कारण पेचिश हो गई।

फिर अस्पताल मे जाना पडा। वहा से मुक्ति पाकर गगोत्री पहुचे। यही स्वामी तपोवन महाराज से भेट हुई। तब मौन व्रत ले रखा था। तपोवन महाराज ने कहा, "तुम्हे ज्ञान कहा है, जो मौन लोगे। छोडो इसे।" जैसे उन्हें मजिल मिल गई हो। यही रहकर नौ वर्ष तक विद्याध्ययन करते रहे।

"मुझे जीवन से भागने मे विश्वास नही है। आनद की खोज मे ससार मे ही रहना चाहता हू।" फिर इस सरल, निष्ठावान युवक साधु की कहानी सुनकर तरल हो आया। जिस समय वह तपोवन महाराज के अतकाल के सस्मरण सुना रहे थे तब उस घोर अधकार में भी मैं देख सका कि उनके नयन भर आये हैं और गला रु ध गया है। सोचने लगा, "साधु को भी इतना मोह सताता है!"

सहसा स्वामीजी ने कहा, "विष्णुजी, क्या रूसवाले सचमुच धर्म को नही मानते ? क्या वहा मंदिर, मस्जिद नही हैं ? स्त्री-पुरुष मुक्त भाव से मिलते है ? क्या इससे दुराचार नही फैलता ?"

बहुत देर तक मैं इस सरल मन साधु से रूस और साम्यवाद की चर्चा करता रहा। उन्हे इस सबध मे बहुत-सी गलतफहमिया थी, लेकिन जिज्ञासा का अत भी नही था। कही कोई आक्षेप नही था, आग्रह नही, केवल जानने की अदम्य लालसा थी।

दो कबल ऊपर, दो कबल नीचे, सभी वस्त्र पहने, बाते करते-करते हम दोनो को न जाने कब नीद आ गई, कुछ पता नही लगा। वस्तुत. वह नीद नही थी, नीद का आभास मात्र था। कुछ क्षण ही सोया हूगा। शेष समय तो उस ठिठुरती रात को बीतते ही देखता रहा।

१८

"मैं यहीं मरना चाहता हूं"

जिस समय आखें खोलकर देखा, तो घडी मे ४ बजकर २५ मिनट हो चुके थे। तुरत उठे और उस ठिठुरते कुहर मे बाहर निकल गये। तैयार जो होना था। जबतक लौटे, दिलीप दुग्धहीन काली मिर्च-वाली चाय तैयार कर चुका था। पीकर जैसे स्फूर्ति भर उठी। सामान पैक किया और ५ बजकर ५० मिनट पर अतिम लक्ष्य की ओर चल पडे। आकाश स्वच्छ था।

उषा ने मुक्त किये हैं अधकार के द्वार
किरण बखेरता आलोक उसका
प्रकट हो गया है सामने हमारे
वह फैलता है और दूर भगा देता है,
तमसाकार दैत्य को।

शीत इतना उग्र नही था। मार्ग वही—वक्र, सकरा, आकाश-पाताल-गामी और पथरीला, पर कल से अपेक्षाकृत सरल। वही हृदय, वही शाश्वत हिमशिखर, वही नाना पुष्प और औषधियो के द्रुम-दल, हिम-सरिताए, पर देखते मन अघाता नही।

सहसा स्वामीजी ने पुकारा, "वह उस पार पर्वत को देखो।"

दृष्टि उधर ही उठी। कुछ पशु दिखाई दिये। स्वामीजी बोले, "ये वरड हैं।"

मैंने दूरबीन से देखा। लगभग तीस-चालीस होगे। शुद्ध नाम है भरल। हिरण की तरह की जगली भेडें। निश्चिंत होकर चर रहे थे। कुछ बैठे भी थे। सीटी की आवाज सुनकर कुछ हमारी दिशा मे देखने लगे। दूरी इतनी थी कि देखने के अतिरिक्त और कुछ कर नही सकते थे। दूर तक देखते ही चले गए। स्वामीजी बताते रहे कि इनका चमडा बहुत मुलायम होता है। पहले अग्रेज लोग इनका शिकार करते थे, अब कोई नही करता। इस कारण वे निर्भय हो गये हैं।
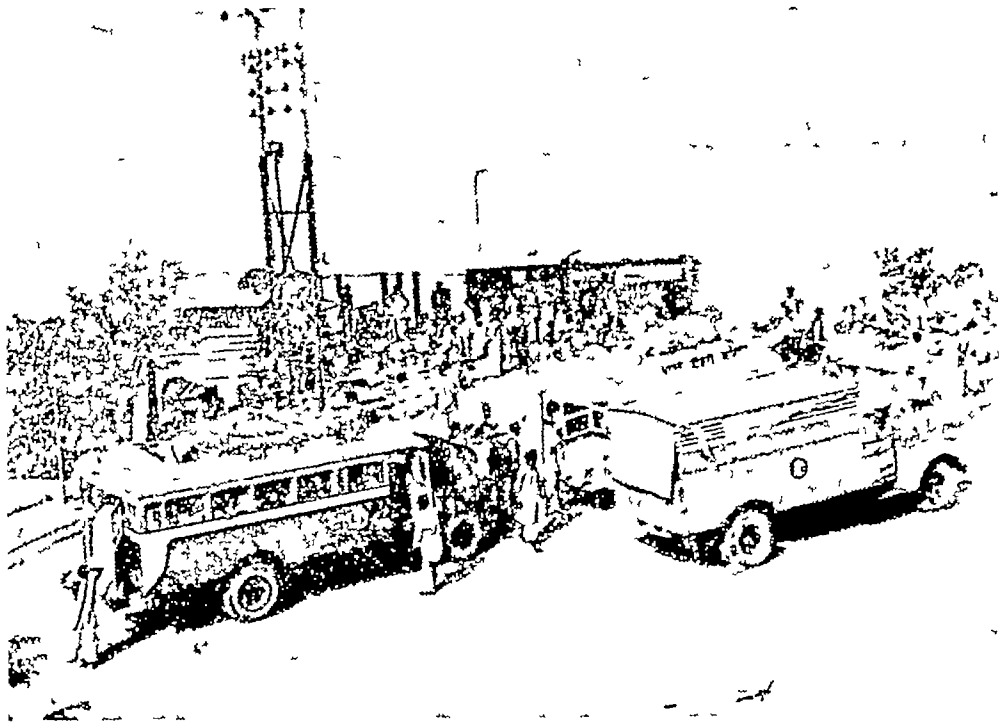
ऋषिकेश से रवाना होकर नरेन्द्रनगर मे थोडी देर रुके

डुडालगाव से पैदल यात्रा आरभ हुई

जमनोत्री पट्ठु

जमना का उद्गम
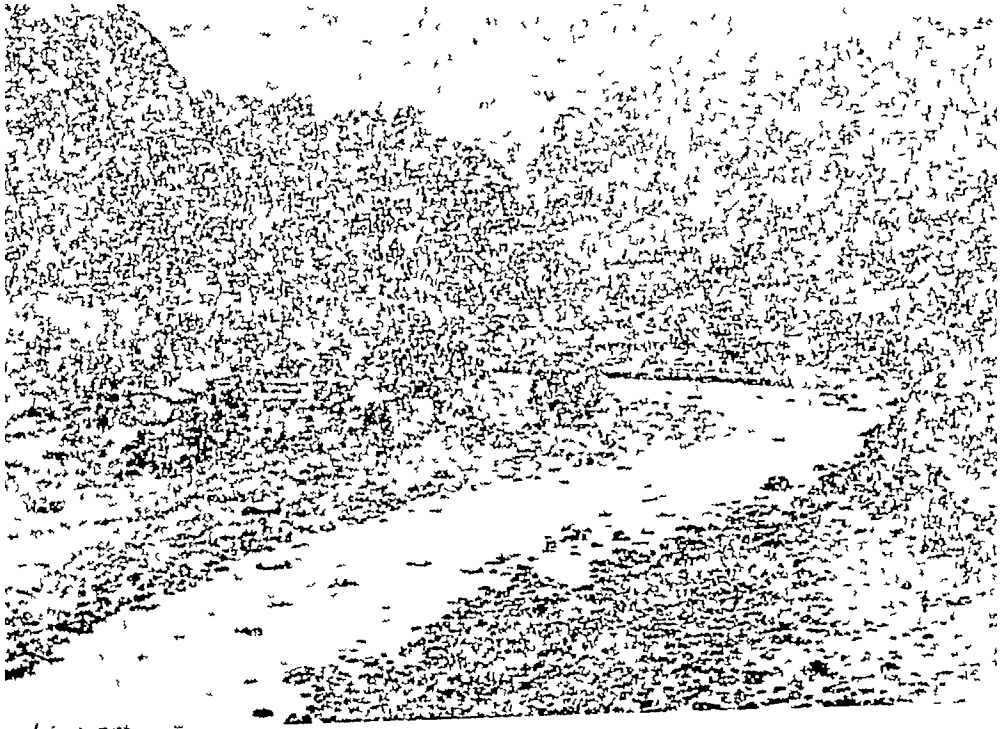
देवभूमि उत्तरकाशी
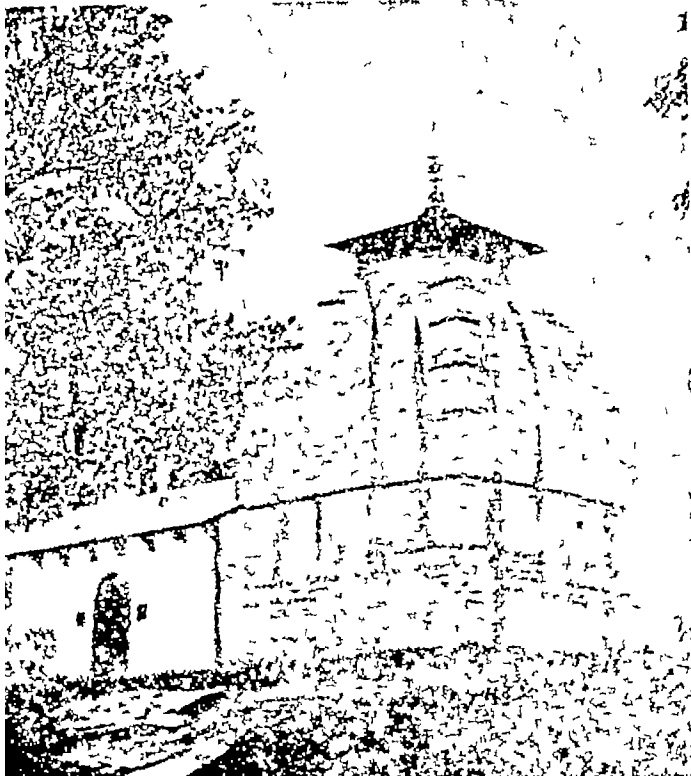
उत्तरकाशी का
सुविख्यात
विश्वनाथ मंदिर

उत्तरकाशी मे हमारी टोली

गगनानी का तप्त

हरसिल का
एक मनोहारी
दृश्य

जागला चट्टी के पास
भागीरथी

भैरो चट्टी

गगोत्री

ोरथी मे स्नान किया

मदिर मे दर्शन किये
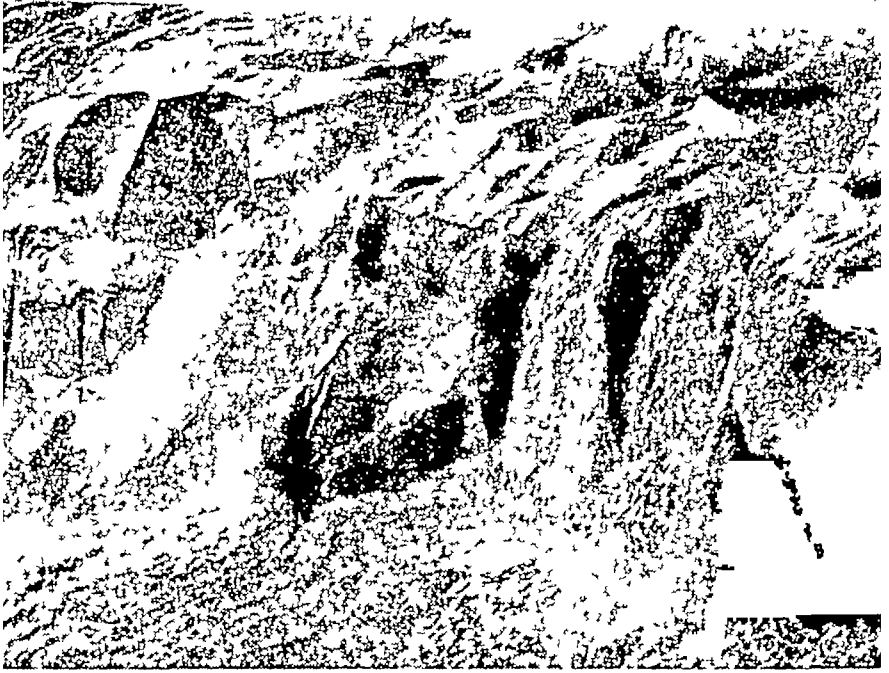
प्रकृति की लीला का अद्भुत स्थल सूर्यकुंड

गोमुख की ओर
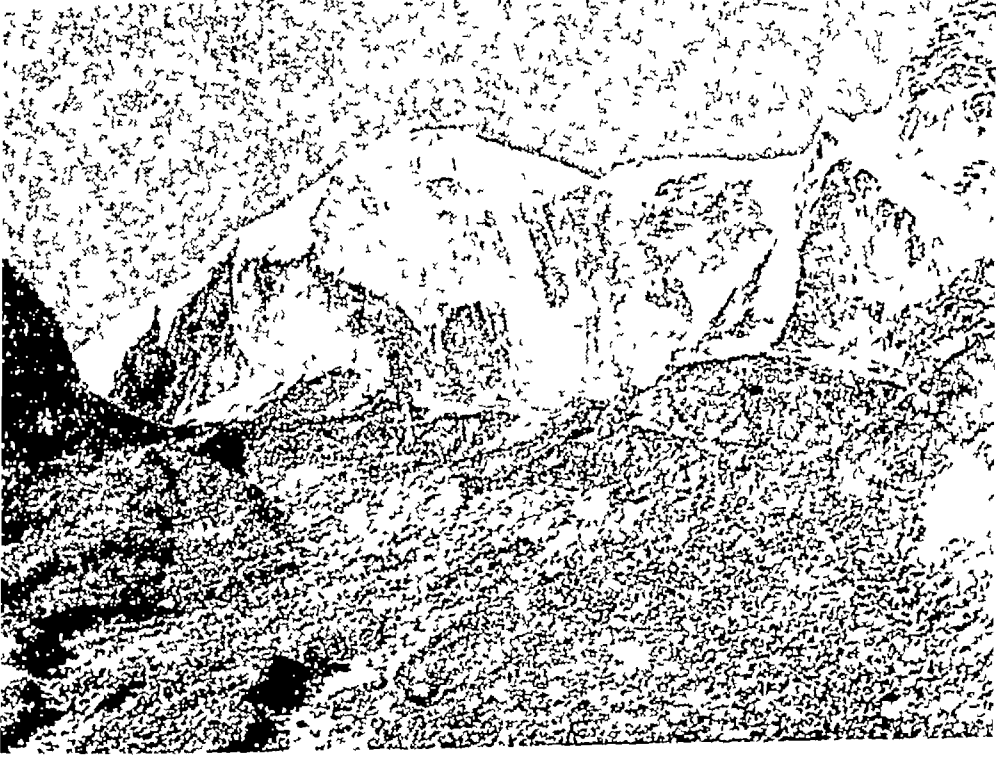
भृगुपथ

मदाशिखर
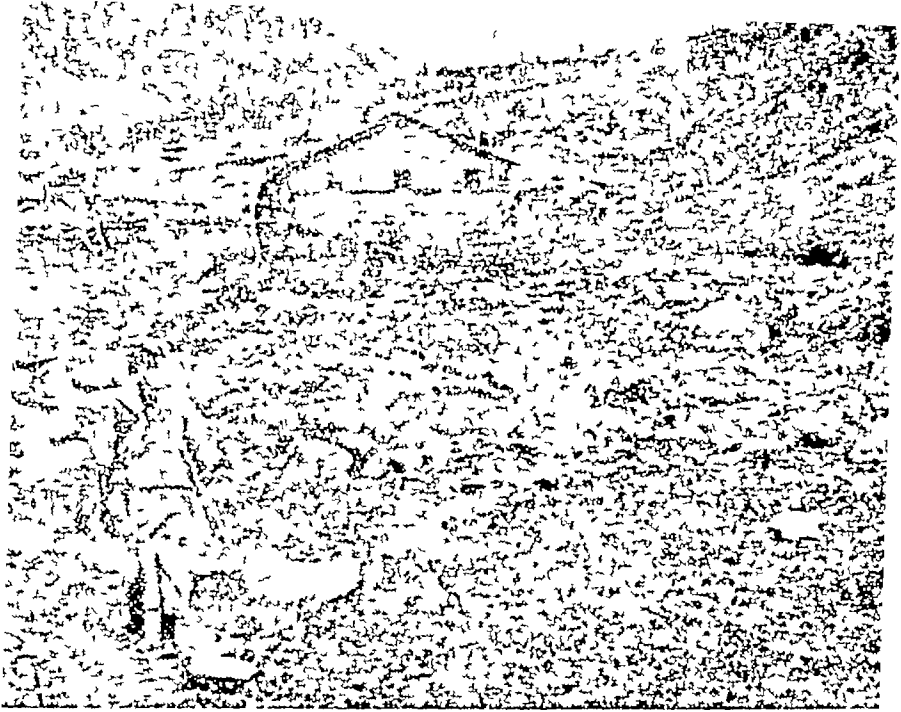
चीडवासा धर्मशाला

शिवलिग शिखर

गोमुख पहुचे
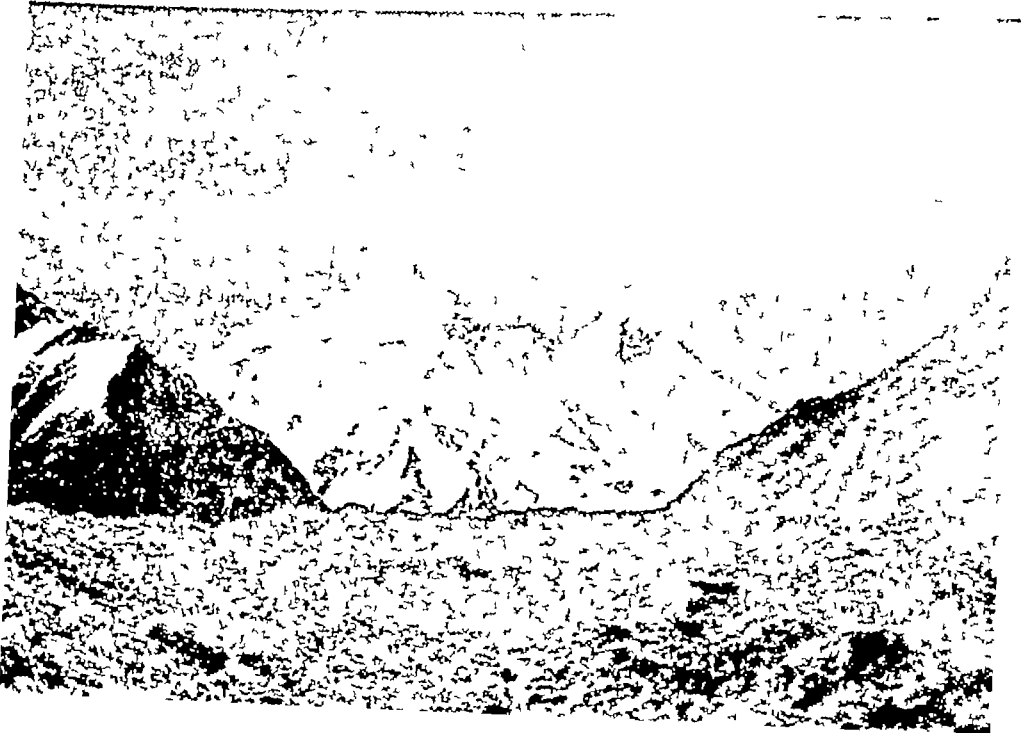
भागीरथ शिखर

गोमुख से हटने को जी नही चाहता था

टेहरी मे भिलगना और भागीरथी के सगम के दर्शन करके दिल्ली
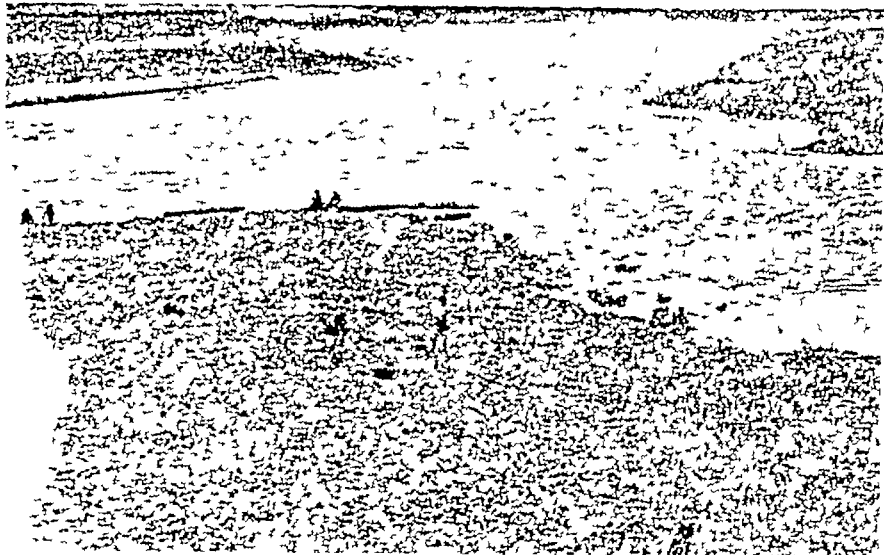
गिरगिट की तरह का परन्तु उससे काफी वडा काले रग का एक चतुष्पाद जानवर भी देखा। वडे पहाडी काले कौवे यहा दिखाई देते ही हैं। मगर वैसा ही पीली या लाल चोचवाला कौवा भी दिखाई देता है। उसे क्यागचू कहते हैं। यह तिब्बत प्रदेश का पक्षी है। मधुर वाणी वोलनेवाले कई और पक्षी दिखाई दिये। नाना वर्ण और गध के फूल भी कही-कही दिखाई दे जाते हैं। परन्तु उनका मौसम सितम्बर-अक्तूबर मे होता है। यही वह जडी भी होती है, जिसकी जड रात्रि के अन्धकार मे रेडियम के डायल की तरह चमकती है। यह जडी तपस्वियो को सुलभ प्रकाश तो प्रदान करती ही है कामदग्ध प्रेमियो के लिए अनुराग भी प्रदान करती है। प्राचीन साहित्य मे इसकी वडी चर्चा आती है।

देखता हू, भोर की किरणे रूप का ताना-वाना वुनने लगी है। ऊषा का जादू जैसे भग हो रहा है और सूर्य उदय हो आया है। उनकी लीला से यहा के दृश्य दैवी हो उठते हैं। मन उमग-उमग उठता है कि उड़कर पहुच जाऊ इन स्वर्ग शिखरो पर और नाचता हुआ देखू नीचे के अनन्त विस्तार को। ऐसे ही दृश्यो को देख-देखकर वैदिक ऋषि गा उठे थे

अग्नि की लपटो के समान
हे सूर्य, तुम हो सर्व सुन्दर क्षिप्र गतिमान
प्रकाश के निर्माता
ज्योति अवकाश को करते हो दीप्तमान।

पर्वत-शिखरो के मुकुट शुभ्र स्वर्णिम हो उठे। और प्रकृति मुग्धा-सी निर्निमेष उनके नयनो में झाकने लगी। क्षण वीते, प्रकाश विखरता चला गया। पर्वतो ने मेघों की मेखलाएं धारण करली और उनके किनारे इन्द्रधनुष हो आये।

रात का ताजा पारदर्शी हिम पानी पर धूप की भाति चमक आया है। पत्थरों पर पैर रखना सकटपूर्ण है, रपट-रपट जाते हैं। चीडवामा मे आगे वढे ही थे कि वाई ओर के शिखर की ओर इशारा करके स्वामीजी वोले, "यह भृगु शिखर है। इसमे से भोजगाड या भृगु नदी निकलती है। महानन्द वैतरणी भी इसीको कहते हैं।"

इसके आगे एक और शिखर है, जो शिवलिंग की आकृति का होने

के कारण शिवलिंग कहा जाता है। उसके सिर पर ही हिम किरी
नही है, बल्कि ऊपर से नीचे तक वह हिम से ढका हुआ है। उसका धव
वर्ण उसकी आकृति को अलौकिक बना देता है। इस शिखर को अभ
तक कोई नही जीत सका। मेघो की मेखला धारण किये यह गर्वोन्म
अजेय धवल शिखर क्षण-क्षण मे रूप पलटता है।

उसको देखते हुए आगे बढ रहे थे कि महानद वैनरणी के पा
पहुच गये। देखा, धारा बहुत पतली है। परन्तु जमी हुई है। वर्फ ज
पिघलती है तो वह विस्तृत और तीव्र हो उठती है। पार करना असभ
हो जाता है। अनेक यात्री यही से गोमुख को प्रणाम करके लौट जा
हैं। हम सौभाग्यशाली थे। हिम पर से होकर उस पार चले गए। बच्च
की तरह उल्लास से भरकर स्वामीजी बोले, "अब हम देवलोक मे आ
गये।"

कितनी क्षीण है मृत्युलोक और देवलोक की यह सीमा! लेकिन ज
क्षीण है वही अलघ्य हो रहता है। मानव मन के विस्तार की तर
प्रकृति के विस्तार को भी कितने खण्डो मे बाटा है, जैसे यह मानव-म
का प्रतिरूप ही हो। जो यहा आ सकता है, सचमुच वह स्वर्ग मे आत
है। उस स्वर्ग का वर्णन नही हो सकता। अनुभव ही किया जा सकत
है। पार्थिव जगत् से वह नितात भिन्न है। शाति का साम्राज्य, मुक्त
सौंदर्य का विस्तार, इसके अतिरिक्त भी कुछ है, जिसे शब्दो मे नही बाध
जा सकता।...

मन मे यही मुग्ध मथन था कि स्वामीजी बोले, "यह देखो, यह पुष्प
वासा है। भाति-भाति के पुष्प यहा खिलते हैं।"

शीत कुपित होता आ रहा था। रुककर प्रकृति के इस पुष्पोद्या
को देखने का उत्साह किसीमे नही था। वस्तुत यह एक छोटा-सा सम
तल भूमि-खण्ड है। शीत ऋतु मे यहा नाना प्रकार के पुष्प उग आते हैं
लेकिन हमे तो ग्रीष्म का शीत ही पीडित कर रहा था। दस्ताने पह
रहने पर भी हाथ इतने ठिठुर आये थे कि लाठी पकडना असभव ह
उठा। बोझी ने आग जला दी कि सहसा तभी देखता हू श्रीदत्त धडा
से पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये हैं। हम सब काप उठते हैं। जल्दी

जल्दी स्वामीजी उनके हाथ-पैर सेकते हैं। मैं फादर मुलर की गोलियां खाने को देता हू और उत्सुकतापूर्वक सबकी दृष्टि उनपर स्थिर हो जाती है। क्षण बीतते हैं, मानो युग बीतते है। क्या-क्या न सोच गये कि उनकी पलके हिलती है। वे आखें खोलने का प्रयत्न करते हैं। खोल देते हैं। प्राण जैसे लौट आये। इन्ही बधु के कारण तो हम यहातक आ सके हैं। मानसरोवर पैदल हो आये है।

जैसे सहसा गिर पडे थे वैसे ही उठ बैठे। बोले, "न जाने मूर्च्छा क्यो आ गई!"

उनके एक बधु ने कहा, "आपने तो घी डालकर चाय पी थी।"

यह सुनकर श्रीप्रभा बोल उठी, "ओह, यह बात है। वह घी जम गया है, दत्तभाई। आग के और पास आ जाओ। पिघल जायगा।"

सहसा एक मुक्त अट्टहास से वह वनप्रात गूज उठा। यशपालजी ने श्री दत्त का फेटा बाधा और उनका मार्गदर्शक, जो बहुत ही मस्त जीव था, उनको इस प्रकार खीचकर ले चला, मानो वह चतुष्पाद हो।

भागीरथ और शिवलिंग-शिखर निरतर पास आते जा रहे थे। बाईं ओर नैलग पर्वत-श्रेणी थी, जिसका वर्ण आगे चलकर ताम्र का-सा हो जाता है और वह ताम्रवर्णी पर्वत कहलाता है। जडी-बूटियां इस सारे मार्ग पर बिखरी पडी हैं। स्वामीजी ने एक बूटी उखाडकर कहा, "यह आर्चा है। टिंचर आयोडीन की तरह इसे चोट पर लगाया जाता है। यह देखो पागचा। इसकी सूखी पत्तिया चाय की तरह काम मे आती हैं। लेकिन बहुत गर्म होती हैं। इसीके सहारे तो हम हिम प्रदेशो मे जीवन की ऊष्मा पाते हैं।"

मार्ग मे हिमनद बार-बार आते हैं। पार करना सरल नही। पक्की बरफ पर किस क्षण पैर फिसल जाय। एक स्थान पर देखा कि नदी की उथली धारा मे पत्थर पडे हुए हैं। सोचा, इसको आसानी से पार कर लेंगे, लेकिन जैसे ही यशपालजी ने पैर बढाया, स्वामीजी ने उन्हे रोक दिया। तब ध्यान से देखा कि उन पत्थरो पर हिम की झीनी-झीनी चादर बिछी हुई है। उसपर पैर टिकाना असभव है। स्वामीजी ने लोहे की नोक से उस हिम को खुरचा। फिर मिट्टी लाकर डाली तब कहीं हम धारा को पार

कर सके। अब गगा हिमानी को भी देख सकते थे। उसीके बीच मे गोमुख एक विशाल रध्र की तरह चमक रहा था। स्वामीजी बोले, "बस इस मोड के बाद वहा पहुच जायगे।"

यहा के विकट मार्गों पर यात्री भटक न जाय, इस कारण ऊचे-ऊचे पत्थरो पर छोटे-छोटे दो-दो, तीन-तीन पत्थर रखकर सकेत बना दिये गए हैं। स्वामीजी इस मार्ग से इतने परिचित हैं कि तुरत कोई-न-कोई शकु पथ खोज लेते हैं। उन्हीके सहारे हम मेरू हिमधारा के पास पहुच गये। यह धारा गोमुख से दो मील ऊपर तपोवन से आती है। कैसा अद्भुत दृश्य है! चारो ओर शुभ्र श्वेत हिम-शिखर, कलकल करती वेगवती भागीरथी की धारा मे बिखरी विहँसती धूप, नील गगन मे यहा-वहा क्रीडा करते मेघशावक, मानो आमन्त्रित करते हैं कि आओ, हमारी क्रीडा में भाग लो। बगाली-दल का मार्गदर्शक सहसा वही लेट गया और गाने लगा। उस गढवाली गीत का अर्थ मैं नही समझता। उसीसे पूछना पडा। मुस्कराकर बोला, "मुझे याद आ रही है, मुझे अपने मा-बाप की याद आ रही है।" फिर एकाएक गाता-गाता कह उठा, "मैं मरना चाहता हू। मैं यही मरना चाहता हू।"

क्या पर्वत प्रदेश का यह बोझी इस रहस्य को जान गया है कि जिस क्षण मृत्यु से साक्षात्कार होता है, वही क्षण चरम जीवन-बोध का क्षण है। जो अस्तित्ववाद बुद्धिवादियो के लिए अगम्य है, उसकी अनुभूति कितने सहज भाव से इसे हो रही है।

तभी कानो में एक और सुमधुर सगीत गूज उठा। देखता हू मराठी बधु सतीशचद्र विमुग्ध विभोर रवि ठाकुर का यह गीत गा उठे

अयि भुवन मनोमोहिनी,
अयि निर्मल सूर्य करोज्ज्वल धरणी,
जनक जननी जननी।
नील सिन्धु जल-धौत चरण तल,
अनिल विकम्पित श्यामल अचल,
अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल,
शुभ्र तुषार किरीटिनी।

न-न, शब्द नही, सगीत भी नही, इस रूप को मौन स्तब्ध निर्निमेष देखो।

सत्य ही तब हम विमुग्ध मौन गोमुख की दिशा मे देखते रहे। मानो किसी दूसरे लोक के सर्वातिशय सौंदर्य को अतर मे अनुभव कर रहे हैं, मानो वह क्षण हमारी कल्पना का अग होकर रह गया हो। यही तो ब्रह्मानद है। तभी तो बोर्भी ने गुहार की थी—"मैं यही मरना चाहता हू।" तभी वेटोस्लोव रोरिच ने गद्गद् स्वर मे कहा था—"हिमवान, ओ सुदर, तू हमे अद्वितीय निधिया प्रदान करता रहा है और तू हमेशा के लिए प्रकृति के निगूढ रहस्यो का पृथ्वी और आकाश के सम्मेलन का प्रहरी बना रहेगा।"[1]

जब हमने विशाल पत्थरोवाले इस अतिम मोड को पार कर लिया तब ऐसा लगा, मानो किसी दिव्य लोक मे पहुच गये हो। यही है विश्व-विश्रुत 'तुहिन शिखर शृ गे दिव्य सौभाग्य समवन्' गोमुख। यही है बीस मील लम्बी हिमानी को द्वार। यही है शिव की जटाओ मे खेलनेवाली विष्णुपदी, पुण्यतोया भागीरथी का शिशु रूप। गति मे अदम्य वेग भरे, शिलाखण्डो से भेटती, सब कही शुभ्र श्वेत धवल सुषमा बखेरती, हिमवान की यह यौवन-मदमाती लाडली बेटी रत्नेश मे लय होने के लिए भागी चली जा रही है। शिखर शात गभीर हैं मानो इस उद्दाम गतिमय जीवनानद से स्तब्ध रह गये हो। हिमानी की विशाल पारदर्शी दीवारें लक्ष-लक्ष धाराओ मे पिघलकर बेटी को अर्घ्य देती, उसे रिझाने को शत-शत इद्रधनुषो का निर्माण करती, मौन युगपुरुष-सी न जाने किस अनादि काल से ऐसे ही खडी है। अन्य तीर्थों की भाति यहा न मदिर है, न पण्डे-पुजारी, न भिखारी। यहा तो अपने दिव्य रूप मे प्रकृति की विराटता का निरवैयक्तिक विपुल ऐश्वर्य ही चारो ओर फैला है, यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।' मैं स्तब्ध था, इस विराट ऐश्वर्य के समक्ष समर्पित मुक्त।

इस उद्गम का स्थान गोमुख (१२७७० फुट) है। परंतु यहा गाय

---

१ 'आरोग्य'; अगस्त १६६१

का मुख नहीं बना है। गो का एक अर्थ पृथ्वी भी होता है। यह निश्चय से नही कहा जा सकता कि भागीरथी का वास्तविक उद्गम यही है। यह हिमानी चौखम्बा शिखर से आरम्भ होकर गोमुख मे समाप्त होती है। अर्थात् बीस मील लबी हिमानी के भीतर से बहती हुई भागीरथी इस स्थान पर पहली बार पृथ्वी पर प्रकट होती दिखाई देती है। इसीलिए इस गुहा-द्वार का नाम गोमुख हो गया है। कही-कही यह हिमानी चार मील चौडी है। वैसे एक-दो मील है। इसकी आयु क्या है, कोई नही जानता। नीलाभ-वरण दूर से श्याम दिखाई देता है। उद्गम स्थल पर एक हिम-कदरा की पारदर्शी सीमाओ मे बधी छोटी-सी जलधारा, जो लगभग तीस फुट चौडी और तीन फुट गहरी है, भीषण नाद करती हुई उद्दाम वेग से नि सृत होती है। यह विस्तार ग्रीष्म ऋतु मे बढ जाता है और हेमत मे घट जाता है। कदरा का मुख अग्रेजी अक्षर 'यू' के आकार का है, लेकिन वह सदा एकरूप नही रहता। जब सूर्य प्रखर होता है तो हिमानी पिघलने लगती है। जब शीत मुखर होता है तो जल भी जम जाता है। इस प्रत्या-वर्त्तन मे हिम नाना रूप धारण करता है। पारदर्शी दीवारो के सहारे इस प्रत्यावर्तन के कारण असख्य हिमशलाखाए बन गई हैं। जैसे किसी ने झूमर लटका दिये हो।

माधव किशोरोचित अल्हडता से सबसे पहले गुहा-द्वार के पास पहुचने के प्रयत्न मे था। मेरे साथ थे सतीशचद्र। हमारे पैरो मे भी जैसे गति भर गई थी। गुहा के पास जाकर हम आनदातिरेक से पुलक उठे और उस भयकर शीत मे प्राणों की चिंता भूलकर स्नान करने के लिए वस्त्र उतारने लगे। कुछ क्षण बाद ही शेष साथी भी आ पहुचे। हम स्नान करने जा ही रहे थे कि बालोचित चपलता से कूदकर स्वामीजी हमारे पास आये, और बोले, "आओ गुहा के अदर चले।"

इस रहस्यमयी हिम-गुफा के भीतर क्या मानव कभी जा सकेगा? परतु तब तो जीवन और मृत्यु की सीमा-रेखा ही मिट गई थी। दूसरे ही क्षण हमने पाया कि हमारे सिर पर नील-श्यामल शाश्वत हिम की छत है, शरीर सिहर रहा है, प्राण पुलक उठे हैं। सहसा चेतावनी पाकर हमने पचस्नानी की। स्वामीजी ने मत्र पढे और उस पारदर्शी हिम-गुहा

की दीवारो मे अपना प्रतिविम्व देखते हुए हम लौट पडे। यक्ष-प्रियाए इन्ही प्राकृतिक दर्पणो मे तो अपनी छवि निहारा करती होगी!

सूर्य-ताप के कारण हिमानी वरावर पिघल रही थी और असख्य जल-धाराओ के साथ-साथ उसकी छत पर पडे लघु और विशालकाय पत्थर नीचे सरक आते थे। जैसे ही हम वाहर आये, यशपाल अदर पहुचे। माधव भी दौडे-दौडे आये। तभी सहसा पत्थर गिरने लगे। भयातुर होकर हमने वाहर आने के लिए पुकारा। लेकिन जलधारा के प्रचण्ड स्वर के कारण वे सहसा सुन न पाये। वार-वार हाथ से सकेत करने पर ही वे वाहर निकले। यशपाल निकले ही थे कि एक पाषाण-खण्ड उनके सिर के ऊपर से होता हुआ वडे वेग से जलधारा मे आ गिरा। माधव और भी पीछे था, क्षण-भर के लिए हम सकपका उठे। लेकिन वह भी सकुशल वाहर आ गया। इस सकट से वच जाने के कारण स्वाभाविक रूप मे हम सवको वडी खुशी हुई, लेकिन दिलीपसिह क्रुद्ध हो उठा। वोला, "ऐसे स्थानो पर दुस्साहस का परिचय देना कोई गर्व का विषय नही है, मूर्खता है।"

गुहा के मुख्य द्वार से कुछ इधर ही हम लोगो ने स्नान किया। नेत्र मूदकर कम्पित शरीर और पुलकित प्राणो पर पात्र मे भर-भरकर हिम-जल डालने लगे। सव परिजन और मित्रो के नाम विद्युत गति से मस्तिष्क मे उभर रहे थे। चलते समय उनकी इच्छा थी कि पवित्र सरिता मे स्नान करते समय हम उन्हे भूल न जाय। यह इच्छा उस समय कैसी भयकर हो उठी थी, उसकी कल्पना अकल्पनीय ही है। लगता था रक्त मानो हिम वन गया है। परतु जैसे ही कसकर तौलिये से शरीर रगडा, रक्त की गति तीव्र हुई तो लगा मानो जीवन-दायिनी ऊष्मा के स्पर्श से सव रोग-शोक नष्ट हो गये हैं। धर्मभीरु इसी सौभाग्य को पुण्य की सज्ञा देते हैं।

देखता हू, घोरपड़े, माधव और यशपाल चित्र लेने मे व्यस्त हो गये हैं। दिलीप और वोभी चाय वना रहे है। स्वामीजी भागीरथी स्तवन का पाठ कर रहे है—

भागीरथी कृपासिन्धुर्भवानी भवनाशिनी।
सागरा स्वर्गदा चैव सर्व संसार गामिनी॥

समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया. किमपि तन्
महेश्वर्यं लीलाजनित जगत खण्डपरशो ।
श्रुतीना सर्वस्व सुकृतमथ मूर्तं सुमनसा
सुधा सौंदर्यं ते सलिलमशिवं न शमयतु ।।

मै शिलाखण्ड पर बैठकर पत्र लिखने लगा । मेरे तीनो ओर पारदर्शी हिमानी है । उसका इद्रधनुषी रूप मेरी आखो मे तैर रहा है । देखता हू धीरे-धीरे सभी साथी स्मृतिस्वरूप भोजपत्रो पर प्रियजनो को पत्र लिखने लगे । तभी दिलीप बिना चीनी की वही काली मिर्चवाली चाय ले आया । श्रीप्रभा लाई चूरमा । भागीरथी के तटवर्ती एक बडे शिलाखण्ड पर हमने वह अपूर्व भोजन किया और फिर पत्र और डायरी लिखने मे व्यस्त हो गये । डेढ घण्टा बीत चुका है । दिलीप का आदेश है, "अब हमे लौट चलना चाहिए । किसी भी क्षण हिमपात हो सकता है । तब यहा से निकलना असभव हो जायगा ।"

मन नही चाहता, लेकिन लौटना तो है ही । तुरत खडे हो गये । एक बार जी भरकर उस रूप को देखा । वह वर्णनातीत रूप, वह पारदर्शी हिमानी, उडते जल-सीकर, निरतर रिमझिम-रिमझिम टपकती बूदो से बनी झाडफानूस-सी सहस्रो सीढिया और उन सबपर पडती सूर्य की किरणे, जो प्रति क्षण असख्य इद्रधनुषों का निर्माण करती हैं । प्रकृति का यह अनत मुक्त विस्तार, यह निर्विकल्प सत्ता की बोधमयता, कैसे लिखू ! क्या आनद था वह ! ब्रह्मानद सरोवर ऐसा ही तो होता होगा ।

निराकार एकात व्याप्त था मेरे चहु दिशि
सबकुछ था बन गया अनोखा और अनामी
एकाकी अज, विश्वातीत, एक सत्ता थी
शिखरहीन, तलहीन सदा के लिए स्थाणु । (अरविंद)

कल कैसा सौभाग्य था । कल मेघ छाये थे । आज इस हिम-प्रदेश मे भी प्रखर धूप फैली है । स्वामीजी बोले, "बडे पुण्यात्मा है आप । यहा धूप कहा ? विरला ही इस सौभाग्य का अधिकारी होता है । सोचा, वह मार्गदर्शक तभी तो यहा मरना चाहता था । ऐसे सुदर, पवित्र और दिव्य स्थान पर आकर जीने की कामना कहा रह जाती है ? कैसा लगता होगा

यह प्रदेश जब यहा चारो ओर हिम का सन्नाटा छा जाता होगा। अकल्पनीय...।

१६ :

'बाग़बां जाते हैं...'

बारह बजने मे दस मिनट शेष है। चारो ओर धूप खिली है और हिम पर नाना रगो का इद्रजाल बिछता आ रहा है। नगी आखो से देखना कठिन हो गया। आकाश मे बादल ऐसे तैरते आ रहे हैं जैसे अनत सागर मे छोटी-छोटी नावे। लेकिन यह विहँसती सुषमा न जाने कब रुद्र रूप धारण कर ले, इसीलिए अतिम बार गोमुख को प्रणाम करके लौट चले। शिलाखण्ड पर खडे होकर सतीशचद्र ने कहा—

सैर की, खूब फिरे, फूल चुने, शाद रहे।
बाग़बा जाते हैं, गुलशन तेरा आबाद रहे।।

वही विशालकाय पत्थरो से भरा मार्ग, हिमानी की दो मील लबी दीवारो से भी पत्थर गिर रहे है। हम तक पहुच रहे हैं, लेकिन हम तो निरतर आगे बढ रहे है और स्वामीजी फिर अपनी कहानी सुना रहे है, "यह देखो, यह शिवलिंग शिखर है। इसकी उपत्यका मे ढाई मील पर तपोवन है। सारे मार्ग बर्फ पर चलना होता है। चार-पाच मील के क्षेत्रफल का मैदान है। उसमे घास के हरे कालीन बिछे है। बीच-बीच मे सर्पाकार सरिताए बह रही हैं। इधर-उधर कदराए है। उन्हीमे कभी प्राचीनकाल के तपस्वी रहा करते थे। यहा से गगा-हिमधारा को पार करके नदनवन आता है। इस ढलाऊ मैदान के ठीक बीच मे सर्पाकार गति से बहने-वाली नदिनी नाम की सरिता के दोनो तटो पर पुष्प खिले रहते हैं। वहा से भागीरथ पर्वत के श्वेत तंबुओ के-से दिखाई देनेवाले तीन शिखर बहुत मोहक लगते हैं। यही से होकर बदरीनाथ को मार्ग जाता है। फिर रक्त-

वर्ण हिमानी के साथ-साथ चलकर दहीगाढ शिखर को पार करके नीलग से कुछ ऊपर निकल जाते हैं। तपोवन से एक मार्ग कीर्तिवामक को पार करता हुआ गहनवामक से केदारनाथ पहुच जाता है। बदरीनाथ सैकडो बार हो आया हू। एक बार चौदह व्यक्तियो का दल लेकर गया था, जिनमे एक महिला भी थी। लौटते समय पैंसठ वर्ष के एक साधु भी साथ आये थे।"

स्वामीजी की इस रोमाचित यात्रा का विवरण सुनते-सुनते मन थकता नही, बल्कि उस यात्रा पर निकल पडने को उत्सुक हो उठता है। जब एक नारी और एक वृद्ध साधु उस मार्ग को पार कर सकते है तो हम क्यो नही कर सकते। लेकिन तब यह सभव नही हो सका। न हमारे पास साधन थे, न ऋतु का कुछ पता था। इसलिए हम लोग गगोत्री की ओर ही बढते चले गए। मेरू-हिमधारा के पास पहुचकर एक चट्टान पर अनेक शिशु-पत्थर रखे हुए थे। पूछा, "यह क्या है ?"

स्वामीजी बोले,"जो व्यक्ति इधर आते है कोई-न-कोई मानता मान-कर एक पत्थर यहा रख जाते हैं। विश्वास है कि उनकी यह मानता भागीरथी अवश्य पूरा करती है।"

मनुष्य कितना दुर्बल है। इस दुर्बलता पर मुझे खीझ आती है। लेकिन तब न जाने क्या होता है, एक पत्थर उठाता हू और चट्टान पर रखते हुए मन-ही-मन कहता हू, "विश्व-शाति के लिए।"

गाधीजी से किसीने पूछा था, कि जो वृक्षो की पूजा करते हैं, क्या वे जड नही हैं ? उन्होने उत्तर दिया था, "जो व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए वृक्षो की पूजा करता है, वह निश्चय ही जड है। लेकिन जो दूसरो के लिए मानता मानता है, उसे मैं जड नही कहूगा।"

वह पत्थर रखते समय मेरे मन मे भी सभवत वही तर्क काम कर रहा था और मैं प्रसन्न था। लेकिन दो क्षण बाद क्या देखता हूं, प्रकृति अगडाई ले रही है। नीलाकाश मे तैरते हुए मेघ-शिशु विशालकाय रूप धारण करके उसके पूरे विस्तार पर छाते आ रहे हैं। सबकुछ कुहर मे छिपने लगा है। भागीरथ शिखर, शिवलिंग शिखर, सभी कुहर के आव-रण मे नव-वधू की तरह अर्ध-उन्मीलित नेत्रो से झाकने लगते हैं। अभी

कुछ देर पहले भागीरथ शिखर ऐसा लग रहा था जैसे असख्य जटाओं-वाले राजऋषि भगीरथ तप मे रत है और अभी उसका यह रूप...लो हिमपात होने लगा। छोटे-छोटे कण धरती पर और हमारे वस्त्रो पर बिखर गए, मानो आकाश ने श्वेत पुष्पो की वर्षा की हो। तब वह सुहावनी सलोनी ऋतु और भी प्रिय लगी। यही सब देखते, उमगते, विहँसते हम तीव्र गति से आगे बढ रहे थे कि सहसा क्या देखता हू कि दूसरे दल के लोग कुछ दूरी पर हमारी राह देख रहे है। पास जाने पर पता लगा कि एक साधु गिर पडे हैं। व्याकुल स्वर मे बोले, "आपको छोडकर चल पडे थे, उसीका दण्ड मिला है।"

सोचता हू कि क्या सचमुच यहा आकर मन पवित्र होने लगता है। चोट काफी आई है। टिंचर लगाकर उन्हे खाने के लिए गोलिया भी देता हू। कैसे आश्चर्य की बात है। सवेरे जब श्रीदत्त मूच्छित हो गये थे, तब उन्हे भी मैंने यही गोलिया दी थी। उस समय इन्ही साधु ने कहा था, "मुझे भी यह गोली खाने को दो।"

मैंने उत्तर दिया, "आप स्वस्थ होकर गोली क्यो खाते है ? आवश्यकता होने पर हम स्वय देंगे।"

यही बात सतीशचद्र को याद आ गई। बोले, "सवेरे जो मागने पर न मिला, वही अब बिना मांगे पाया।"

मैंने कहा, "आपका मतलब है कि उन्होने इसीलिए चोट खाई। नही-नही, दवा की गोली क्या ऐसी लुभावनी वस्तु है कि उसके लिए प्राण संकट मे डाले जाय।"

सब लोग हँस पडे। पर मनोवैज्ञानिक निश्चय ही इन दोनो मे कोई-न-कोई सबध ढूढ निकालेगा। पर जाने दें आज मनोवैज्ञानिको को। हिमपात अब बद हो चला है। धर्मशाला भी दिखाई देने लगी है। लेकिन यह दाहिनी ओर कुटी कैसी है ? उसमे एक साधु रहते थे। इस समय नही हैं। स्वामीजी बोले, "उधर स्वामी मस्तराम के शिष्य रहते है, लेकिन इस समय जाना उचित नही होगा। देर हो सकती है।"

जिस समय हम चीडवासा पहुचे, तीन बजकर पाच मिनट हो चुके थे। कुल सवा तीन घण्टे लगे। जाते समय चार घण्टे दस मिनट लगे थे।

नीचे उतरना सहज होता है न ? यही सोचता-सोचता देखता हू कि खूब धूप निकल आई है और प्रकृति मुस्करा रही है। हम भी मुस्करा आये। आग जल उठी और गोमुखी चाय तैयार होने लगी। लेकिन जबतक हम उसे पी सकें, बाहर वर्षा आरभ हो जाती है। कहा गई वह सुनहरी धूप वह सूर्य की मादक मुस्कान ? जैसे प्रकृति ने अपने सभी रूप आज दिखाने का निश्चय कर लिया हो। क्याग चू चू चू करने लगा। स्वामीजी बोले, "आइये, स्वामी तत्वबोधानदजी से मिल लें।"

लबी जटाए, लबा इकहरा शरीर, मुख पर ज्ञान और सौम्यता की आभा, नयनो मे कारुण्य का तेज, स्वामी तत्वबोधानदजी धुए से भरी कोठरी में शात मन जैसे समाधिस्थ हो। बडे प्रेम से हमारा स्वागत किया। बहुत शीघ्र ही हम जान गये कि बहुश्रुत और बहुपठित साधु है। घूमे भी खूब हैं। महात्मा गाधी और पडित नेहरू से खूब परिचित हैं। इसी प्रसग मे अपने बबई-प्रवास की चर्चा करते हुए सहसा बोल उठे, "नेहरू नास्तिक नही हैं। बबई की एक सभा मे मैंने उनको देखा था। बहुत भीड थी, अत्यत अव्यवस्थित और चचल। वह उसको व्यवस्थित करने की चेष्टा कर रहे थे। सहसा उन्होने एक ब्रह्मचारी को देखा और उससे बैठने की प्रार्थना की। लेकिन कहने से पूर्व उसे हाथ जोडकर प्रणाम किया। जिसका अतर्मन आस्तिक है, वही ऐसा कर सकता है। आज हम आस्तिक की अत्यत सकीर्ण व्याख्या मे उलझे हैं।"

एक क्षण रुककर फिर बोले, "आप हमारे अतिथि है। आटा, दाल आदि कुछ चाहिए तो ले लें।"

स्वामी सुदरानदजी हँस पडे, "इस निर्जन बीहड प्रदेश मे आपसे लें या दे ?"

उन्होने कहा, "इसमे क्या बात है, आपकी आवश्यकता पूरी होनी ही चाहिए और यदि आपके पास बच जाय तो हमे देते जाइये।"

सब लोग हँस पडे। मैंने पूछा, "स्वामीजी, आपका मन नीचे जाने को नही करता ?"

बोले, "नही करता, क्योकि यहा का वातावरण ऐसा है कि ध्यान-साधना के लिए प्रयत्न नही करना पडता, सहज ही सबकुछ हो जाता है।"

सोचता हू इस सहजता को पाने के लिए कुछ दिन रहना होगा। ऊचाइयो पर आकर बहुत-कुछ सहज हो रहता है। पवित्र स्थान पर ही पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं। पर उन्हे अनुभव करने के लिए अवकाश के क्षण आवश्यक हैं। फिर अपनी जीवनचर्या की चर्चा करते हुए बोले, "पहले जब यहा हिम का सन्नाटा छा जाता था तो मैं हिम-जल ही पीता था, लेकिन एक बार उससे क्या हुआ कि सारा शरीर वात से जकड गया। नाना प्रकार के रोग पैदा होने लगे। तब मैंने बर्फ मे छेद करके गगाजल निकालना शुरू किया। उसके पीने से देखते-देखते सब रोग-ताप मिट गये।"

फिर वन्य पशुओ की चर्चा चल पडी। हँसकर बोले, "यह जो गर्म चादर ओढे हू, जानते हैं, यह मैंने एक रीछ से ली थी। आप पूछेंगे, कैसे ? सुनिये, यहां तीन प्रकार के रीछ होते है, सफेद, भूरा और काला। सफेद और भूरे रीछ बहुत ऊचाई पर होते हैं और वे आदमी से डरते हैं, पर काला बहुत दुष्ट होता है, कपडे तक उतार ले जाता है। पेड पर घेरा बनाकर उसमे रहता है। घूमते-घूमते एक दिन मैंने कबल का एक ऐसा ही घेरा देखा। रीछ उसके भीतर बैठा था। पत्थर मार-मारकर मैंने उसे भगा दिया।"

मैंने पूछा, "उसने मुकाबला नही किया ?"

बोले, "एक तो दिन का समय था, फिर मैं ऐसे स्थान पर था जहा वह आसानी से नही पहुच सकता था। भागकर उसे जान बचानी पडी। मैं वह कबल उतार लाया। बहुत गदा था। कई दिन तक गगा के पानी मे डाले रखा, फिर सुखाकर ओढने लगा।"

रीछ की कहानियो का कोई अत नही था। वह छोटी-सी कोठरी अट्टहास से गूजने लगी। सतीशचद्र ने गाना भी गाया। मार्गदर्शक और बोझी भी पीछे नही रहे।

भोजन के उपरात आग के चारो ओर बैठकर लिखते रहे, बाते करते रहे और गाते रहे। लेकिन शीत धीरे-धीरे हमारी मज्जा के भीतर तक आ पहुचा था। आक्रात होकर हम अपने-अपने कबलो मे घुसने को विवश हो गये। लेकिन मेरा मन इस सब उल्लास के बावजूद एक अवसाद मे

भरा आ रहा था । कहते हैं, ऊचाई पर क्रोध आता है । पर क्यो ? यही मैं सोच-सोचकर व्यथित हो रहा हू । क्रोध का कारण ऊचाई नही है, मन की दुर्बलता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनेको बुद्धिमान और त्यागी मानता है, पर सचमुच त्याग क्या है, यह वह नही जानता । शब्द को पकडकर कहता है, "मैंने त्याग को पा लिया ।" लेकिन यदि प्रकृति के इस पवित्र वातावरण मे मन की दुर्बलता को न जीत सके तो "चरैवेति चरैवेति" का मत्र व्यर्थ है ।

स्वामीजी ने फिर प्रश्नो की झडी लगा दी । न जाने कबतक विचार-विनिमय चलता रहा, कब नीद आ गई । जिस समय घोरपडे की आवाज सुनी तो घडी मे चार बज रहे थे । ऐसा लगता था मानो हमारे चारो ओर हिमशिलाए रखी हुई हैं, हम उठ न सकेंगे । लेकिन आज तो वापस लौटना था । गोमुख का भव्य दृश्य आखो मे भर उठा । फिर वही नित्य कर्म, चाय-पान । जिस समय हम जाने के लिए तैयार हुए, साढे पाच बज रहे थे । स्वामी तत्वबोधानदजी हम लोगो को विदा करने के लिए बाहर आ गये । प्रात कालीन प्रकाश मे उनकी मूर्ति और भी भव्य हो उठी । सौम्य स्नेहिल स्वर मे उन्होने कहा, "आपकी यात्रा शुभ हो ।" प्रकृति की मूक वाणी ने भी मानो उनके स्वर मे स्वर मिलाया । हिमशिखरो पर सूर्य-किरणें उतर आईं । मृदु मद मुस्कान से वह भी मानो कह उठे, "शुभास्तु पथान ।"

२०

"यदि मार्ग सरल हो तो..."

लौटते समय देववन मे पुष्पो और फलो के सबध मे काफी जाच की । एक विचित्र बूटी स्वामीजी ने दिखाई । चट्टान की ओट मे मिट्टी मे सिर ऊचा किये वह बूटी चार अगुल की होगी । उसका फैलाव जाल की तरह

था। चने के पत्ते जैसे उसके पत्ते थे और ऊपर के भाग मे स्वर्ण वर्ण के नाना पुष्प खिले थे। जड के पास डठल से रस बहकर मिट्टी पर फैल रहा था। कहते है यह रस इस बूटी के अश्रु हैं, इसीलिए उसका नाम रुदती या रुद्रवती पड गया है। स्वय शिव ने पार्वती से इसके गुणो का वर्णन किया था। गधक के साथ इसके ताजे रस का शोधन किया जाय, तो यह कुष्ठ रोग की अमोघ औषधि बन जाती है। यदि पारद के साथ शोधन किया जाय तो मनुष्य मे अदृश्य होने की शक्ति पैदा हो जाती है। मनुष्य रुद्रवती के इस गुण को नही जानता, इसीलिए वह रोती रहती है। नही मालूम, यह अलौकिक शक्ति कहातक सत्य है, परतु इतना अवश्य सत्य है कि कुष्ठ-रोग मे यह बहुत प्रभावकारी होती है।

ममीरी भी हमने देखी। उसका सुरमा बनता है। सालम मिश्री से अनेक औषधिया तैयार होती हैं। नागबला भी एक औषधि है। सहसा स्वामीजी बोले, "अजवायन को तो आप जानते ही हैं, लेकिन इसका यह घास जैसा पौधा शायद ही कभी देखा हो। यह छोटा-सा बैगनी फूल कितना सुदर मालूम होता है!" सचमुच वह शिशु-पुष्प अत्यत प्यारा लग रहा था। उसकी सुगध बहुत दूर तक हमारे साथ रही। हमने अतीश का पौधा भी देखा और देखी गगा तुलसी, जिसे इस प्रदेश मे छावर कहा जाता है। इसका उपयोग पूजा मे होता है। आर्चा-पार्चा को जाते समय देख चुके थे, इसलिए पहचानने मे कोई कठिनाई नही हुई। स्वामीजी बोले, "वह देखो, वह छोरा है। एक सुगधित मसाला।"

मैंने पूछा, "क्या यह चोर ही तो नही है? बदरीनाथ यात्रा से लौटते समय मैं इसे ले गया था। जिस दिन दिल्ली पहुचा, उस दिन दशहरा था। उडद की दाल बनी थी। उसमे डालने पर दाल बहुत ही स्वादिष्ट हो उठी।"

स्वामीजी बोले, "हां, यह वही है। लेकिन इधर इसको छोरा कहते हैं और यह देखो यह पांगरी है और यह है जाडपालग। पांगरी के लबे पत्ते की बडी अच्छी भाजी बनती है। यह है लादू, इसकी भी भाजी बनती है, लेकिन इसमे लहसुन की-सी गध आती है।"

एक और सब्जी हमने देखी, जो बदगोभी की तरह थी। लेकिन

इनके प्रयोग मे वडा सावधान रहना पडता है। वही पर कुछ ऐसे पौधे भी होते है, जिनमे तीव्र विप होता है। खाते ही तत्काल मृत्यु हो जाती है। फलो के वृक्ष भी वहा थे। जैसे पापामोल और फलौदा। वादाम की तरह एक मेवा होती है, जिसे कहते हैं सिरोर। इस प्रकार नाना कदमूल-फलो से यह वन प्रदेश-भरा पडा है। सारे मार्ग पर जगली गुलाव यहा-वहा उग आये हैं, जिनकी सुगध यात्री को स्फूर्ति मे भरती रहती है। महान चरक ने ऐसे ही स्थानो से अमूल्य और आरोग्यप्रद वूटिया छाट निकाली थी। १३०० वर्ष पूर्व चीन के महान यात्री ह्य नसाग ने हिमवान की इन अद्भुत जडी-वूटियो की चर्चा की है,लेकिन दु ख यही है कि आज जो इस विज्ञान के सहारे जीवनयापन करते है, वे नए-नए प्रयोग करके नही देखते। जो कुछ प्राचीन पुस्तको मे लिखा है, उसीको 'वावा वाक्यम् प्रमाणम्' के अनुसार मानकर जैसे-तैसे अपना काम चलाते है।

वादल आकाश के विस्तार को घेरते आ रहे थे। कभी-कभी मन आतकित हो उठता था। आधा मार्ग पार करते-करते वह प्रदेश कुहर के आचल मे छिपने लगा। देवघाट के समीप पहुचकर स्वामीजी बोले, "आओ, उस पार चले। वहा का मार्ग सरल है।"

मैंने कहा, "लेकिन भागीरथी को पार कैसे करेंगे ?"

स्वामीजी बोले, "गारी लोग अपनी भेड-वकरियो को लेकर इन प्रदेशो में आते हैं। वे लोग अस्थायी पुल वना लेते हैं। वैसा ही एक पुल सामने है।

दृष्टि उठाकर देखा, भागीरथी के दोनो तटो को मिलाते हुए वृक्षो के दो लवे तने पडे हुए हैं। यही पुल है। इसीपर से भागीरथी को पार करना पडता है। तनिक पैर डगमगाया तो वेगवती धारा मे प्राणो का विसर्जन ही करना होगा। लेकिन स्वीमीजी पूर्णत शात थे। वोले, "चिता न कीजिये। हम उस पार अवश्य जायगे।"

यह कहकर वह तत्काल उस कच्चे पुल पर से कूदते हुए उस पार पहु च गये। वृक्ष का एक और लवा तना वहा पडा था। मार्गदर्शक और वोझियो की सहायता से उस तने को पहले दो तनो के ऊपर सटाकर रख दिया। कहा, "अव आप नि सकोच आ जाइये।"

मन अब भी आतंकित था। तने आखिर कच्ची मिट्टी पर ही तो रखे थे। किसी भी क्षण डगमगाकर जलमग्न हो सकते थे। फिर हमारी सुधि लेनेवाला कौन था! लेकिन पार तो जाना ही था। बारी-बारी चौपायो की तरह उस पुल पर भागीरथी को पार करने लगे। क्षण-क्षण ऐसा लगता था कि पैर डगमगाया और इस तीव्र प्रवाह मे हमारा विसर्जन हुआ। लेकिन हुआ यह कि सब सकुशल उस पार पहुच गये तो गर्व से भरकर पहले किनारे की ओर देखा फिर उस पुल को देखा और ऐसा अनुभव किया मानो एवरेस्ट-विजय की हो। इस विजय का नशा इतना तीव्र था कि कुछ ही दूर पर देवगगा की क्षीणकाय धारा मे यशपाल जैसे कुशल आरोही रपट पडे। जिस पत्थर का उन्होने सहारा लिया था, वह धोखा दे गया। वह धारा मे गिर पडे। कपडे तो भीगने ही थे। बहुमूल्य कैमरे मे पानी भर गया। कुछ चोट भी लगी। लेकिन सौभाग्य से घडी, चश्मा आदि बच गये। माधव ने तुरत ही लपक कर कैमरा उठा लिया। उनकी वह फिल्म बच गई, जिसमे गोमुख के चित्र थे। दो-तीन चित्र अभी लेने को बाकी रह गये थे। कपडे सुखाते-सुखाते हम लोगो के चित्र उतारे गए। अच्छा मजाक रहा।

लेकिन केवल यशपाल ही गिरे हो, यह बात नही है। कुछ क्षण पहले एक गहरे ढलान पर से उतरते समय मैं भी फिसल गया था। गिरने से बचने के लिए जब मैंने बाए हाथ का प्रयोग किया तो वह बुरी तरह कट गया। इसी ढलान पर से उतरते हुए श्रीप्रभा बाल-बाल बची। स्वामीजी ने बाह पकडकर उतरने मे सहारा दिया। बीच मे था एक पत्थर, उसपर जैसे ही स्वामीजी ने पैर रखा कि वह फिसल गया और उसके तथा पहाड के बीच मे श्रीप्रभा का पैर आ गया। वह चीख उठी। उस क्षण स्वामीजी ने जोर से पैर मारकर उस पत्थर को नीचे फेकने का प्रयत्न किया। इस प्रयास मे ऐसा लगा कि उनका दूसरा पैर ढलान पर टिका न रहेगा और श्रीप्रभा के साथ-साथ वह भागीरथी के तीव्र जल-प्रवाह मे जा गिरेंगे। लेकिन स्वामीजी तो मजे हुए खिलाडी थे। एक क्षण हवा मे तैरते हुए खडे रहे और वह भीमकाय पाषाण-खण्ड लुढककर गगा के गर्भ मे समा गया। स्वामीजी सानंद श्रीप्रभा के साथ नीचे पहुच गए।

हम लोग इस ओर इसलिए आये थे कि मार्ग सरल है, इसलिए उस पुल पर प्राण सकट मे डाले। लेकिन इस पार जो मार्ग मिला वह सापनाथ के भाई नागनाथ जैसा ही था। मार्गदर्शक भी दुविधा मे पड जाता था। नितात कटा-फटा डरावना। कभी ऊपर आकाश मे चलते, कभी पाताल मे उतरते। कभी वृक्षो की घनी शाखाओ मे उलझते, कभी नितात सकीर्ण रपटती पगडडी पर कापते प्राणो से आरोहण करते, कभी विशालकाय पत्थरो को पकडते-पकडते आगे वढते। क्लात, त्रस्त, किसी प्रकार वावा गगादत्त फलाहारी की कुटिया पर पहुच सके। माधव बिना रुके वढ गया। शीघ्र-से-शीघ्र मा के पास पहुच जाने की उसकी इच्छा स्वाभाविक थी। प्यास के कारण मेरा कण्ठ सूख रहा था, लेकिन आज मेरे साथ थे सतीशचद्र। सचमुच पर्यटक हैं और सगीत-प्रिय भी। उनके साथ ही ऊपर चढकर हम वावाजी कुटिया मे पहुचे। वह व्रजवासी हैं। केवल फल ही उनका भोजन है। एक चवूतरे पर चट्टान झुक आई है, उसीकी आड मे एक छोटा-सा लकडी के शिखर का कच्चा मदिर बना है। वावा गगादत्त यही पर वैठे सदा राम-लखन की जोडी को निहारा करते हैं। उनका यह ठाकुरद्वार खूब सजा हुआ है। बडे प्रेम से उन्होने हमारा स्वागत किया। वरामदे मे वैठकर हम लोग बातें करने लगे। शेष साथी भी धीरे-धीरे वहा पहुच गये। सहसा वावाजी बोल उठे, "आप लोग विद्वान हैं, अग्रेजी भी खूब जानते होंगे। मैं एक अग्रेजी कविता पढता हू उसका ठीक अर्थ आप समझा दीजिये।"

हम लोग एक-दूसरे का मुह देखने लगे। वावाजी अग्रेजी कविता जानते है, देखने से तो ऐसा नही लगता। लेकिन इस प्रदेश मे एक-से-एक वढकर अद्भुत व्यक्ति मिलते हैं। न जाने कौनसी कविता पढेंगे? मैंने कहा, "हमारे दल मे घोरपडे सवसे अधिक अग्रेजी जानते हैं। वह शायद आपकी कविता का अर्थ बता सकें।"

घोरपडे वोले, "मैं भी वहुत तो नही जानता, लेकिन हा, सब मिल-कर उसका अर्थ करने का प्रयत्न करेंगे।"

उत्सुकतापूर्वक हम सव वावा की ओर देखने लगे, लेकिन जव उन्होने कविता पढी तो सहसा हँसी आ गई। सुप्रसिद्ध रामायणी श्रीराधेश्याम

कथावाचक ने बहुत पहले एक ही प्रार्थना कई भाषाओ मे लिखी थी। वही उन्होने पढी। उनका उच्चारण बडा विचित्र था। कहूगा, अशुद्ध था। वह 'आर्ट' को 'आर्ड' और 'लॉर्ड' को 'लार्ट' बोलते थे। जैसे 'दाऊ आर्ट माई लॉर्ड' को उन्होने पढा—'दाऊ आर्ड माई लार्ट।' इसका अर्थ करना भी क्या कोई कठिन काम था !

बाबा ने हमको जो प्रसाद दिया, वह फलो का कसार था। लेकिन स्वादिष्ट था। पानी पिलाने के लिए वह स्वय नीचे आये। बडा शीतल जल। क्लान्ति जैसे तिरोहित हो गई हो। बाबा सचमुच सरल स्वभाव के प्रेमी जीव है, जैसे वैष्णव सत हुआ करते हैं। प्राय. यही रहते हैं। लगभग २० वर्ष पूर्व यह मदिर बनाया था, तबसे उसीकी पूजा करते आ रहे हैं। इस गुहा का नाम कनकू वडार अर्थात् कनकगिरि गुहा है। दो वर्ष तक उनके गुरु भी उनके साथ थे, परतु फिर उनकी मृत्यु हो गई। फलाहार के नाम पर अधिकतर आलू ही मिलते हैं, लेकिन रामदाना—जिसे चौलाई या मारचा भी कहते हैं—छावरा, छेमी अर्थात् राजमा आदि भी भक्त लोग कभी-कभी भेट कर जाते है। एक बार भक्त लोग फलाहारी दाने और आलू भेजना भूल गये। बर्फ गिरने लगी, लेकिन भोजन नही पहुचा। उपवास के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही था। उस समय दो घड़े गगा जल भरकर उन्होने अपने पास रख लिये और 'रघुपति राघव राजाराम' रटने लगे। वह गगोत्री जा सकते थे। लेकिन भोजन के लिए प्रतिज्ञा तोडना उन्होने स्वीकार नही किया। इसी समय सहसा गगोत्री मे दयाल मुनि को याद आई कि शायद इस बार बाबा के पास भोजन के लिए कुछ नही भेजा गया। तुरंत उन्होने अपने आदमी भेजे। उन्होने बाबा को गगाजल के घडो के पास अर्धमूर्च्छित अवस्था मे पाया। प्राण बच गये। पानी पीते समय सहसा श्रीप्रभा बोल उठी, "ओह, कैसा विकट मार्ग था।"

बाबा ने उत्तर दिया, "प्रभु का मार्ग सरल हो तो सब न आ जाय।"

अब गगोत्री केवल एक मील ही तो रह गई थी। पत्थरो पर कूदते हुए जिस समय हम लोग धर्मशाला पहुचे, ग्यारह बज रहे थे। इस बीच यहां निरतर वर्षा होती रही। इसलिए हमारे साथी बहुत चिंतित

हो उठे। हम सबको सकुशल देखकर वे बडे प्रसन्न हुए। पुलिसवाला भी गिडगिडाने लगा। लेकिन हम थे कि अपने गौरव की कथा सुनाते न थकते थे, जैसे सशरीर स्वर्ग हो आये हो। इसी खुशी मे उस दिन गरमागरम जलेबी का भोजन हुआ।

: २१ :

जब यक्ष आये

लौटने से पूर्व यहा के कुछ प्रसिद्ध साधुओ से भेंट हुई। अधिकतर वे वैराग्य भक्ति-युक्त निवृत्ति-मूलक मार्ग के साधु हैं। बारहो महीने नग्नावस्था मे रहते हैं। हठयोग के द्वारा उन्होने अपने शरीर को साध लिया है। उनका विश्वास है कि ससार मे रहकर मुक्ति नही मिल सकती है। वहा तो मात्र माया है। कुछ लोग कहते हैं, "यह समर्पित जीवन है।" लेकिन किसके प्रति ? वे कहेगे, "ब्रह्म के प्रति।" लेकिन मनुष्य क्या ब्रह्म की सर्वोत्तम कृति नहीं है ? ससार क्या ब्रह्म के द्वारा निर्मित नही हुआ है ? जो ब्रह्म को नही मानते, उनके लिए ससार मिथ्या नहीं है, लेकिन जो ब्रह्म के उपासक हैं, उनके लिए भी ससार से पलायन मुक्ति है, यह बात समझ मे नही आती। यह तो अपनेको इतिहास से, काल से, सबसे तोडने जैसा है। वस्तुत. विषाद और विरक्ति आर्य सस्कृति के लिए विजातीय हैं। उपनिषद युग के बाद ही इन तत्वो का प्रवेश हुआ। फिर भी यहा के साधुओ के संबध में बहुत-कुछ सुनते आ रहे थे। दर्शन की लालसा हो आना स्वाभाविक था। स्वामी सुदरानदजी को आगे करके हम इस अभियान पर चल पडे। मानो चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा, "आप एक-दो दिन मे यहा के साधुओ का परिचय नही पा सकते, ऊपरी रूप ही देख सकेंगे। राम जब वन जा रहे थे तब मार्ग मे उन्होंने एक बगुले को देखा। नदी किनारे वह एक पैर से खडा हुआ साधना कर रहा था। उन्होंने

लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, इसकी साधना को देखो। यह सचमुच साधु है।"

उसी समय नदी से एक मछली निकली। बोली, "हे राम, यह वगुला कितना वडा साधु है, यह मैं जानती हू। आप तो एक क्षण मे यहा से चले जाय।"

इस कथा पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नही है। आज के समग्र साधना के वैज्ञानिक युग मे इस व्यक्तिगत हठयोग की उपयोगिता सहज ही समझ मे नही आ सकती। सबसे पूर्व हम स्वामी सुदरानदजी के गुरू स्वामी तपोवन महाराज के आश्रम मे गये। लगभग डेढ वर्ष पूर्व, १६ जनवरी १९५७ को, उनका शरीरात हो चुका था। अपनी मातृभूमि केरल का त्याग करके वह लगभग तीस वर्ष उत्तर-काशी और गगोत्री मे रहे। शकर की जन्मभूमि कालटी (कालडी) मे उनका जन्म हुआ। शकर की भाति ही वह भी वेदात के पडित थे। स्वभाव के सरल, परदुखकातर और निरभिमान थे। सभी साधु-सत आज भी वडी आत्मीयता से उनका स्मरण करते हैं। वह निष्काम कर्मयुक्त प्रवृत्ति मार्ग के साधु थे। लोक-कल्याण और लोक-सग्रह मे उनकी आस्था थी। सन् १९४५ मे श्री महावीरप्रसाद पोद्दार यहा आये थे। उन्होने स्वामीजी के सबध मे लिखा है:

"वात तो ठीक ढग से समझते हैं। उदार दृष्टि और व्यवहारी हैं। देश-भक्ति को ईश्वराराधन ही मानते हैं। कहते थे कि अच्छी नीयत से ईश्वरार्पण वुद्धि मे किये गए सत्कर्म मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाते हैं।"

गगोत्री क्षेत्र के अनेक अगम्य प्रदेशो मे जाकर वहा की सुषमा को उन्होने देखा था। तपोवन और नदनवन जैसे सुरम्य प्रदेशो मे वह ब्रह्म की उपासना किया करते थे। वह महान् पर्यटक थे। कई पर्वत-शिखर और हिमानिया उन्होने खोज निकाली थी। अपनी पुस्तक 'ईश्वरदर्शनम्' के दूसरे खण्ड मे उन्होने उनकी प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है। उनकी कुटिया मे अब उनका चित्र लगा है और वहां रहते हैं हमारे सुपरिचित स्वामी सुदरानदजी।

यहा के सन्यासियो मे सबसे विख्यात हैं स्वामी कृष्णाश्रमजी। पडित मदनमोहन मालवीय ने काशी विश्वविद्यालय का शिलान्यास उन्ही-ने कराया था। उनकी विद्वत्ता और महानता का यह साक्षी है। भागीरथी

तट पर अपने आश्रम मे आजकल वह समाधिस्थ होकर बैठे हैं। क्षीण-काय, श्यामल वदन, रक्तिम नेत्र। पुतलियो की गति से ही पता लगता है कि वह जीवित हैं। चालीस वर्ष से वह इसी अवस्था मे है। प्रथम दृष्टि मे ऐसा आभास होता है कि कोई पद्मासनस्थ जैन मूर्ति हो। तीस वर्ष से एक पहाडी युवती उनकी सेवा मे रहती है। पुरुषो जैसी वेपभूषा मे रहने-वाली वह महिला बोलती भी पुरुषवाचक रूप मे ही है। कहने लगी,

"अपनी सेवा मे लेने से पूर्व स्वामीजी ने हमसे तीन वर्ष तक कठोर साधना कराई। कहते थे, किसी काम को करने से पहले उसके योग्य बनो। तीन साल बाद कठिन परीक्षा लेकर देखा। अब तो लगभग तीस वर्ष से उनके साथ हू।"

फिर बोली, "मौन धारण करने के बाद कुछ दिन तक तो स्वामीजी को जो कहना होता था, लिखकर दे देते थे। अब तो वर्षों से वह भी छोड दिया है। समाधि मे लीन रहते हैं। जो खाने को मिल जाता है, खा लेते हैं।"

शिष्या की बातें सुन रहे थे, लेकिन दृष्टि कोठरी मे पद्मासनस्थ दिगबर स्वामीजी की ओर थी। सोच रहे थे, ससार से दूर एकात मे साधना द्वारा क्या मुक्ति हो सकती है? गुरुदेव ने लिखा है, "मुक्ति नही, मेरे लिए मुक्ति सबकुछ त्याग देने मे नही है। प्रभु ने ही तो हमे अगणित बधनो मे जकडा है।"

हठयोग निस्सदेह बडा कठिन है। लेकिन त्याग का यह मार्ग क्या सबके लिए सुलभ है? उसकी उपयोगिता क्या इतनी सहज है? आज न दूरी रह गई है, न काल ही अकुश है। तब व्यक्ति की यह एकात साधना किसको आकर्षित करेगी?

हम लोग बरामदे मे दूसरे दर्शनार्थियो के बीच बैठे थे कि सहसा एक व्यक्ति ने यशपालजी के कान मे आकर कहा, "आप कुछ धन भेंट करना चाहे तो स्वामीजी उसे स्वीकार कर लेंगे।"

हमने उनकी ओर देखा। स्पष्ट ही वह यही के व्यक्ति थे। पर उनकी प्रेरणा हमे सक्रिय नही कर सकी। आत्म-पीडन का यह मार्ग हमारे अतर मे श्रद्धा का ज्वार नही उठा सका। श्रद्धा के अभाव मे दान

व्यर्थ ही रहता है। हम केवल प्रणाम ही कर सके।

नेपाल-निवासी स्वामी नरहरि बडे सौम्य, सरल हैं। खूब खुलकर हँसते है। श्वेत केश, दाढी भरा मुख, स्फूर्ति से पूर्ण, हँसते है तो आगे के टूटे दात दिखाई दे जाते हैं। वस्त्र धारण नही करते। आयु होगी पैसठ के आस-पास। दस वर्ष की अवस्था मे ही उन्होने अपनी जन्मभूमि छोड दी थी। बनारस में शिक्षा पाने के उपरात तीर्थों का भ्रमण करते रहे। बाईस वर्ष से गंगोत्री मे ही हैं। यशपाल ने उनसे पूछा, "क्या आप बता सकेंगे कि घर-गृहस्थी मे रहते हुए आत्मोन्नति किस प्रकार की जा सकती है ?"

वह बोले, "सब यही पूछते है। मैं कहता हू, गृहस्थी मे रहकर कोई भी आत्मोन्नति नही कर सकता। आत्मोन्नति क्या है ? चिंता से मुक्त होकर निरतर आनद मे वास करना। जीवन की तीन अवस्थाए हैं—जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। अतिम अवस्था वास्तविक है। परतु वह बिना घरबार त्यागे, बिना एकात साधना के प्राप्त नही हो सकती। आत्मोन्नति के लिए घर को लात मारकर जगल मे घुस आना चाहिए।"

यशपाल ने कहा, "लेकिन हमारे सामने तो गाधीजी का आदर्श है। वह दुनिया मे रहे और उत्तरोत्तर आत्मोन्नति करते रहे।"

वह बोले, "गाधीजी धन्य हैं। वह सत्पुरुष थे, पूज्य थे। पर वह योग की हमारी कोटि मे नही आते। उनका मार्ग आत्मोन्नति का मार्ग नही है।"

विनोबाजी की चर्चा चलने पर वह बोले, "मैं उन्हे नहीं जानता। उनका नाम तक नही सुना।"

यशपाल ने पूछा, "क्या आप सब साधु-सत कभी धर्म-चर्चा के लिए एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं ?"

वह बडे जोर-से हँसे और पेट पर हाथ मारकर बोले, "क्यो नही ? इस पापी पेट के लिए भोजन लेने सब सदाव्रत मे जाते हैं।"

इस तीखे व्यग्य के पश्चात् हम उन्हें प्रणाम करके आगे बढ गये और पहुच गये स्वामी ब्रह्म विद्यानद तीर्थ के आश्रम मे। वह दण्डी स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी उन्मत्त हँसी और उनकी रोचक कथाए आज

भी हृदय पर अकित हैं । जब हम उनके पास पहुचे तो अपने आश्रम के बरामदे मे आसन पर विराजमान थे । बडी आत्मीयता से उन्होंने हमारा स्वागत किया । खूब बाते हुईं । विशेष रूप से हम लोग यक्ष और किन्नरो की चर्चा करते रहे । वह कई बार यक्षो से भेंट कर चुके हैं । मैंने निवेदन किया, किसी एक भेंट के सबध मे बताइये तो ।

वह बोले, "सुनो, भयकर शीतकाल के समय की बात है । अकस्मात् दो साधु आश्रम मे पधारे और बोले—महाराज, भोजन की इच्छा है । आलू और परावठे खाना चाहते हैं ।

"मैंने उनका स्वागत किया, लेकिन उस समय आलू मिलने की सम्भावना नही थी । फिर भी एक व्यक्ति को बाजार भेजा । उसे कही भी आलू नही मिले । परतु न जाने किस आतरिक शक्ति के सकेत पर वह आश्रम के आगन को खोदने लगा । अचानक उसे कई कद मिल गये । मैंने तो यहा कभी कद बोये नही थे तो ये कहा से आ गये ? परीक्षा के लिए दो-तीन कद अपने पास रखकर शेष का साग बनाया । नमक चखने के बहाने मैंने पाया कि इनका स्वाद तो अमृत के समान है । उन्होंने बडे प्रेम से भोजन किया । हाथ धुलाकर जैसे ही मैं मुडा, वे दोनो साधु एकाएक जैसे अदृश्य मे लुप्त हो गये । जहा कद रख गया था, वहा भी कुछ नही था । साधारण मनुष्य इस प्रकार गायब नहीं हो सकते । यहा की भूमि बडी पवित्र है । और ऐसे पवित्र स्थानो पर यक्षो का निवास होता हैं ।"

उन्होने एक और कथा सुनाई । कहने लगे—"एक बार कुछ साधुओ के साथ हम नदन-वन गये । बडा पवित्र स्थान है । भोजन साथ ले गये । वहा पहुचकर मन बहुत प्रसन्न हो उठा । थकावट क्षण-भर मे दूर हो गई । बडे प्रेम से भोजन करने बैठे, लेकिन पाया कि साग मे नमक ही नहीं है । तब हम एक दूसरे को दोष देने लगे । साधु का धर्म सयम है, लेकिन ऊचाई पर सयम नही रहता । तभी क्या देखा, एक चरवाहा चला आ रहा हैं । गद्दी लोग इधर आते ही हैं । कुछ आश्चर्य नही हुआ । हमारे पास आकर वह बोला, "स्वामीजी, यदि आपके पास साग हो तो मुझे भी देने की कृपा करे ।"

मैंने कहा, "साग तो हमारे पास बहुत है, लेकिन उसमे नमक नही ।"

चरवाहा तुरत बोला, "नमक मेरे पास बहुत है, यह लीजिये।"

उसने हमे नमक दिया, हमने उसे साग दिया। लेकिन साग लेते ही वह ऐसा गायब हुआ कि कही पता ही नही लगा। दूर-दूर तक देखने पर एक भी भेड-बकरी नही दिखाई दी। अब बताइये, वह यक्ष नही तो और कौन था?"

ऐसी कथाओ का कोई अत नही है। मनुष्य के अतर मे शिशु सदा बैठा रहता है। इसलिए रस भी है। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग मे इन चमत्कारिक कथाओ पर कौन विश्वास कर सकता है? इसलिए जब एक कदरा मे हमने जटाजूटधारी अवधूत रामानदजी से भेट की तो मन मे यही प्रश्न उमड-घुमड रहा था। गुहा की छत और दीवार सब इतने छोटे थे कि हमे झुककर प्रवेश करना पडा। बैठने की सुविधा ही वहा मिल सकती थी। धूनी के कारण आखे भर-भर आती, लेकिन कुछ ही चर्चा करने के बाद मैंने उनसे पूछा, "स्वामीजी, क्या आपने कभी यक्ष अथवा किन्नर से भेट की है?"

"नही। यक्ष और किन्नर कभी मानव रूप धारण नही करते। सुनते है कि पक्षी के रूप मे वह कभी-कभी आते है। हा, स्वप्न मे मैंने सिद्ध पुरुषो के दर्शन अवश्य किये है। अपने अनुभव से एक बात कहता हू कि जब यहा चारो ओर हिम का साम्राज्य छा जाता है तो शखध्वनि अवश्य सुनाई देती है। ऐसा भी लगता है, मानो कोई निरतर वेदपाठ कर रहा हो। लेकिन जानते हो, यह क्या होता है? जब भागीरथी पर बर्फ की परते जम जाती है तो नीचे मे उठता हुआ भागीरथी का कलकल-नाद ऐसा सुनाई देता है मानो ऋषिगण वेदपाठ कर रहे हैं। और जब वायु, जो निरतर झझा के रूप मे चलती रहती है, वृक्षो से टकराती है तो वह शख-ध्वनि के समान स्वर पैदा करती है। कभी-कभी वीणावादन का स्वर भी मैंने सुना है। झझा जब बहुत तेज हो जाती है तो शिव ताण्डव करने लगते है। जब वायु की गति धीमी पडती है तो पार्वती लास्य नृत्य मे मग्न हो जाती है। यह सब वायु का खेल है।

सुनकर मन आश्वस्त हो आया। कम-से-कम एक साधु तो ऐसा है, जिनकी दृष्टि अलौकिकता की दीवारो को छेदकर सत्य के दर्शन कर सकती

है। यहा की प्रकृति से वह वहुत प्रभावित हैं, और दस-वारह वर्ष से यही रह रहे हैं।

गगोत्री मे सवसे अधिक वार्तालाप करने का अवसर मिला स्वामी मस्तराम[1] से। स्थूलकाय, नग्न शरीर, कीचभरे रक्त नयन, भभूतभरी उलझी जटाए, वात-वात पर जीभ निकालनेवाले। ऐसा लगता था मानो आदिम युग का कोई गुहा-मानव वहा आ निकला हो। जहा उन्मुक्त भागीरथी चट्टानो मे स्थापत्य कला के नए-नए मान स्थापित करती है वही दक्षिण तट पर गगनचुम्वी नग्न नैलग श्रेणी की छाया मे उनका आश्रम है। दो-तीन कुटीर, उनके आगे एक धूलभरा तग वरामदा, सामने नाना प्रकार के लताकुज और वृक्षो से परिवेष्टित एक छोटा-सा आगन। जव हम वहा पहुचे तो वरामदे मे कडवा धुआ उमड-घुमड रहा था। आखे फाडकर देखना पडा। पाया कि एक फटी-सी चटाई पर कुछ व्यक्ति मूर्त्तिवत वैठे हैं। कई क्षण देखते रहे। कभी लकडी उठाकर धूनी मे डालते कभी आखो के आगे हाथ रखकर सामने के व्यक्तियो को देखते। कभी आख, नाक और मुह से वहते पानी को उपेक्षा से पोछते, लेकिन उनका वोलना और जीभ निकालना कभी वद नही होता। यशपालजी ने पूछा,

"महाराज, हम लोगो का दुनिया को छोडकर एकात मे जाकर रहने मे विश्वास नही है। ससार मे रहते हुए ही आत्मिक विकास के अभिलाषी हैं। कोई मार्ग वताइये।"

आखो से धुए के कारण झरते पानी को पोछते हुए उन्होने कहा, "यह असम्भव है। यदि आत्मा की उन्नति चाहते हो तो घर-वार छोडो। मोह-माया का त्याग करो और अनासक्त भाव से एकात मे ईश्वर-चितन करो। यह काम ससार मे रहकर नही हो सकता। यही आना होगा।"

मैंने कहा, "महाराज, घर-वार छोडना वहुत कठिन है।"

वोले, "तव जीवन-भर उसी चक्कर मे पडे रहो। लेकिन मैं कहता हू, कठिन कुछ नही है। मत जाओ घर। रह जाओ यही। वहा चण्डिकाए

---

१ अव उनका देहात हो गया।

बैठी है, सूत लेंगी। वहा आप लोगो का उद्धार सम्भव नही है। धन की तृष्णा बडी बुरी होती है। आप लोगो के चेहरे से लग रहा है कि आप ध्यान नही करते।"

लेकिन जब उन्हे मालूम हुआ कि हम साहित्यिक है तो सहसा उनका स्वर बदल गया। गद्‌गद् होकर बोले, "अहा, आप तो सरस्वती के उपासक है। भगवान के रूप है। आपकी दूसरी बात है। आपको बहुत जल्दी वैराग्य होगा। आप आर्यसमाजी तो नही है। सनातनी है न ?"

मैंने कहा, "पता नही, हम क्या है! लेकिन श्रीअरविंद के इस वाक्य मे हमारी आस्था है कि काम करते समय प्रार्थनामय रहो, क्योकि भगवान के प्रति शरीर की सर्वोत्तम प्रार्थना कर्म ही है।"

वह बोले, "हा-हा, यह ठीक है। कर्म करते हुए चिंतन हो सकता है। पर अलग से भी करो। रात को भोजन मत करो। ब्राह्म मुहूर्त्त मे उठकर एकात मे एक घण्टा ध्यान करो। किसीके पास मत सोओ।"

बीच-बीच मे वह भजन गा उठते—"ऊधो मन नाही दस-बीस।" अथवा "मेरे तो गिरधर गोपाल।" कभी-कभी इस प्रकार बोलते जैसे मा अपने बच्चो को लाड लडाती है। उनका एक प्रिय शिष्य सदाशिव दूर गोमुख के पास एकात मे कुटीर बनाकर रहता है। उन्होंने मुझसे कहा, तब तुम लौटकर मत जाओ। यही साधना करो। वह देखो, वह कुटी खाली है। उसमे मेरा शिष्य सदाशिव रहता था।

और वह जैसे विह्वल-विकल हो उठे। कहा, "भइया, उसे वैराग्य हो गया है। पहले मेरे पास रहता था। अब न जाने क्या हुआ। आदमियो से दूर भागने लगा। बहुतेरा समझाया, पर नही माना। भयानक वन मे अकेला रहता है। उमर कुछ नही, लडका है, पर बडा विद्वान है। आखे तेज से चमकती हैं। दुनिया उसके दर्शनो को तरसती है, पर वह निर्दयी आता ही नही। क्या करू, कैसे उसके पास सामान भिजवाऊ।"

मैं हतप्रभ सोचने लगा—निवृत्ति मार्ग के साधुओ में इतनी ममता है तो फिर हम गृहस्थो को माया मे बचने का उपदेश क्यो देता है। क्या यह आसक्ति नही है यशपाल बोले, "महाराज अभी तो आप हमसे कह रहे थे कि मोह-माया छोडो, पर आप तो स्वय इससे मुक्त नही है।

आप जो कुछ कह रहे है, वह क्या आपके शिष्य के प्रति आपकी आसक्ति नही है ?"

स्वामीजी कोई समाधानकारक उत्तर न दे सके। चलते समय फिर बोले, "लौटकर मत जाओ, यही रहो।"

मैंने उत्तर दिया, "स्वामीजी इस बार तो जाना ही होगा। चण्डिकाओ से पूछकर नही आये हैं। दूसरी बार सबकुछ त्याग कर आयेंगे।"

गगोत्री मे और भी अनेक साधु हैं। लेकिन उनकी साधना केवल भोजन की सीमा तक ही है। हो सकता है, भयकर वन-प्रदेश मे दो-चार सच्चे साधु भी साधना मे लीन हैं, लेकिन हम उनको नही खोज सके। आज सोचता हू कि इस वैज्ञानिक दुनिया मे जब सबकुछ बदल रहा है, स्थापनाए तक बदल चुकी हैं तब इतिहास से अपनेको मुक्त करके साधना के नाम पर इस प्रकार का जीवन बिताना क्या पलायन नही है ? साधना का मूल्य है, एकात का भी है। लेकिन अपने आपको ससार से सम्पृक्त करके केवल अपनी मुक्ति की बात सोचना किसी भी दृष्टि से समाधानकारक नही है। हम प्रवृत्ति और निवृत्ति की व्याख्या मे नही उलझना चाहते, लेकिन जो ससार मे रहकर भी साधना करने की शक्ति पा लेता है, वही हमारी दृष्टि मे सच्चा साधु है। प्रकृति का एकात साधु और गृहस्थ दोनो के लिए समान रूप से कल्याणकर है, लेकिन उसे पलायन का साधन बना लेना क्या मुक्ति की राह है ? जब हम जीना चाहते हैं तो सुख-दु ख, हर्ष-शोक, जय-पराजय के द्वन्द्वो से मुक्ति क्यो चाहे ? जीवन के अभाव मे मृत्यु क्या है ? फिर अमरता का मोह हमे पलायन के मार्ग पर क्यो आकर्षित करे। गुरुदेव रवीद्रनाथ ठाकुर के शब्दो मे, मैं तो 'मानुषेर माझे बाचिबार चाई।' मनुष्यो के बीच मे अस्वीकार करके नही जीया जा सकेगा। प्रकृति मेरे अह के दश को दूर करेगी और मेरे आत्मविश्वास मे आस्था का बल भरेगी।

: २२ :

"भैया, कलेजा तो कभीका जल गया"

उस दिन ६ जून थी। २१ दिन तक हिमालय के सुरम्य प्रदेशो मे घूमने के वाद अब वापस लौटना था। मन न जाने कैसा होने लगा। अभी तो आत्मीयता स्थापित कर पाये थे कि अभी विछोह सामने आ खडा हुआ। मन इसीलिए वारवार भीग आता है, लेकिन घोरपडे का आदेश है। सो विदा, हे स्वर्ग ! मर्त्य लोक का वुलावा आ गया है। वही कलह, कलक, विद्वेष, मालिन्य, व्यापारिक स्नेह, शिष्टाचार-प्रेरित मित्रता और उपेक्षित आत्मीयता।

पाच वजे से पूर्व ही मदिर मे पहुच गये। भागीरथी मे आचमन किया। जी भर प्रकृति की इस छवि को नयनो मे भरा। चलने से पूर्व महेद्र ने वडे स्नेह से पूरी और आलू का साग हमारे लिए तैयार कर दिया था। निश्चय किया, पद्रह मील चलकर हरसिल मे आज की रात वितायेंगे। न वर्षा थी, न वादल, निपट नील गगन, अरुण किरण-जाल से आखमिचौनी खेलते रजत हिमशिखर, आकाश की ओर भुजा पसारे गगनचुम्वी समाविस्थ देवदार के वन, हरा-भरा छाया-पथ, मन वार-वार वही रम जाने को मचलता था। परतु आगे का भयानक सर्पाकार पातालगामी पथ, जिसके प्रत्येक मोड पर मृत्यु वरमाला लिये मुस्करा रही थी, हमे पुकार रहा था।

लेकिन जैसे ही हम भैरव चट्टी पर पहुचे, हमारी दृष्टि उस आगन की ओर गई, जहा जाते समय तिल धरने को जगह नही थी और जो अव कंगाल की वधू की तरह निरीह दृष्टि से हमारी ओर टुकुर-टुकुर निहार रहा था। न अव गजेडी साधुओ का जमघट था, न वाचाल संन्यासिनी का वाक्-जाल। वस, निपट एकाकी एक अधेड ग्रामीण धरती पर लेटा था। सहसा एक साथी ने कहा, "अरे देखो तो, यह कैसे सास ले रहा है।"

निमिष मात्र मे उनके चारो ओर एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गई। घुटने तक धोती, मैला कुर्ता, खिचडी वाल, कीचभरे सूजे नयन, सूजे पैर, लवी-लंवी सासें...मेरा मस्तिष्क तीव्र गति से घूमने लगा।

वेचारा कितनी साध लेकर घर से चला होगा। कैसी कठिनाई से सत्तू खा-खाकर ये भयकर मजिलें पार की होगी, पैरो मे जूता नही, वदन पर गरम कपडा नही। इस हिम प्रदेश मे केवल श्रद्धा की गरमी से ही यहा-तक आ पहुचा है। वस, अव एक मजिल ही तो शेष है। लेकिन सहसा साथी ने कहा, "तुम्हारे पास दवा है, इसे दो न।"

तुरत शीशी निकालकर उसके मुह मे दो गोलिया डाली और दृष्टि उसके मुख पर गडा दी। सास उसी तरह चल रही है। मुह खुला है। लेकिन यह क्या ? एक हिचकी आई, एक साहव चीख उठे, "देखो-देखो, दवा पेट मे गई।"

दुकानदार बोला, "मौत इसे कभीका ले जाती, पर इसके प्राण गगोत्री जाने की आशा मे अटके हैं।"

ये शब्द जैसे मेरे मस्तिष्क मे वज उठे। लगा, जैसे प्रभात किरणो का आलिगन करते हिम-शिखर, उर्ध्ववाहु गगनचुवी देवदार, कलकल करती भागीरथी की धारा, जैसे वह सारा सुरम्य पर्वत प्रदेश, यहातक कि तीर्थ प्रहरी काल भैरव, सभी जैसे पुकार रहे हो, "इसके प्राण गगोत्री जाने की आशा मे अटके हैं।'

तभी मेरे साथी ने मुझे झझोरकर कहा, "देखो-देखो, वावा ने आखें खोली, दूसरी खुराक दो।"

सचमुच उसने एक वार अपनी मिचमिची आखें खोली। चारो ओर देखा। ओह, कितनी सूनी, कितनी निरीह थी वह कातर दृष्टि। मेरा अतर जैसे फट जायगा। मैंने आशा-निराशा के झूले मे झूलते हुए उसके मुह में दो गोली और डाली। आखें, फिर मुद गई, सास तीव्र हो उठी। गर्दन हिला-हिलाकर यात्री लोग अपने-अपने पथ पर बढ गये। तभी मेरे साथी ने वावा के कान के पास मुह ले जाकर पुकारा, "वावा, चाय पीओगे।"

वावा ने अथक परिश्रम से आखें खोली। हाथो को धरती पर रगडा, पैर हिलाये। चायवाला चाय ले आया था। साथी ने वृद्ध को सहारा दिया। वह वुरी तरह काप रहा था। उसने दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखा, जैसे गिडगिडाकर कह रहा हो, 'मुझे गगोत्री पहुचा दो।" न जाने

क्या हुआ, मेरी दृष्टि सामने के हिमशिखरो पर जा अटकी। जैसे मैंने ताल्सताय की शुभ्र श्वेत भव्य मूर्ति को देखा, जो घाटी से आकाश की ओर उठती चली जा रही थी। फिर देखा कि उसकी कहानी, 'दो बूढे' के दोनो यात्रियो को। एक बूढा जैसे दुर्गम पथो पर भटककर घाटी मे लड-खडा रहा था। दूसरा बूढा शिखर पर बैठा हँस-हँसकर किरणो से वाते कर रहा था। एकाएक मेरी आखो मे झाका, मुस्कराया। बोला, "बूढे को गगोत्री पहुचा दो। घर जाने मे दो दिन की देर हो जायगी, क्या वात है। एक वार फिर..."

मैंने जोर-जोर-से आखो को मला, वार-वार मला। कही भी तो कुछ नही था। बूढा लडखडाते, कापते हाथो मे गिलास थामे धीरे-धीरे उसे होठो की ओर ले जाने की भागीरथ चेष्टा कर रहा था। वोझी हँस रहा था, "शावाश वावा, शावाश, पिओ, हा पिओ।"

मैं भी मुस्करा आया। दो गोलियां और उसके मुह मे डाल दी। उसने चाय का घूट भरा। साथी ने मुडकर मुझसे कहा, "अब ठीक है। आओ, चले। हमारा वोझी थोडा रुककर आयेगा, अभी दवा देनी है। चाय भी पिला देगा।"

और लकडी उठाकर वह आगे बढ गया। मैंने एक वार फिर उस बूढे को देखा, जो उसी तरह कापता, लडखडाता चाय के घूट भर रहा था। दुकानदार ने हमे जाते देखकर कहा, "वावूजी, इसके गगोत्री जाने का इतजाम करते जाइये, प्राण वही अटके हैं। आपको आशीश देगा।"

साथी ने नीचे से आवाज दी, "क्या करने लगे? अभी दस मील चलना है और धूप निकल आई है।"

मैंने तेजी से दवा की शीशी निकाली, कुछ गोलिया कागज मे बांधी, पैसे दूकानदार को दिये और कहा, "अभी यह चलने योग्य नही है। दो दिन तक इसे दवा देते रहना। चाय, दूध भी देना, अच्छा।"

और यह कहकर मैं तेजी से नीचे की ओर भागा। जाते समय जो भयंकर चढाई थी, वही अब उतराई वन गई थी। उतराई और भी भीषण होती है। पैरो को साधना शव-साधना से भी कठिन हो रहता है। फिर भी उसे पार कर ही गये। उसके वाद जागला चट्टी और धराली के

राजमार्ग पर वृक्षो की छाया मे चलते हुए हम धराली के पास गगा-तट पर रुके। रेती के विस्तार पर डेरा डालकर भोजन के लिए बैठे। लेकिन यह क्या ! साग मे नमक ही नही है। इधर-उधर दृष्टि उठाई। बहुत लोग घूम रहे थे, लेकिन उनमे यक्ष कोई भी नही था। महेद्र ने हमे कैसा धोखा दिया !

यह चर्चा चल रही थी कि तेजी से एक व्यक्ति हमारी ओर आता हुआ दिखाई दिया। पास आकर बोला, "क्या आप लोग गगोत्री से वापस लौट रहे हैं ? आप लोगो ने ही पण्डित महेद्र से पूरिया बनवाई थी ?"

मैंने कहा, "हा-हा, क्या बात है ?"

विनम्र स्वर मे वह बोला, "साब, वह साग मे नमक डालना भूल गया। उसे बहुत अफसोस है। माफी मागी है और यह नमक भेजा है।

हठात् उस व्यक्ति को देखते रह गए। नौ मील के इस पहाडी मार्ग पर यह यक्ष नमक लेकर हमे ढूढता रहा। आदमी के भीतर यह यक्ष कहा छिपा रहता है ? उसको देखने की दृष्टि हम क्यो नही पाते ?

आगे के मार्ग पर भेडो के दल मिले। आभूषणो से लदी तिब्बती बालाए मिली। सामान लादकर ऊपर ले जाती चवर गाए मिली। मुखबा गाव का एक बालक बचनसिह मिला। उसकी दृष्टि मे न जाने क्या था कि शीघ्र ही हम उससे घुल-मिल गये। छोटी-सी उम्र मे कमाई करने के लिए बाध्य हो गया है। बहन के पास रहता है, जो सम्पन्न है और भाई को प्यार भी करती है। पर पढने जायगा तो काम कौन करेगा।. .

बहुत देर तक बहन के घर की बातें सुनाता रहा। कोई शिकायत नही। आक्रोश नही। कुछ ऐसी विवशता थी, जिसे उसने अनिवार्य मानकर ओढ लिया था। यह आयु और यह विवश वैराग्य !

तभी एक तरुणी को देखा, जो कडी मे बैठी हुई कराह रही थी। व्याकुल स्वर मे वह हमसे बोली, "भइया, आप बडे भाग्यवान हैं, जो पैदल-यात्रा करके लौट रहे हैं। मेरा भी यही सकल्प था, परतु एक चट्टी पर स्नान करते समय पैर मे पत्थर लग गया। अगले दिन क्या देखा कि वही पक गया है। अब मैं चल भी नही सकती। भइया, मेरा भाग्य लगडा है।"

उसकी वेदना की गहराई को मैंने स्पष्ट अनुभव किया। बोला, "भाग्य कभी लगडा नही होता। इस मार्ग पर चोट जितनी सरलता से लग जाती है उतनी ही शीघ्र ठीक भी हो जाती है। यह विश्वास रखिए।"

नही जानता उसे विश्वास आया या नही, पर क्षण-भर के लिए उसके नेत्र चमक अवश्य उठे।

जिस समय हरसिल पहुचे, सवा बारह बज चुके थे। डाक बगला खाली पडा था। सारा दिन बहुत आनद से जी-भरकर घूमे। राजकीय स्कूल मे जाकर पिछले दिनो के अखबार देखे। ऊनी वस्त्रो का केन्द्र देखा। सेब के बागान भी घूम-घूमकर देखे। कल्पना की उस युग की जब यह प्रदेश कुल्लू और काश्मीर की तरह सेबो की घाटी बन जायगा, लेकिन जब मुख्याध्यापक महोदय से बातें हुईं तो वह बोले, "आप लोग दो दिन के लिए यहा आते हैं। सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा लगता है। लेकिन हमसे पूछिए। कैसी-कैसी कठिनाइया हमे उठानी पडती हैं। यही सुदर प्रकृति तब हमारे लिए मृत्यु-रूपा हो जाती है। बडी कृपा होगी, यदि आप किसीसे कहकर हमारा तबादला नीचे करा दें।"

कठिनाइया हैं, यह ठीक है, लेकिन यह भी ठीक है कि हम उन कठिनाइयो को सुविधाओ मे बदलना नही जानते। यह कला जानते थे अग्रेज। केवल पति-पत्नी अपना ससार बनाकर इन निर्जन-दुर्गम प्रदेशो मे पूरा जीवन बिता देते थे। स्थान-स्थान पर बने हुए पुल और बंगले उनके साहस की आज भी साक्षी दे रहे हैं। यह विशाल और सुदृढ बगला एक ऐसे ही व्यक्ति ने बनाया था। जबतक यह भावना हम लोगो मे नही आती तबतक हम स्वतत्रता का उपभोग नही कर सकेंगे। हिमवान जैसे सौंदर्य के भडारो का भी नही। जब कर सकेंगे तब हिमशिखरो की शोभा, बादलो की लीला, फेनोज्ज्वल सरिताओ की क्रीडा और सन्ध्या का वर्ण-विलास नित्य देखने पर भी नया ही दिखाई देगा और प्रकृति यह कहती सुनाई देगी—'नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे' (मेरे विस्तार का कोई अत नही है।)

इसी स्थान से छायापथ होकर एक अगम्य मार्ग जमनोत्री से आता है। स्वामी रामतीर्थ इसी मार्ग से गये थे। उन्होने इस भयानक सुरम्य

प्रदेश का अत्यत मनोरम वर्णन किया है—"इसके दोनो ओर की रग-विरगी पुष्प-लताए पर्वत पर कलापूर्ण शाल ओढाती हैं। मकरद-पूर्ण केशर, इत्रासु वनस्पति तथा पुष्प-लताए, जहातक दृष्टि जाती है, फैलती गई है।

"ऐसे वातावरण मे लता-पुष्पो के बीच हिम तुषारो से अलकृत ब्रह्म-कमलो ने उसे सजाया है। जब-जब इस प्रदेश पर दृष्टि जाती है, ऐसा लगता है कि स्वर्ग मृत्यु का नियत्रण करनेवाले देवाधिदेव का सिहासन यही है। यहा के हरे-भरे मैदानो को देखकर लगता है जैसे वे देवताओ के भोजनातर नृत्य के लिए बिछाये गए कालीन हैं।"

स्वामी रामतीर्थ का साहस अनुपम था। लेकिन जैसे उसने हमे भी प्रेरणा से भर दिया हो। निश्चय किया कि कल चौदह मील पर गगनानी चट्टी जाकर ही रुकेंगे। परतु यह भूल गए कि यात्रा का यही भाग सबसे भयकर है। सुक्खी तक साधारण उतराई थी, मार्ग भी सुहावना था, लेकिन उसके आगे धूप तेज हो आई। वृक्ष का कही आभास तक न था। चक्रव्यूह जैसे उतार-चढाव इतने अधिक थे कि हम त्रस्त हो उठे। जो हममे सबसे नवयुवक थे वे घोरपडे और माधव इतना थक गए कि मार्ग की एक चट्टी पर उन्हे दो घटे सोना पडा। यशपाल और मैं दोनो अपने लक्ष्य की ओर निरतर बढते रहे। गगनानी पहुचकर डाकबगले की अतिम चढाई भी चढी। उसके बाद के दो घटे कैसे बीते, पता नही। जब गर्म कुड मे स्नान किया तब कही प्राण लौटे। साथी लोग तो सन्ध्या तक पहुच सके, इसलिए अब यह निश्चय किया कि कल नौ मील से अधिक नही चलेंगे। भटवारी के डाकबगले मे आराम करेंगे।

उसी दिन जबलपुर के एक अद्‌भुत व्यक्ति से भेंट हुई। क्षीणकाय, लबा कद, पतला मुख, तेज आखें, तेज आवाज, गले मे रुद्राक्ष की माला, मुह से जब-तब गालियो की झडी निकलती तो निकलती ही रहती। बर्तनो का व्यापारी था। आयु होगी लगभग ६० वर्ष। उसके पास बीडी के बडल जैसा पीतल का एक सुदर केस था। उसमे से निकालकर बार-बार बीडी पीता था और उसका साथी मजाक उडाता था। बोला, "यह बडा कजूस है। मरने के बाद पडिए को जो बर्तन दान मे मिलते हैं उन्हें सस्ते

दामो मे खरीदकर वेचता है। पचास हजार का आसामी है। मरना चाहता है। मैं कहता हू, यदि सचमुच मरना चाहता है तो चल गगा मे धक्का दे दू।"

हम सब हँस पडे। परतु जब उसकी कहानी सुनी तो जैसे स्तब्ध रह गए। वह बोला, "बडा अभागा हू मैं। पैसा हुआ तो क्या! तेरह पुत्र और सात पुत्रियो मे केवल एक पुत्र और दो पुत्रिया बची हैं। तीन पोते थे, उनमे से भी एक रह गया है। क्या भरोसा है इस जिंदगानी का। घर से मन ऊब गया है। गगा मैया ने पुकारा तो दूकान उठाकर चला आया। गाजा, सुलफा न जाने क्या-क्या नशे करता था। अब सब छोड दिये। किसके लिए करू।"

मैंने कहा, "बाबा, बीडी पीना भी तो नशा है। इसे भी क्यो नही छोड देते। यह कलेजा जलाती है।"

दीर्घ नि श्वास खीचकर वह बोला, "भैया, कलेजा तो कभी का जल चुका। यह बीडी उस राख को क्या जलायगी!"

फिर न जाने किस शून्य मे वह खो गया। निरुत्तर मैं भी चुपचाप आगे बढ गया। पग-पग पर यहा यात्री ही तो मिलते हैं। दो क्षण बाद कलकत्ता की एक अधेड स्त्री को देखा। अत्यत त्रस्त और स्थूलकाय। आगे बढना असम्भव जैसा ही था। कण्डीवाले भी ले जाने को तैयार नही थे। बहुत समझाया, परतु उनका एक ही उत्तर था—'हम इतना बोझ नही उठा सकते।"

मैं जानता हू कि वह स्त्री गगोत्री अवश्य पहुच गई होगी, क्योकि इस यात्रा का सबसे बडा बल अगम्य आस्था है। उसीके बल पर मैंने अनेक मरणासन्न व्यक्तियो को अगम्य दुर्गम मार्गो को पार करते देखा है। इस मार्ग पर मृत्यु का वरण पुण्य है। यह विश्वास कितनी शक्ति देने वाला है।

आगे का मार्ग सुगम था। भटवारी पहुचने मे कोई असुविधा नही हुई। लेकिन विश्राम-भवन मे डिवीजनल फोरेस्ट आफिसर ठहरे हुए थे। दातारसाहब यात्रा पर आ रहे हैं। उन्होंने हमारी तनिक भी चिंता नही की। मिलने तक से इन्कार कर दिया। लेकिन यशपाल भी वजिद थे।

निरतर आग्रह करते रहे। अत मे वह वाहर आये और अधिकार के स्वर में वोले, "यह विश्राम-भवन हमारा है। इसमे ठहरने का पहला अधिकार भी हमारा है। यात्रियो को इसी शर्त पर आज्ञापत्र दिये जाते हैं।"

यशपाल ने कहा, "ठीक, लेकिन हम भी लेखक और पत्रकार है। कही और ठहरने का प्रवध हमने नही किया। हम क्या करें ?"

सुनकर महसा वह कुछ चिंतित हुए। वोले, "आप लोगो के ठहरने का प्रवध इसी विश्राम-भवन मे हो सकता था, लेकिन मेरे साथ वहुत-से व्यक्ति हैं। आपको कष्ट होगा। यहापर एक अस्पताल है। वहा व्यवस्था कराये देता हू।"

अस्पताल खाली था। आसानी से हमको स्थान मिल गया। कमरे नये और पक्के थे, लेकिन जव हम लोग निरीक्षण करते घूम रहे थे तो मालूम हुआ कि वह जच्चा-वच्चा अस्पताल है और जो कमरे हमे मिले हैं, वे प्रसूति के लिए हैं। इस ज्ञान से हम लोगो का वडा मनोरजन हुआ। मनोरजन के ये अवसन थके तन-मन को जैसे सहला जाते हैं।

सुना था, केंद्रीय मत्री दातारसाहव इधर आ रहे हैं, इस कारण आगे का मार्ग ठीक हो गया है। एक मील की वह भयकर चढाई-उतराई अव नही करनी होगी। लेकिन दूसरे दिन सवेरे जिस समय हम मोड पर पहुचे तो किसीने वताया कि अभी मार्ग यात्रा के लिए नही खुला है। उस अवकार मे दुस्साहस करने की शक्ति हममे नही थी। ऊपर से जाने का ही निश्चय किया। लेकिन जव उस ओर पहुचे तो मालूम हुआ कि सडक खुल गई है। पर 'का वर्षा जव कृषि सुखाने'! सवेरे का समय होने के कारण उम दिन जैसा कष्ट भी नही हुआ था। आगे का मार्ग और भी सुगम था। प्रसन्न मन चलते चले गये। महसा कुछ ही देर वाद हमने एक चट्टी को देखा। पता लगा, हम मनेरी पहुच गये हैं। आश्चर्य, इतनी शीघ्र कैसे आ गये। जव आ गये हैं तव आज ही क्यो न उत्तरकाशी पहुचा जाय ?

मोटर का राजमार्ग था। मनेरी मे स्नान-भोजन के लिए रुके और फिर सचमुच पाच वजे तक उत्तरकाशी पहुच गये। दिन-भर चलते रहने के कारण अतिम मील पार करना कुछ कठिन अवश्य हो गया। उत्तर-

काशी के मकान दिखाई दे रहे थे, इसलिए रुक भी नही सकते थे। टट्टू के सामने लकडी मे बांधकर गाजर लटका दी जाती है, उसीकी ओर मुंह उठाये वह थका जीव चलता चला जाता है। हम लोग भी इसी तरह चलते हुए बिडला धर्मशाला मे जा पहुचे।

: २३ :

राम की प्यारी गंगी

उत्तरकाशी पहुचकर ऐसा लगा, जैसे पर्वत प्रदेश अब समाप्त हो गया हो। काफी गर्मी थी। बहुत दिन के बाद घर के समाचार मिले, इस-लिए प्रसन्नता होना स्वाभाविक था। इसलिए और भी अधिक हुई कि सभी समाचार शुभ थे। माधव परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गया था। श्रीप्रभा की दोनो पुत्रिया भी सफल हुई थी। इसी खुशी मे जलेबियो की दावत हुई। लेकिन शुभ समाचारो का क्रम अभी समाप्त कहा हुआ था। दूसरे दिन सवेरे पता लगा, यशपालजी की पत्नी आदर्श बी० ए० आनर्स मे प्रथम श्रेणी मे पास हुई है। विश्वविद्यालय मे तीसरा और अपने कालेज मे उनका प्रथम स्थान है। अजीर्ण न हो जाय, इसलिए मिठाई का कार्य-क्रम किसी और समय के लिए स्थगित कर दिया गया।

जो व्यक्ति ससार के कोलाहल से दूर प्रकृति के सान्निध्य मे रहना चाहते हैं, उत्तरकाशी उनके लिए आदर्श स्थान है। न है भीड का कोला-हल और न प्रकृति का रुद्र रूप। है केवल हिमालय की प्राणदायक वायु और भागीरथी का अमृत जल। बस के आने पर भी उनका यह प्राकृतिक रूप बदला न जा सकेगा। कोलाहल अवश्य कुछ बढ सकता है, पर इतना नही कि मनुष्य अतर की आवाज भी न सुन सके।

मन यहा रहने को भी करता था और शीघ्र ही घर पहुंचने की आकाक्षा भी बलवती होती जा रही थी। अततः एक बजे के पूर्व ही हम

लोग रवाना हो गये। मेघ आकाश के पूरे विस्तार पर छाये हुए थे। ऊपर वर्षा भी हुई थी, इसलिए ऋतु मे मादकता थी। नाकुरी पहुचनें पर देखा, दातारसाहब के स्वागत मे द्वार बने हैं। भीड भी उतावली-सी उनकी राह देख रही है। कुछ दूर आगे जाकर हमने दातारसाहब के दल को आते हुए देखा। आठ जीपें थीं। नौ डाडिया पीछे-पीछे चली आ रही थी। प्राचीन काल मे जैसे राजा-महाराजाओ को सुविधाए मिलती थी, कुछ वैसी ही सुविधाए आज के शासकों को प्राप्त हैं। किसी सीमा तक यह अनिवार्य भी है, लेकिन उनका प्रयोग कुछ अधिक उदारता से ही किया जा रहा है। हम लोगो को देखकर उन्होने 'जय गगा मैया की' कह-कर नारे लगाये। लेकिन जीप मे यात्रा करनेवालो और पद-यात्रियो की क्या मित्रता ? हम लोगो के लिए धूल का एक बवडर छोडकर वे आगे बढ गये। सध्या से पहले ही हम डूडा पहुच गये। धरासू के मार्ग पर यह एक महत्वपूर्ण बस्ती है। शीतकाल मे यहा जाड लोग आकर रहते हैं, इसलिए यहापर चाय, मिठाई की दूकानो के अतिरिक्त चादी के आभूषण बनानेवालो की दूकानें भी हैं। जाडे के दिनो मे यहा ऊन का काम होता है। लोग भेडें लेकर यहा आ जाते हैं और अच्छी कमाई कर लेते हैं।

धरासू तक बस की सडक बन गई थी। लेकिन परमिट तबतक किसी को नही दिया गया था। एक सरकारी ट्रक को हमने देखा तो उसके ड्राइवर से पूछा "बसें कबतक चलेंगी ?"

उसने उत्तर दिया, "सडक बिल्कुल ठीक है। हम लोग ट्रक लेकर आते हैं। लेकिन बसो के लिए परमिट चाहिए। मेरा ख्याल है, अगले सीजन तक अधिकारियो की नीद खुल ही जायगी।"

ड्राइवर व्यग्य करना जानता है, क्योकि भुक्तभोगी है। लेकिन सर-कारी तत्र व्यग्य की चिन्ता नही करता। चिन्ता हमे थी। बस होती तो उसी दिन ऋषिकेश पहुच गये होते। अब तो धरासू तक पैदल ही जाना होगा। इसलिए सवेरे घोरपडे ने सदा की तरह तीन बजे ही उठा दिया। यदि जल्दी ही धरासू पहुच सके तो वहा से नौ बजे की बस मिल जायगी। लेकिन बोझियो ने आपत्ति की और समय पर नही पहुचे। हम लोग आठ बजे ही पहुच गये थे। नौ बजे की बस आई और चली गई। चालक भला

था। कुछ देर राह देखता रहा, पर कबतक ? सब दौड़-धूप व्यर्थ हो गई। लेकिन हर सुरग के बाद प्रकाश होता है। ऋषिकेश की बस चली गई तो हमे टिहरी जाने का अवसर मिल गया। दोपहर की बस टिहरी तक ही जाती है। दो बजे उसीसे रवाना हुए। गर्मी तीव्र होती आ रही थी। मन रह-रहकर पीछे लौटने को करता था। लेकिन नगर का आकर्षण भी कम नही था। इसी समय हमने मोटर ओनर्स एसोसिएशन के जनरल मैनेजर श्री गोविंदप्रसाद नेगी को देखा। वह हमे लेने ढूढा जा रहे थे। साथ मे फल भी लाए थे—लीची, सतरे और आम। तीन हफ्ते के बाद फल देखकर मन गद्गद् हो उठा।

सध्या तक हम टिहरी जा पहुचे। वेदात केसरी स्वामी रामतीर्थ की यह लीलाभूमि है। भिलग पर्वत से निकलनेवाली भिलगना और भागीरथी के सगम पर बसा हुआ यह एक सुदर पहाडी नगर है। आबादी तीन हजार के लगभग है। यहापर प्राग्-मुस्लिमकालीन मूर्तिया मिली हैं। उनसे मालूम होता है कि तब यह महत्वपूर्ण नगर रहा होगा। १८१५ ईस्वी मे अग्रेजो की कृपा से गढवाल राज्य के बचे-खुचे प्रदेश टिहरी को पाकर राजा सुदर्शन शाह ने यहा अपनी राजधानी स्थापित की। १८१६ ईस्वी मे यहापर राजा का महल ही एकमात्र बडा भवन था। गर्मियो मे यहा बहुत अधिक गर्मी होती है, इसलिए राजा प्रतापशाह ने प्रताप नगर की स्थापना की। फिर कीर्तिनगर और अत मे नरेन्द्रनगर इसी दृष्टि से बसाये गए। टिहरी की श्रीवृद्धि समाप्त हो गई। इसीलिए शायद उपेक्षित पथ-मार्ग सब धूल से अटे पडे हैं।

नगर के मध्य मे इस प्रदेश के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्रीदेव सुमन का स्मारक बना हुआ है। राजा की जेल मे भूख हडताल करके उन्होंने प्राणो का विसर्जन कर दिया था। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि राजा की आज्ञा से ही उनकी हत्या की गई थी। सत्य क्या है, कोई नही जानता, परतु इस प्रदेश मे वह निश्चय ही देवता की तरह पूजे जाते हैं।

हम लोग सगम की ओर चल दिये। अनेक पैडियां उतरकर जब हम वहा पहुचे तो मन पुलक उठा। मार्ग मे अनेक नारिया सर पर पानी के कलश रखे आती दिखाई दी। सहसा कालिदास के भारत की याद हो

आई। हँसती-खिलखिलाती वे युवतिया शकुतला और उसकी सखियो के समान दर्शक के मन को मोह लेती थी। वह स्थान जहा भिलगना भागीरथी मे प्रवेश करती है, बहुत ही मनोरम है। सगम मनोरम होता ही है। शात, गभीर गति से आती हुई भिलगना जैसे भागीरथी की तीव्र धारा मे आत्म-समर्पण कर देती है। कुछ क्षण के लिए भावो का उद्रेक जैसे तल पर आता है। फिर भागीरथी, अलखनदा से मिलने के लिए दौडी चली जाती है। हम लोग तट पर बैठकर जल-प्रवाह को देखते रहे। कभी-कभी धारा मे भी उतर जाते कि अकस्मात् ढूढ़ते-ढूढते यशपाल के एक परिचित बधु वहा आ गये। उनके साथ एक वयोवृद्ध पण्डित पीताम्बर दत्त भट्ट भी थे। वह स्वामी राम के साथी रहे हैं। उन्होंने स्वामीजी के अनेक रोचक सस्मरण सुनाये। सन्यासी होने से पूर्व भी वह यहा आकर रहते थे। यहीं पर एक दिन शिखासूत्र का त्याग करके वह तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ बन गए थे।

> प्राणनाथ बालक सुत दुहिता, यो कहती प्यारी छोडी,
> हाय वत्स! वृद्धा के धन, यो रोती महतारी छोडी,
> चिर-सहचिरी रियाजी छोडी, रम्य तटी रावी छोडी,
> शिखा सूत्र के साथ हाय! उन बोली पजाबी छोडी।
>
> (माधवप्रसाद दीपक)

१९वी शताब्दी भारत मे जिन महापुरुषो को जन्म देकर धन्य हुई, उनमे स्वामी रामतीर्थ भी हैं। उनकी विद्वत्ता, पागलपन, तन्मयता, स्नेह, सबकुछ अद्भुत था। निडरता की तो वह प्रतिमूर्ति थे। भट्टजी ने बताया कि एक बार टिहरी-नरेश के बुलाने पर उन्होने आने से इन्कार कर दिया। कहला भेजा था, "राजा रूठेगा, अपनी नगरी रखेगा, हरि रूठेगा तो कहा जाऊगा!"

भट्टजी ने अत्यत भावुक स्वर मे कहा, "स्वामी राम बहुत स्वस्थ थे। प्रारम्भ मे वस्त्र पहनते थे। सोने के बटन भी लगाते थे, परिवार भी साथ था। बाद मे सबको भेज दिया और स्वय सन्यासी हो गए। वह बडे कुशल वक्ता थे। जन-समूह को इच्छानुसार आदोलित करने की शक्ति उनमे थी। क्षण-भर मे ऐसा लगता था मानो सिंह गर्जन कर रहा है, दूसरे ही

क्षण मा की तरह करुण-कोमल होकर कही खो जाते। गगा को वह 'प्यारी गगी' और अपनेको 'राम बादशाह' कहा करते थे। तैराक ऐसे थे कि कूदे नही कि दूसरा किनारा आया नही। बिना थके, बिना हाफे दौडते हुए पहाड पर चढ जाते थे। हिमालय के अनेक अगम्य मार्गो पर उनके चरण-चिह्न अकित हुए थे। छायापथ से होकर यमनोत्री से गगोत्री गए थे। एक दिन अचानक उन्होने भिलगना मे समाधि लगा ली। ऐसा लगता है कि सदा की भाति वह भिलगना मे कूदे, लेकिन भवर मे फस गए। जब निकलना असम्भव हो गया तो समाधिस्थ हो गए। तीन दिन बाद उनका शरीर मिल सका। उस समय वह समाधि की अवस्था में थे। शरीर फूल गया था, परतु चश्मा उसी तरह लगा हुआ था..."

उनके सस्मरणो का कोई अत नही था। अत था दिन का। सध्या गहरा आई। हम लोग शिमलासू न जा सके। वही तो उन्होने समाधि लगाई थी। भट्टजी बोले, "आज इस बात का सकेत करनेवाला कोई चिन्ह वहा नही है। कितनी लज्जा की बात है। महापुरुषो के गुणगान ही हम करते है, परतु उनके स्मृति-चिह्नो की चिन्ता हमे नही है। पश्चिम मे महापुरुषो के काम मे आनेवाली छोटी-से-छोटी वस्तु को सुरक्षित रखा जाता है।...उन्हे विदा देने के लिए कितनी भीड इकट्ठी हो गई थी। तिल धरने की जगह नही थी। राजा आये, रक आये। जिस समय उनकी देह को उनकी प्यारी गगी को अर्पित किया गया तो जन-समूह के नेत्रो से करुणा की एक और गगा प्रवाहित हो उठी। उनका प्यार ही जैसे द्रवित होकर बह चला हो।"

इस पुण्य स्मरण मे आत्म-विभोर होते हुए हम लोग लौट पडे। अगले दिन सवेरे ही ऋषिकेश की ओर रवाना होना था। वही चिर-परिचित मार्ग है—चम्बा, नरेन्द्रनगर। जिस समय ऋषिकेश पहुचे तो ग्यारह बज चुके थे।

२४

फिर वही तपन

अब हम फिर ससार मे लौट आये थे। वही कोलाहल, वही तीव्र गति और वही आत्म-प्रचार के नाना रूप। ऋषिकेश मे गगा-स्नान करते समय महसा गोमुख की याद हो आई। वह भी भागीरथी थी, यह भी भागीरथी है। एक अल्हड पहाडी-किशोरी, जो उद्दाम यौवन के द्वार पर खडी है, जिसके रूप मे पौरुष है परतु पावनता भी है। एक यह है यौवन के उस किनारे पर पहुचती हुई उग्र, पर शिथिल युवती, जिसमे मात्र आवेग है, भव्यता नही है।

अगले दिन सवेरे ही हरिद्वार जा पहुचे। घोरपडे और मैंने उसी दिन दिल्ली लौट जाने का निश्चय किया। लेकिन बस स्टेशन पर तो भीड की सीमा नही थी। कब-कब से यात्री पडे हुए हैं, परतु अनेक रास्तों से प्रयास करने पर एक अपर क्लास का और एक लोअर क्लास का टिकट मिल सका। दो बजे बस रवाना होनी थी। न जाने क्या हुआ, अचानक एक अधिकारी मेरे पास आये—आप दोनो अपर क्लास के टिकट चाहते थे, लीजिये।

परतु घोरपडे उस समय वहा नही थे। ठीक समय पर वह आये और लोअर क्लास मे अच्छा स्थान प्राप्त करने के लिए भीड के साथ बस मे घुस गये। अपर क्लास के ठीक पीछेवाली सीट पर पहुचने के लिए उनका एक सहयात्री से सघर्ष हो गया। दोनो वहा पहले पहुचने का दावा कर रहे थे। मैं बार-बार उनसे आगे आने के लिए कह रहा था और वह समझ रहे थे कि मैं उनसे अपर क्लासवाली सीट पर बैठने के लिए कह रहा हू। लेकिन जब बात बढ चली तो मैंने ऊचे स्वर मे उनको सारा हाल कह सुनाया। "मुझे दो सीट मिल गई हैं। आइये न।"

सुनकर वह बहुत दुखी हुए। बोले, "तब तो मैं व्यर्थ ही झगडता रहा।"

मन-ही-मन सोचा, झगडा क्या कभी सार्थक होता है। पर अब मन

सोचने को नहीं करता । याद आ रही है यात्रा की, जो अभी-अभी समाप्त होने जा रही है । बीस मई को दिल्ली से रवाना हुए थे और आज सोलह जून है । खाने-पीने का जो सयम हमे करना पडा था अब जैसे उससे बदला लेने को हम आतुर हो गये । रसगुल्ले, आईसक्रीम, चाय, दही, फल, कोका-कोला, सभी कुछ तो हमने दिल्ली तक खा-पीकर देख लिया । खाते थे और खूब हँसते थे । उस रात पूरे चार सप्ताह बाद हमारी एक और यात्रा का अत हो गया । लेकिन 'चरैवेति चरैवेति' जिनका लक्ष्य है, उनके लिए हर अत एक नये आरभ का पडाव-मात्र है । वैदिक ऋषियो ने गाया है ·

पुष्पिण्यौ चरतोजघे भूष्णुरात्मा फले ग्रहिः ।
शेरेऽस्य सर्व पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः ।।
चरैवेति चरैवेति ।

—जो व्यक्ति चलते रहते हैं, उनकी जघाओ मे फूल खिलते है । उनकी आत्मा मे फलो के गुच्छे लगते हैं । उनके पाप थककर सो जाते हैं । इस-लिए चलते रहो, चलते रहो ।

अत आरभ दोनो की कोई सीमा नही । लेकिन जब हम पडाव पर पहुच जाते है तो सहसा व्यतीत मुखर हो उठता है । रह-रहकर हिमालय के उस भयानक सौंदर्य की, उन पावन दुर्गम स्थलो की याद आने लगती है और याद आने लगा यात्रा का महत्व । वह केवल चरणो से चलना ही नही है । मन भी चलता है, बुद्धि भी चलती है, चित्त और अहकार सब प्रगति करते है । यह सृष्टि का विकास है । लेखक के नाते जब अपनी पूंजी के भण्डार को देखता हू तो आश्चर्य होता है । उसका उपयोग कर पाऊगा भी या नही और सही-सही कर पाऊगा, इसमे संदेह है । पर इसमे संदेह नही कि तन-मन सब धुलकर निखर गया है, जैसे अजस्र वर्षा के बाद प्रकृति निखर उठती है । सारी थकान, सारी ग्लानि जैसे धुल जाती है । उन अगम्य शिखरो पर जब पर्यटक के चरण-चिह्न अकित होते है तो उसका अह एक ओर आकाश को छूता है तो दूसरी ओर विनम्र होकर हिम सरि-ताओ के जल का परस भी पाता है । एक ओर अपनेको महान समझने लगता है तो दूसरी ओर क्षुद्रातिक्षुद्र होने का आभास भी होता है । वह एक साथ महान और लघु, विराट और वामन हो उठता है । महान-से-महान कार्य

करने की क्षमता उसे प्राप्त होती है, परतु उसमे अहकार का दश नही रहता। उसे यह भान भी नही होता कि उसने सचमुच कुछ महान कार्य किया है। यही योग की स्थिति है और यही जीवन को जीने का सही मार्ग है।

प्राचीन काल मे आश्रम-जीवन का यही लक्ष्य था। दुर्भाग्य से आज वह धर्म के साथ जुड गया है—उस धर्म के साथ जो वर्गों मे बटा हुआ है, जिसे 'मत' कहते हैं। लेकिन वस्तुत प्रकृति के सान्निध्य मे बने हुए प्राचीन आश्रम मनुष्य को यही सीख देते हैं कि महान से जो महान है, वही मनुष्य का लक्ष्य है। लेकिन जबतक 'मैं' तिरोहित नही हो जाता तबतक वह लक्ष्य प्राप्त नही होता। प्रकृति का सान्निध्य उसी 'मैं' को रूपातरित करता है।

प्रकृति का सान्निध्य शरीर मे स्फूर्ति भी भरता है। वह स्फूर्ति उसे आकाश-पातालगामी पथरीले मार्गों पर चलने के परिश्रम से, हिम-शिखरो के इद्रधनुषी सौंदर्य मे, नाना पुष्पो-औषधियो की सुगध से, मलयानल वायु के सजीवनी स्पर्श से, कलकल-छलछल करते पावन स्रोतो के सगीत से, क्षण-क्षण मे इद्रधनुषो का निर्माण करते आकाश के विस्तार पर छाये सघन वाष्प-सकुल मेघो के तुमुल नाद से प्राप्त होती है। उसको प्राप्त करके सृजन के नये-नये आयाम कला और साहित्य के उपासक के सामने खुल जाते है।

पर्यटन हर दृष्टि से उपयोगी है। उसीके लिए हम भी प्रति वर्ष इन प्रदेशो मे भ्रमण करने आते हैं। एक ऐसी ही यात्रा का पडाव आ पहुचा है। लेकिन यह अत नही है। अभी लक्ष्य तक कहा पहु च पाया। तब-तक हमारा मत्र है—चरैवेति चरैवेति, क्योकि—

> चरन्वै मधु विन्दति, चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
> सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्॥
> चरैवेति चरैवेति

—चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो, नित्य चलता हुआ वह कभी आलस्य नही करता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

परिशिष्ट

: १ :

गंगा-जमना की संस्कृति

गगा की गाथा भारत की गाथा है । भारत की आत्मा के ऐश्वर्य और मन-प्राण की इच्छाओ-आकांक्षाओ और अरमानो की गाथा है । गंगा भारत है, भारत गंगा है । अमरीका मिसौरी-मिसिसिपी को प्यार करता है, ब्राजील अमेजन को प्यार करता है, मिस्र नील को प्यार करता है । रूस वोल्गा को प्यार करता है, लेकिन भारत गगा को प्यार भी करता है और उसकी पूजा भी करता है । भारत गगा को मां कहता है—मा जो सबसे प्यारा शब्द है, जो ईश्वर का प्रतीक है । गगा-मैया भारत को न केवल पालती है, बल्कि उसके पापो को भी बहा ले जाती है । वह पतित-पावनी है ।

गगा के तट पर वैदिक ऋचाओ से गुजरित आश्रम पनपे व आर्यों के बडे-बडे साम्राज्य स्थापित हुए । गगा ने व्यास और वाल्मीकि का मधुर संगीत सुना । बुद्ध और महावीर का त्याग देखा । अशोक और समुद्रगुप्त की जय को प्रतिध्वनित किया । कालिदास और तुलसी की कविताओ मे प्राण फूके । गगा ने पौराणिक साहित्य के भण्डार को भरा । वे प्रतीक कथाएं न जाने कैसे-कैसे इतिहास को वक्ष मे छिपाये है ।

कहते हैं, गंगा देव-सरिता थी । कभी आवश्यकता पडने पर देवताओ ने उसे उनके पिता हिमवान से माग लिया था । तबसे वह देवलोक मे ही रहती थी । एक बार वह ब्रह्माजी की सभा मे उपस्थित हुई । अचानक समीर का झोंका आने से उनका वस्त्र कुछ ऊपर उठ गया । देवताओ ने लजाकर सिर झुका लिया । पर राजर्षि महाभिष स्तम्भित से उस रूप को देखते ही रह गए । पितामह इस धृष्टता पर कुपित हो उठे । उन्होंने शाप दिया—तुम दोनो मृत्यु-लोक मे जाकर जन्म लो ।

कालातर मे यही राजर्षि महाभिष करु-कुल के सम्राट शातनु हुए और गगा हुई उनकी पत्नी। इनके गर्भ से शापग्रस्त आठ वसुओ ने जन्म लिया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गगा ने सात वसुओ को जन्मते ही मुक्ति दे दी, परतु आठवें वसु के जन्म के समय शातनु ने प्रार्थना की कि वह उस शिशु का वध न करे। तब गगा ने राजा को वसुओ के शाप की कहानी कह-सुनाई। आठवें वसु के अपराध के कारण उन सबको धरती पर आना पडा था। गगा ने सात वसुओ का वध करके इसी कारण उन्हें मुक्ति दी थी। विवाह करते समय उसने राजा से कह दिया था—"जिस क्षण भी आप मुझे कोई काम करने से रोकेंगे मैं आपको छोडकर चली जाऊगी।"

यह कथा सुनकर राजा बहुत दुखी हुए। पर गगा तुरत वहा से चली गई। आठवें वसु को भी अपने साथ लेती गई। गगादत्त और देवव्रत के नाम से यही वसु शिक्षा पाकर पिता के पास लौट आया। बाद मे जब उसके पिता शातनु ने धीवर कन्या सत्यवती से विवाह किया तब उसने आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने की भीष्म-प्रतिज्ञा करके भीष्म का वरद पाया। यह गागेय भीष्म ही कौरव पाण्डव के पितामह थे। काका-साहब कालेलकर के शब्दो मे—"गगा कुछ भी न करती, सिर्फ देवव्रत भीष्म को ही जन्म देती तो भी आर्य जाति की माता के तौर पर वह आज प्रख्यात होती।"

भीष्म के समान 'भगीरथ-प्रयत्न' की कहानी भी लोक-प्रसिद्ध है। सूर्य-वश मे एक प्रतापी राजा थे सगर। उन्होने अश्वमेध करने का निश्चय किया। यज्ञ का घोडा मुक्त भाव से भूमण्डल मे घूम रहा था। कोई उसे रोकनेवाला नही था। यह देखकर देवताओ का राजा इन्द्र डर गया और उसने घोडा चुरा लिया। सगर के साठ हजार बेटे उसे ढूढने निकले। धरती पर घोडा नही मिला। उन्होने धरती को खोद डाला। पाताल मे उन्होने घोडे को देखा। पास ही एक ऋषि बैठे थे। चोर समझकर राजकुमार उसे मारने दौडे। पर वे आगे बढे कि ऋषि की आखो से एक ज्वाला निकली और वे साठ हजार राजकुमार राख का ढेर बन गये।

बहुत दिनो वाद सगर का पोता अशुमान उन्हे खोजता हुआ वहा आया। उसे अपने चाचाओ को जलाजलि देने के लिए जल तक न मिला। उस समय आकाश मे गरुड उडते हुए कही जा रहे थे। पुकारकर उन्होने कहा, "हे पुरुषसिंह, हिमवान की वडी कन्या गगा नाम की नदी है। उसी मे तुम अपने पितरो को जलाजलि दो। पवित्र करनेवाली गगा जब इनकी भस्म को अपने जल से भिगोयेगी तभी ये वीर लोग स्वर्ग जा सकेंगे।"

घर लौटकर अशुमान ने सारी कथा अपने दादा से कही। यज्ञ समाप्त करने के वाद वे गगा की खोज मे निकल पडे। परतु सफल नही हो सके। उसके बाद अशुमान और फिर अशुमान के पुत्र दिलीप ने घोर तप किया। सारा ब्रह्माण्ड काप उठा, पर नही कापे ब्रह्मा। गगा उनके कमण्डल मे वद थी। उसके बाद दिलीप के पुत्र भगीरथ ने घोर तप किया। एक हजार वर्ष तक भुजाए ऊची करके उन्होने केवल एक वार भोजन किया। देवता डर गये। अप्सराओ को भेजा, लेकिन भगीरथ अडिग रहे। आखिर ब्रह्मा का आसन डोला और उन्होने भगीरथ को आशीर्वाद दिया कि हिमवान की वेटी गगा धरती पर आयगी। उन्होने यह भी कहा कि उसका वेग सम्भालने की शक्ति केवल शकर मे है, इस-लिए भगीरथ को उन्हे प्रसन्न करना चाहिए।

भगीरथ ने ऐसा ही किया। शकर प्रसन्न हुए और जिस समय गगा धरती पर उतरी उस समय ऐसा लगा कि जैसे विजली गिरी हो। आकाश काप उठा, धरती डगमगाने लगी। लेकिन देखते-देखते गगा शिव की जटाओ मे खो गई। भगीरथ ने देखा कि शिवशकर क्रुद्ध हो उठे हैं, गगा को उनकी जटाओ से वाहर आने का रास्ता नही मिल रहा है तो वह विचलित हो उठा। तब शिव बोले, "चिंता मत करो, वत्स। गगा को अभिमान हो गया था कि उसका वेग कोई नही सभाल सकता। इसलिए मैंने उसे कुछ देर के लिए कैद कर लिया। तुम रथ पर वैठकर चलो, वह पीछे-पीछे आती है।"

कहते हैं, जटाओ मे मुक्त होकर गगा सात धाराओं मे धरती पर गिरी। तीन पूर्व की ओर गईं, तीन पश्चिम की ओर। सातवीं धारा भागीरथी पीछे-पीछे चली। उसकी शोभा का वर्णन नही हो सकता।

पर्वतो को पार करती हुई तीव्र वेग से वह आगे बढने लगी। मार्ग मे जन्हु ऋषि का आश्रम था। गगा की वेगवती धारा उसे वहा ले गई। ऋषि क्रुद्ध हो उठे और उन्होने एक ही चुल्लू मे गगा को पी लिया। पानी की एक भी बूद धरती पर नही थी। तब देवताओ, गधर्वो और ऋषिओ ने महात्मा जन्हु की पूजा की। ऋषि प्रसन्न हुए और अपनी जाघ चीरकर उन्होने गगा को मुक्त कर दिया। इसीलिए उसका एक नाम जाह्नवी भी प्रसिद्ध हुआ।

फिर गगा ने पहाड पार किये, जगल पार किये, ऋषिकेश, हरिद्वार, गढमुक्तेश्वर, सोरो, प्रयाग, काशी और पटना, इन सबको पार करती हुई वह वहा आई जहा सगर के साठ हजार पुत्र राख हुए पडे थे। गगा का स्पर्श पाते ही वे स्वर्ग चले गये। तबसे गगा इसी प्रकार धरती पर बहती चली आ रही है। भगीरथ के प्रयत्नो से वह आई थी, इसीलिए उसका नाम भागीरथी पडा। उसके किनारे अनेक तीर्थ हैं—गगोत्री, जहा भागीरथी का उदय हुआ, बदरीनाथ जहा नरनारायण ने तप किया, देव-प्रयाग, जहा भागीरथी और अलकनदा, दोनो मिलकर गगा बनी, ऋषि-केश, जहा वह अपने पिता हिमवान से विदा लेकर समतल भूमि पर आई, हरिद्वार, जो गगा का द्वार है, कनखल, जहा शिवप्रिया सती दक्ष-यज्ञ मे जल मरी थी, और शिव ने यज्ञ-ध्वस किया, गढ मुक्तेश्वर और सोरो, जहा का स्नान मुक्तिदाता है, प्रयाग, जहा गगा, यमुना और सरस्वती का सगम है, काशी, जो शिव की पुरी है, गगासागर, जहा सगर के पुत्रो का उद्धार हुआ।

कहते हैं, एक बार शिव का सगीत सुनकर विष्णु इतने द्रवीभूत हुए कि ब्रह्मा ने अपना कमण्डल भर लिया। विष्णु के उन्ही आसुओ को ब्रह्मा ने बाद मे नदी के रूप मे भूतल पर भेजा।

एक और कथा के अनुसार गगा का विवाह भी शिव के साथ हुआ था। जब वह पीहर छोडकर जाने लगी तो माता मैना पुत्री के वियोग से इतनी व्यथित हुई कि शाप दे डाला, "तू सलिलरूपिणी हो।" वही सलिल ब्रह्मा के कमण्डल मे भरा रहता था। जब वे उससे बाहर आई तो सीता, अलकनदा, चक्षु और भद्रा के नाम से चारो दिशाओ मे बहने लगी। गगा

त्रिपथगा भी है। अलकनदा के नाम मे स्वर्ग मे, भागीरथी या जाह्नवी के नाम से पृथ्वी पर तथा अवोगगा (पाताल गगा) के नाम मे पाताल मे बहती हैं।

इन कहानियो का कोई अत नही। पुराणो ने गगा को मोक्षदायिनी कहा है। उसके समान और कोई तीर्थ नही माना। इसीलिए उसको लेकर अनेक कहानिया प्रचलित हो गई हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने गाया है—

कीरति, भणिति, भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई॥

ये पौराणिक कथाए मात्र प्रतीक हैं। कालातर मे कही-कही इतिहास भी उनमे घुल-मिल गया है। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। सुश्रुत के अनुसार शातनु एक प्रकार का धान्य होता है। आश्विन में उसे वर्षा का जल चाहिए। 'भाव-प्रकाश' के अनुसार आश्विन मास की वर्षा का जल गागेय जल कहलाता है। जब धान्य शातनु को गागेय जल मिलता है तो उनका मिलन होता है। यही मिलन विवाह है। इसी तथ्य को लेकर किसी कवि ने यह रूपक रच डाला होगा और फिर भरतो के इतिहास मे इनका समावेश हो गया होगा। वेद मे जहा भी गगा शब्द आया है, उसका अर्थ या तो वर्षा है या किरण।

लेकिन गगा की एक और कहानी है। वह मात्र प्रतीक नही। भारतीय सस्कृति की वास्तविक कहानी है। किसी दिन गगा के किनारे ही मनुष्य ने पहली बस्ती बसाई थी। पामीर के पठारो मे वरुण की उपासना करनेवाली सुनहरे बालोवाली एक गौर वर्ण की आर्य जाति बसती थी। इस जाति की विशेषता थी अमूर्त का चिंतन और खोज। उसी खोज मे 'चरैवेति चरैवेति' यह सिद्धान्त बनाकर उनकी एक शाखा गधर्व बदरीनाथ के आस-पास चीड और देवदार के प्रदेश मे आ बसी थी। उस शाखा मे अग्निहोत्र का प्रचलन था। उन्हीके पथ का अनुसरण करते हुए दूसरी शाखा एल वहा आई। वे नरबलि देते थे। उनके नेता राजा पुरुरवा ने गगा के सगम पर एक बस्ती बसाई। उसका नाम था प्रतिष्ठान। उनके समय मे एल और गधर्व, दोनो शाखाए मिलकर एक हो

गई । उसी दिन भारतीय सस्कृति की नीव पडी । एलो ने नरवलि छोड-कर अग्निहोत्र को अपना लिया । गगा की पवित्र धारा मे स्नान करके वे पवित्र हो गये । कालातर मे वे और आगे वढ गये और उनके स्थान पर एक और नई शाखा मान्व वहा आ वसी । ये दोनो शाखाए आगे चलकर चद्रवशी और सूर्यवशी आर्यो के नाम से प्रसिद्ध हुईं । उसी समय जह्नु नाम के एक राजा ने गगा की धारा से एक नहर निकाली । वह ससार की सबसे पहली नहर थी । इसीलिए गगा का नाम जाह्नवी पडा । इन्ही राजा के सात-आठ पीढी वाद विश्वामित्र हुए, जिनका महर्षि वसिष्ठ से सघर्ष हुआ । विश्वामित्र की पुत्री शकुतला का विवाह चद्रवशी राजा दुष्यत से हुआ और उनके पुत्र भरत ने पहली वार इस देश को एक-रूप दिया, वह भारत कहलाया । आर्य लोग गगा के किनारे-किनारे नये-नये नगर और आश्रम वसाते आगे वढने लगे । अहिस्तनापुर, अहिछत्रा, काम्पील्य, प्रयाग और वाराणसी उनमे कुछ प्रमुख हैं । ऋग्वेद की रचना गगा के किनारे पर ही हुई । सूर्यवशी भगीरथ ने गगा के आदि-अत की खोज की । इसीलिए इसका नाम हुआ भागीरथी । इन्हीके वश मे राम हुए । महर्षि वाल्मीकि का आश्रम गगा के तट पर ही था, जहा रामायण का सगीत रचा गया और सीता के पातिव्रत धर्म की परीक्षा हुई । गगा के तट पर ही मत्स्यगधा, सत्यवती ने वेदव्यास को जन्म दिया । भीष्म वननेवाले देवव्रत भी गगा ही के पुत्र थे । द्रौपदी का स्वयवर गगा के तट पर हुआ और कृष्ण की वासुरी का स्वर लेकर यमुना भी गगा मे समा गई । महाभारत के युद्ध की योजना गगा के तट पर ही हुई और फिर आरण्यक सस्कृति का विस्तार करनेवाले याज्ञवल्क्य, जनक और अजातशत्रु गगा के तट पर ही फले-फूले । जनक की भरी सभा मे याज्ञ-वल्क्य ने कुरु-पचाल के प्रकाड विद्वानो को चुनौती दी और गार्गी को पराजित करके ब्रह्म के सर्वोत्तम ज्ञाता के रूप मे प्रसिद्ध हुए ।

धीरे-धीरे आर्यलोग गगा के काठे मे चारो ओर वस गये । उन्होने कन्नौज आदि नये नगर वसाये । उस समय जो सोलह महाजनपद प्रसिद्ध थे, उनमे से अधिकाश गगा के अचल मे ही थे । गगा के अचल मे ही आयुर्वेद का जन्म हुआ । कला और सगीत का स्वर गूंजा । काशी मे जहा

एक ओर उपनिषदो की चर्चा होती थी वहा दूसरी ओर सुनहरे और बारीक वस्त्रो की रचना भी होती थी। इसी काशी मे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रादुर्भाव हुआ और इसी काशी के पास सारनाथ मे तथागत बुद्ध ने पहला उपदेश दिया। इसी समय गगा के दक्षिण तट पर पाटलीपुत्र की नीव पडी, जहा नद साम्राज्य का उदय हुआ और चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना के साथ-साथ सम्राट् चद्रगुप्त का निर्माण किया। इसी पाटलीपुत्र मे देवानाम् प्रिय अशोक ने अहिंसा और प्रेम के आदेश प्रसारित किये। क्षमा और प्रेम के इन अपूर्व सदेशो को जिन स्तम्भो पर आंकित किया गया वे भी गगा के किनारे चुनार मे ही बने। चुनार की प्रस्तर-कला की सजीव गठन और अप्रतिम ओज आज भी ससार को चकित किये हुए है।

मौर्यों के बाद आये शुग। गगा के तट पर फिर अश्वमेघ यज्ञ होने लगे। नये शास्त्र और स्मृतिया रची गई। रामायण और महाभारत इसी काल मे पूर्ण हुए। इसी काल मे हुए महाभाष्यकार पतजलि। मूर्ति और चित्रकला का एक नया रूप गगा के कछार मे पनपा। नागो के भारशिव राजवश ने गगा को अपना राज्य चिह्न बनाया। दस अश्वमेध यज्ञ किये। उसकी स्मृति मे वह स्थान आज भी दशाश्वमेध घाट कहलाता है। वाकाटक नरेश प्रवरसेन ने गगा को शिलालेखो, मुद्राओ, ध्वजाओ और देवमदिरो के द्वारो पर स्थान देकर देश की मुक्तिदायिनी बना दिया। गुप्त वश का उदय भी गगा के तट पर ही हुआ। कला, सगीत, वाङ्मय और सामाजिक व्यवस्था की सबसे अधिक उन्नति इसी काल मे हुई। समुद्रगुप्त की दिग्विजय और चद्रगुप्त के पराक्रम के साथ कालिदास की वीणा का सुमधुर स्वर गगा के तट पर ही गूजा। गगा की मूर्त्तिया बनी। पूजा शुरू हुई। उसके किनारे तीर्थों का जाल बिछ गया। धार्मिक मेले होने लगे। उनको नया रूप दिया सम्राट् हर्षवर्धन ने। प्रसिद्ध चीनी भिक्षु ह्वानच्याग हर्ष के इस अपूर्व दान का साक्षी रहा है। गगा के तट पर ही विक्रमशिला का अद्वितीय विद्यापीठ है, जहा देश-विदेश के विद्यार्थी काव्यशास्त्र की चर्चा मे समय बिताते थे।

गगा के तट पर ही राष्ट्रकूट वश के ध्रुव ने फिर से इन प्रदेशों को

जीतकर गगा को अपना राज्य-चिह्न बनाया। उसके बाद भारत मे एक नई सस्कृति ने प्रवेश किया। अनेक मुस्लिम नरेश जहा कही भी रहते हो, गगा का जल पीते थे। अबुलफजल, इब्नबतूता और बर्नियर के विवरण इस बात के साक्षी हैं। महर्षि चरक, वाग्भट्ट (अष्टाग हृदय), और महाभारत आदि मे गगा-जल को स्वास्थ्यवर्धक बताया गया है। आयुर्वेद के अनुसार वह वृद्धावस्था के रोगो का नाश करनेवाला है। निश्चय ही गगा के उद्गम स्थान पर कोई ऐसी रासायनिक प्रक्रिया होती है, जिसके कारण वह जल कभी नही सडता।

शेरशाह ने मालबदोबस्त का क्रम गगा के किनारे पर ही चलाया। सौंदर्य की रानी नूरजहा बहुधा गगा-तट पर आकर रहती थी। सुदूर दक्षिण के अनेक महापुरुष मुक्ति की खोज मे यही आते थे। प्रतिभापुज शकर ने दिग्विजय के पश्चात् गगा-तट पर ही मुक्ति प्राप्त की। रामानंद, कबीर और रैदास ने यही जाति-पाति के विरुद्ध विद्रोह का स्वर उठाया और तुलसी ने जन-कल्याण के लिए रामचरितमानस की रचना की। मलूकदास भी गगा के किनारे ही घूमा करते थे। गगा के किनारे ही पश्चिम से आकर एक नई सस्कृति ने सबसे पहले अपना प्रभाव स्थापित किया। महानगरी कलकत्ता गगा के किनारे ही उभरी। यही पर राममोहनराय से लेकर दयानद तक ने नए सुधार-आदोलनो का सूत्रपात किया। भारतेंदु हरिश्चद्र ने भी गगा-तट पर ही हिंदी भाषा का निर्माण किया। रवीन्द्रनाथ की कविता और अवनीन्द्र की कला यही पर प्रस्फुटित हुईं। स्वातत्र्य सग्राम के अनेक रोमाचक दृश्य यही पर घटित हुए। यहीपर युद्ध से त्रस्त मानवता को एक बार फिर भारत ने अहिंसा और प्रेम का पाठ पढाया। गगा उत्तर के बहुत बडे भाग को सीचती है। असख्य वर्षों से पैतृक दाय के रूप मे हिमालय से मिट्टी लाकर उसने उत्तरीय भारत के इस दोआब का निर्माण किया है। यदि गगा न होती तो प्राकृतिक दृष्टि से यह प्रदेश एक विशाल मरुस्थल हुआ होता। जहा गगा नही जाती वहा से बहुत-सी सरिताए आकर उसमे मिल जाती हैं। राम की सरयू, कृष्ण की यमुना, रतिदेव की चम्बल, गजग्राह की सोन, नेपाल की कोसी, गण्डक और तिब्बत से आनेवाली ब्रह्मपुत्र सबको अपने

मे समेटती हुई अलखनदा, जाह्नवी, भागीरथी, हुगली, पद्मा, मेघना, आदि नाना नाम धारण करती हुई अत मे सुदर वन के स्थान पर बगाल की खाडी मे लय हो जाती है।

निश्चय ही गगा उत्तर भारत को सीचती है, लेकिन उसका प्रभाव सारे भारत को अनुप्राणित करता है। दक्षिण मे काची के समीप समुद्र-तट पर मामल्लपुरम मे गगा की महिमा का एक ज्वलंत उदाहरण पहाड पर उत्कीर्ण है। पल्लव राजा महेन्द्र वर्मा प्रथम और उनके पुत्र नृसिंह वर्मा के काल मे सातवी सदी के प्रारभ मे इसकी रचना हुई। एक विशाल चट्टान पर अट्ठावन फुट लवी और तैतालीस फुट चौडी परिधि मे गगावतरण का दृश्य खुदा है। भगीरथ घोर तपस्या मे लीन हैं। उनके साथ ही स्तब्ध हैं नाना पशु-पक्षी। गधर्व आदि दिव्य पुरुष प्रसन्नचित्त गगा की वदना कर रहे हैं। दृश्य के बीच मे नव्वे फुट जल की धार-सी बनी है। इस धारा के बीच मे नागलोक के निवासी विनम्रभाव से स्वागत कर रहे हैं। इनकी लहरदार पूछे प्रवाह को सूचित करती है। स्वागत करनेवालो मे तपस्वी लोग तो हैं ही, हाथी भी है। एक बिल्ली इतनी तल्लीन है कि उसके पैरो मे चूहे फिर रहे हैं। इस विशाल दृश्य को जिन शिल्पियो ने अकित किया था, उनका भौगोलिक ज्ञान कितना पूर्ण था, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

यमुना

यमुना हिमालय के एक शिखर वदरपुछ से होकर नीचे आती है। २०७०० फुट ऊचा यह शिखर उत्तर प्रदेश के गढवाल जिले मे है। सुमेरु और कलिद भी इसीके नाम है। यमुना का एक नाम कलिदजा अथवा कालिदी भी है। जिस घाटी मे यमुना सबसे पहले दिखाई देती है, उसका नाम यमनोत्री की घाटी है। ६८०० फुट ऊची यह घाटी बहुत सकीर्ण है और दिन के एक बहुत बडे भाग मे कोहरे से आच्छादित रहती है। पुराणो के अनुसार यमुना सूर्य की बेटी है। यमराज इसके एक भाई हैं, इसलिए इसका नाम सूर्य-तनया और यमी भी है। इसे कालगगा और असित भी कहते है। असित एक ऋषि थे, जिन्होने सबसे पहले यमुना के उद्गम का पता लगाया। कथा आती है कि लका जीतने के बाद हनुमानजी

वहुत थक गये थे। थकान उतारने के लिए वह सुमेरु शिखर पर पहुचे और वही रहने लगे। आज भी, कहते हैं, उनकी सेवा करने के लिए अयोध्या से एक वदर आता है। सर्दी के कारण उन्हे अपनी पूछ गवानी पडती है। इसलिए इस चोटी का नाम वदरपुछ है। ऐसी ही एक और कहानी के अनुसार कृष्ण की एक रानी का नाम कालिंदी था। वह यही यमना-जी मानी जाती हैं।

ये पौराणिक कहानिया हैं। सच्ची भी हो, यह आवश्यक नही। वस्तुत ये प्रतीक कथाए है। जो ऊपर से इतिहास दिखाई देता है, वह भूगोल है। अर्थ कुछ भी हो, लेकिन यमुना नीलवर्ण की पहाडी युवती चचल और वलवती असम मार्गों पर भागती हुई सागर में लय होने के लिए निकल पडती है। उछलती-कूदती छोटे-मोटे वहुत-से झरनो, वहुत-सी नदियो को अपने मे समोती सिरमौर की सीमा के पास देहरादून की घाटी मे पहुच जाती है। यही कालसी हरिपुर के पास तमसा इससे आ मिलती है। हयहय जाति के आदि पुरुष यही पैदा हुए थे। इसी वश मे कार्तिवीर्यार्जुन हुए, जिनका वध परशुराम ने किया था। चद्रवश के राजा पुरुरवा की भेंट उर्वशी से यहीपर हुई थी। पुरुरवा से पूर्व किन्नर, सिद्ध, गधर्व जातिया यहा रहा करती थी। उर्वशी इन्हीमे से किसी एक जाति की कन्या थी।

यमुना अब हिमाचल से विदा लेती है और फैजावाद जिला सहारनपुर के स्थान पर मैदानो मे प्रवेश करती है। ६०० वर्ष पूर्व फीरोज तुगलक ने यही से एक नहर निकाली थी, जिसे आज पश्चिमी यमना नहर कहते हैं। अकवर ने इसे फिर से ठीक करवाया और शाहजहा उसकी एक शाखा दिल्ली तक ले गये। लार्ड हेस्टिग्ज ने इसे फिर चालू किया। इसीके पास से एक और नहर निकली है, जिसे दोआब नहर कहते हैं। यह सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और मेरठ के जिलो को सीचती हुई दिल्ली के पास फिर यमुना मे मिल जाती है। इसे पूर्वी यमुना नहर कहते हैं। अब ताजेवाला मे नया हैडवर्क्स बन गया है, जो दोनो नहरो का सचालन करता है।

यहा से वहुत दूर तक पजाव और उत्तर प्रदेश की सीमा बनाती हुई यमुना आगे वढती है। पानीपत के मैदान मे तीन वार भारत के भाग्य

का फैसला हुआ। कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध लड़ा गया। ये दोनों स्थान यमुना से बहुत दूर नहीं हैं। यही सब देखती-सुनती यमुना भारत की राजधानी के पास पहुचती है। कितनी बार यह राजधानी बसी, कितनी बार उजड़ी। कभी चंद्रवंश के पुरुरवा और ययाति ने खाण्डप्रस्थ का निर्माण किया, इसीको जलाकर सैकड़ों वर्ष बाद पाण्डवों ने इंद्रप्रस्थ नगर बसाया। इन्द्रपत गांव, नीली छतरी, निगमबोध घाट आज उसकी कहानी कहने के लिए शेष रह गए हैं।

लगभग २००० वर्ष बाद तोमरों ने यहींपर एक और नगर की नींव डाली। कथा आती है कि राजा अनंगपाल ने अपना राज्य अमर करने के लिए शेषनाग के सिर पर किल्ली गाड़ी थी। यह देखने के लिए कि वह किल्ली वास्तव में शेषनाग के सिर को छू सकी, उसे उखाड़ा गया। लेकिन जब दूसरी बार गाड़ा गया तो वह ढीली पड़ गई। इसी कारण इस नगर का नाम ढिल्ली पड़ा। दिल्ली उसका सुधरा या बिगड़ा हुआ रूप है। कुतुबमीनार के पास लाल परकोटा उसी नगर की याद दिलाता है।

तोमरों के बाद आये चौहान। पृथ्वीराज चौहान उसी कुल का अंतिम नरेश था, जिसके दरबार में चंदबरदाई जैसा वीररस का कवि हुआ। उसके बाद आठ दिल्लियां एक के बाद एक उठीं और गिरीं। अलाउद्दीन खिलजी की दिल्ली का नाम है सीरी। तुगलकाबाद का किला अपनी सादगी और दानवी दीवारों के लिए मशहूर था। सुल्तान कैकोबाद ने भी एक दिल्ली बसाई थी। मोहम्मद तुगलक का आदिलाबाद शहर भी मिट गया। फीरोजशाह की दिल्ली की यादगार फीरोजशाह कोटला है। किसी समय यह बहुत सुंदर नगर था। शेरशाह सूरी ने भी लंबी-लंबी सड़कोंवाली एक दिल्ली बसाई थी, शेरगढ़। लेकिन सबसे शानदार दिल्ली बसाई शाहजहां ने। एक-से-एक सुंदर इमारतों से मालामाल। आज की पुरानी दिल्ली ही वह दिल्ली है। अंग्रेजों ने भी एक दिल्ली बसाई, नाम रक्खा नई दिल्ली। इन सब दिल्लियों में यमुना मैया ने कितनी लड़ाइयां देखीं। अंतिम लड़ाई थी आजादी की लड़ाई, जो १८५७ में उसके किनारे पर शुरू हुई और १९४७ में इसीके किनारे पर समाप्त हुई। १५ अगस्त १९४७ को यमुना मैया ने लाल किले पर तिरंगे को फहराते

देखा । कुछ दिन वाद ही उसने राष्ट्रपिता महात्मा गाधी को अपने किनारे राजघाट पर सोते भी देखा । गगा मैया के किनारे व्यास ने साहित्य का निर्माण किया । चन्दवरदाई ने रासो की रचना की । गालिव, जौक, मीर, सौदा और मोमिन एक-से-एक वढकर शायर हुए । यही पर हिंदी जन्मी और उर्दू परवान चढी । स्थापत्य कला को उभरते हुए यमुना मैया ने कितने गौरव से देखा ।

दिल्ली के पास ही ओखला से एक नहर आगरा नहर के नाम से निकली है । आगे वढकर उसने हिंडन को अपने साथ लिया और पजाब तथा उत्तर प्रदेश की सीमा वनाते हुए मथुरा मे प्रवेश किया । यही पर कभी शूरसेन जनपद था । यही यादवो की वस्ती वसी । फिर शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर रामराज्य स्थापित किया । यही कृष्ण हुए । यमुना के कानो मे आज भी कृष्ण की मुरली का मधुर स्वर हिलोरें पैदा करता है । कृष्ण ने राधा के साथ रास रचाया । कस का वध किया । फिर द्वारका वसाई और अनेक अत्याचारी राजाओ का नाश करने के वाद कुरुक्षेत्र के मैदान मे गीता का सदेश दिया । यही कही यमुना पर वलराम ने एक वाध वाधा था । गोवर्धन-कहानी भी तो किसी वाध की ही कहानी है । वलराम ने कृषि का प्रचार करके गोप-जाति को यही वसाया । यही पर हुए हिंदी-कविता-गगन के सूर्य सूरदास, कण्ठ के जादू-गर स्वामी हरिदास, मर्मी कवि नददास और वेदज्ञ स्वामी विरजानद सर-स्वती, जिन्होने दयानद को वेदो की शिक्षा दी । युगो पूर्व महात्मा बुद्ध की कृपा भी मथुरा पर हुई थी । अशोक ने एक स्तूप स्थापित किया था । कनिष्क युग की मूर्त्तिकला यही पर पनपी । और यही पर प्रेम से पागल होकर चैतन्य सनातन और वल्लभ ने कृष्ण का कीर्तन किया । यमुना और आगे वढी । आगरा पहुची । आगरा शासन और व्यापार दोनो दृष्टियो से कभी वहुत महत्वपूर्ण रहा है । इसलिए सिकदर लोधी ने इसे अपनी राज-धानी वनाया । अकवर यही सोया हुआ है । वह किला, जिसकी नीव लोधी ने रखी थी, जिसकी दीवारो को अकबर ने उठाया, जिसे शाहजहा ने पूरा किया, उसे वहुत-सी कहानिया याद हैं । वावर की जीत की कहानी, दारा की हार की कहानी, शाहजहा के कैद की कहानी और कोहेनूर की कहानी,

जिसे ग्वालियर के कछवाहा राजा ने हुमायू को भेंट किया था। यही पर यमुना के किनारे शाहजहा की आख का आसू ताज खडा है, जो सफेद सगमरमर मे की गई विरह की सबसे पावन कविता है; जो काल के कपोल पर पडा एक आसू है। और एतमादुद्दौल्ला का मकबरा, अकबर का मकबरा, मोती मस्जिद ये सब कला के अजूबे है। इसी आगरा मे जनकवि नज़ीर ने जन्म लिया। आदमी की व्याख्या करते हुए जिसने लिखा :

> **चलता है आदमी ही मुसाफिर हो ले के माल,**
> **और आदमी ही मारे है फासी गले मे डाल।**
> **सच्चा भी आदमी ही निकलता है मेरे लाल,**
> **और झूठ का भरा है सो है वो भी आदमी ।।**

यमुना अब जैसे पागल-सी पूर्व की ओर भागती है। करवान और वेनगगा को साथ समेटती इटावा जा पहुचती है। यही पर चदावर का वह मैदान है, जिसमे बूढे जयचद ने शहाबुद्दीन के पठानो से लोहा लिया था। कालपी मे उसकी भेंट सेंगर से होती है। दक्षिण की ओर से नाना प्रकार की भेंट लिये विन्ध्य पर्वत की बेटी चबल इसमे आ मिलती है। यह चबल वैदिक काल के सुप्रसिद्ध दानी राजा रतिदेव की चर्मनवती ही है। कालपी के पास ही गलौली मे रानी लक्ष्मीबाई ने जो वीरता दिखाई थी, उससे अग्रेज भी चकित रह गये थे। इसी रानी की यशोगाथा गाती हुई यमुना आगे बढती है तो वैदिक युग की एक और नदी ओरछा और विदिशा की कहानी सुनाने के लिए इसमे आ मिलती है। यह है वेत्रवती, आज की बेतवा। कुछ आगे चलकर केन भी आ मिलती है। दक्षिण की ये बेटिया उत्तर की यमुना को बहुत बल देती हैं और वह बहन गगा से मिलने के लिए और भी उत्साह से आगे बढती है, लेकिन उससे पहले कोसम है। यही इतिहास-प्रसिद्ध कौशाम्बी है, जिसके साथ उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कहानी जुडी हुई है। गगा जब हस्तिनापुर को बहा ले गई तब कौरव यही आकर बसे थे। यही बौद्ध धर्म का बहुत बडा विहार था। स्वय तथागत बुद्ध दो वर्ष यहा रहे। राजा होने से पूर्व अशोक भी यहां रहता था। यही पर समुद्रगुप्त ने आर्या-वर्त के समस्त राजाओ का मानमर्दन किया था। लेकिन यमुना तो उता-वली-बावली हो रही है। एक क्षण ठिठकती है, फिर सहसा प्रयाग पहु-

करके गगा के गले से जा चिपटती है। कैसा है यह उन्माद, कैसा है यह दिव्य मिलन! हिमालय मे बहुत पास ही दोनो का नैहर है। लेकिन ८६० मील चलकर कही यमुना गगा से मिल पाती है। कैसा पावन है यह समर्पण! इसीको देखकर राम ने सीता से कहा था, "देखो, यमुना की सावली लहरो से मिली हुई गगाजी कैसी सुदर लगती हैं, मानो श्वेत कमल के हार मे नील कमल गूथ दिये हो। कही छाया मे विलीन चादनी धूप-छाव-सी छिटकी हुई लगती है। कही शरद के ग्राकाश मे बादलो की रेखा के भीतर से जैसे नील गगन छलका पडता हो।"

कथा ग्राती है कि यमुना यहा पहले बहती थी। गगा बाद मे ग्राई। उसके ग्राने पर यमुना ग्रर्घ्य लेकर ग्रागे बढी, लेकिन गगा ने उसे स्वीकार नही किया। बोली, "तुम मुझसे बडी हो। मैं तुम्हारा ग्रर्घ्य लूगी तो मेरा नाम मिट जायगा। मैं तुममे समा जाऊगी।"

यह सुनकर यमुना बोली, "बहन, तुम मेरे घर मेहमान बनकर ग्राई हो। मैं ही तुममे लीन हो जाऊगी। ४०० कोस तक तुम्हारा ही नाम चलेगा।"

गगा ने यह बात मान ली ग्रौर दोनो मिलकर एक हो गई। कहते हैं, सरस्वती भी यहीं पर इनमे ग्रा मिली है। माघ के महीने मे हर साल यहा मेला लगता है। बारहवें साल कुभ ग्रौर छठे साल ग्रर्द्धकुभी का मेला तो जगत-प्रसिद्ध है। इसी सगम पर सम्राट हर्ष ने हर पाचवें वर्ष एक सभा की थी। ह्यूएनसाग ने उसका वर्णन किया है। ग्रकबर को भी यह स्थान बहुत पसद था। गगा-यमुना के सगम पर बना उसका किला इस बात का साक्षी है। इसी किले मे ग्रशोक की लाट है, जो पहले कौशाम्बी मे थी। यही पर वह ग्रक्षय वट है, जो हिंदुग्रो की मान्यता के ग्रनुसार प्रलय मे भी नष्ट नही होता।

यमुना ने ग्रनेक जनपदो ग्रौर साम्राज्यो को उठते ग्रौर गिरते देखा। ग्राज वह बाध बनते देख रही है। वह भारत की खुशहाली के लिए सब कुछ सहने के लिए तैयार है। इसीलिए सनातनी हिंदू प्रतिदिन सवेरे स्नान करते समय जब सात नदियो का नाम लेते हैं तो उनमे सबसे पहले यमुना का नाम ही ग्राता है।

परिशिष्ट

: २ :

यात्रा-मार्ग

स्थान	ऊंचाई	दूरी (मीलो मे)	साधन	विशेष
ऋषिकेश	११०६ फुट	०	मोटर	डा० ता०, डा० ब०, अस्प०
नरेन्द्रनगर	४००० फुट	१०	,,	,,
टेहरी	१७५० फुट	४१	,,	बस-मार्ग मे टिहरी नगर २ मील दक्षिण की ओर रह जाता है।
सिरई (पीपल चट्टी)		५	,,	—
भाल्डयाना		६	,,	डा०
छाम		५	,,	
नगुन		५	,,	
धरासू		५	,,	डा०
कल्याणी		४	,,	
गेउला (बरम-खाल)		५	,,	
सिल्क्यारी		५	,,	
राढीभार		५	,,	
डुडाल गाव		२	,,	यहा से पैदल-मार्ग शुरू होता है।
सिमली		२	पैदल	
गेंगानी		२	,,	
जमनाचट्टी		६	,,	
ओजरी		६	,,	
दलोटी		२	,,	

सहायता के अपना सामान स्वय अपनी पीठ पर लादकर चलते हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनको पैदल चलने मे भी असुविधा होती है। उसीके अनुपात से धन की राशि निश्चित की जा सकती है। जो व्यक्ति पीठ पर मामान रखकर यात्रा करना चाहते हैं, उन्हे न्यूनतम अत्यावश्यक वस्तुए ही लेनी चाहिए। मार्ग मे लगभग सभी तरह का सामान मिल जाता है। वस्त्र तक मिल सकते हैं। तब यात्रा के आनद के लिए जो वस्तुए अनिवार्य हो, वे ही लेनी उचित है।

भारवाहक प्राय सभी यात्रियो के लिए आवश्यक हैं। उनको प्रतिदिन क्या मिलना चाहिए, यह राज्य की ओर से निश्चित है। इन्हीमे कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो कुछ अधिक पैसा लेकर रसोइए का काम भी कर सकते हैं। भारवाहक कितने चाहिए, यह यात्रियो की सख्या और सामान पर निर्भर करता है। यद्यपि कुछ लोग अधिक बोझ उठाकर ले चलते हैं, परतु उनके लिए बोझ की सीमा तीस सेर तक है। इससे अधिक उन्हे नही देना चाहिए।

सामान पैक करते समय लोहे और टीन के वक्स या चमडे और फाइवर के सूटकेस नही लेने चाहिए, क्योकि खच्चर चट्टानो से टकरा जाते हैं और भारवाहक के गिरने की सभावना रहती है। होलडोल मे जितना सामान रख सकें, उतना अच्छा है। शेष आवश्यक सामान वेग या लकडी के वक्स आदि मे रख लेना चाहिए। बरसाती या मोमजामा सामान के लिए आवश्यक है।

यात्रा मे सामान के लिए खच्चर भी मिलते हैं, जो दो मन तक बोझा ले जा सकते हैं। पार्टी वहुत वडी हो और सामान अधिक हो तो खच्चर कर लेना सुविधाजनक रहना है। उनकी दर भी राज्य की ओर से निश्चित है। जहा स पैदल-यात्रा का आरभ होता है, वहीं से ठेकेदार के द्वारा ठेका कर लेना चाहिए। ये लोग ईमानदार होते हैं। एक बार ठेका कर लेने पर साधारणतया बीच मे धोखा नही देते। अपवाद सब कही होता है।

कुछ व्यक्ति सवारी के लिए घोडे करते हैं, कुछ कण्डी। इनकी दर भी यात्रा के आरभ मे ही तय कर लेनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि घोडा स्वस्थ हो, भडकनेवाला या चचल न हो। उतराई

के समय घोडे की सवारी न करें तो अच्छा है, क्योंकि ऐसा करने से घोडे की पीठ कट जाती है। घोडे सदा किनारे की ओर चलते है। एक अंगुल पर ही हजारो फुट नीची घाटी दिखाई देती है, लेकिन इससे डरने की आवश्यकता नही है। घोडे खतरे को खूब पहचानते हैं।

आवश्यक वस्तुओ मे सबसे पहला स्थान वस्त्रो का है। पहाड पर जाने के लिए गर्म कपडो की आवश्यकता रहती है। लेकिन बदरी, केदार, जमनोत्री और गगोत्री तक ही जो यात्रा करते है, उन्हे बहुत अधिक कपडे नही बाधने चाहिए। मुख्य स्थानो को छोडकर मार्ग मे अधिक गर्मी ही मिलती है। इन मुख्य स्थानो पर ओढने-बिछाने के कपडे पण्डो से या किराये पर मिल जाते है। फिर भी आवश्यक परिधान इस प्रकार हो सकते है

बूट २ जोडी		बाटा का एक जोडी जूता काम दे जाता है, परन्तु एक काटेदार मिल जाय तो बहुत अच्छा।
मौजे ४ जोडी		एक ऊनी, तीन सूती।
सिलीपर या चप्पल	१ जोडी	
पतलून या ब्रिचिस	२	
पाजामे या धोती	४	
जाघिए-बनियान	४-४	
ऊनी सूट	१	
कमीज या कुर्ता	४	
तौलिए	३	
लुगी	२	

फैल्ट हैट, या मकी कैप, मफलर, ऊन या चमडे का दस्ताना, बरसात कोट, स्वेटर या गर्म जाकट, रगीन चश्मा—एक-एक।

स्त्रियो के लिए भी यही सामान आवश्यक है। केवल पैंट, पाजामा कुर्ता, कमीज के स्थान पर चार-चार साडी-ब्लाउज और पेटीकोट ले लें।

बिस्तर मे तीन या चार कम्बल, दो चादरें, दो गिलाफ तथा एक-एक तकिया, गर्म चादर और मसहरी काफी होग।

पुस्तकें, नक्शा, सुतली, सुग्रा, सुई-धागा, हथौडी, छुरी, कैंची, डोरी, पेन की स्याही, ग्रालपिन, काटी, स्क्रू-ड्राइवर, कैमरा, दूरवीन, तिरपाल या मोमजामा सुविधानुसार ले लें। थर्मस, पानी की वोतल, टार्च, लालटेन, मोमवत्ती, स्टोव ग्रावश्यक हैं। खाने की वस्तुग्रो मे टीनवद दूध, तरकारी ग्रौर मक्खन वडे उपयोगी रहते हैं। विस्कुट, मिश्री, सूखे फल ग्रौर मेवा बहुत काम की चीजे हैं। चाय का एक टीन ग्रवश्य ले लें। वर्तन मिल जाते हैं, पर न टूटने वाली प्लेटें, एक-दो गिलास ग्रौर प्रति व्यक्ति एक चम्मच ग्रवश्य ले लें। लोहे की नोकवाली लाठी ग्रनिवार्य है। ग्रनाज[1] सव कही मिलता है। पर नमक-मिर्च ग्रौर चीनी ले लेने पर सुविधा रहती है। हजामत वनाने का सामान ग्रौर साबुन लेंगे ही। कपडे धोने का साबुन भी ग्रनिवार्य है।

प्यास के लिए लेमनजूस, मिश्री ग्रौर इलायची वहुत ग्रावश्यक है। कुछ दवाइया भी ग्रनिवार्य हैं। पेट-दर्द के लिए ग्रमृतधारा ग्रौर चूर्ण के ग्रतिरिक्त होमियोपैथिक की कुछ कारगर दवाइया ग्राती हैं। पेचिश को तुरत रोकने के लिए एलोपैथिक दवाइया ग्रवश्य ले लेनी चाहिए। बुखार ग्रौर सर-दर्द हो जाना बहुत साधारण वात है। इनके लिए पेटेंट दवाइया सब जगह सुलभ हैं। पर ग्रपने साथ ग्रवश्य रखनी चाहिए। मार्ग मे पहाडो के लोग भी दवाइया बहुत मागते हैं। सिगरेट भी महत्वपूर्ण भेंट है। बच्चो के लिए लेमनजूस, रेवडी ग्रादि ठीक हैं। स्त्रिया सूई-धागा ग्रौर चूडिया पाकर बहुत प्रसन्न होती हैं।

दूध हर कही मिल जाता है। पडाव पर पहुचते ही राशन का प्रबध कर लेना चाहिए। ज्यो-ज्यो ग्रागे वढते हैं त्यो-त्यो भाव वढना स्वाभाविक

---

१ भाव समय के ग्रनुसार होते हैं। १९५८ मे इस प्रकार थे .
ग्राटा—१२ ग्राने से २ रु० सेर तक
घी—५ रु० ,, ८ ,, ,,
ग्रालू—५ ग्रा० ,, १ रु० ,, ,,
दूध—१२ ग्रा० ,, १।।।) ,, ,,
चाय—२ ग्रा० कप से ४ ग्राने कप तक

है। नाश्ते के लिए सुविधानुसार लड्डू, मठरी और पावरोटी आदि ले लेने चाहिए। चिट्ठी लिखने का सामान तो सभी रखते हैं।

रोगों से बचने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक हो जाता है। जहां भी हम ठहरें, सफाई रखें। सरकार ने जो शौचालय आदि बनाये हैं, उन्हीका उपयोग करें। प्यास बहुत लगती है। लेकिन हर कहीं रुककर पानी नहीं पीना चाहिए। बोतल में पानी साथ रखना चाहिए। यदि कहीं आवश्यक ही हो तो पानी को गिलास में भरकर कुछ देर रख देना चाहिए। ज़रा-सी फिटकरी या नमक या क्लोरीन डालने से वह साफ हो जाता है। कैल्शियम होने के कारण यहां का पानी बहुत भारी होता है और पेट काट देता है। भोजन सदा हल्का करना चाहिए। हर दूकान से खरीदकर कुछ-न-कुछ खाना रोग को निमन्त्रण देना है। अगर लेना आवश्यक हो तो वही वस्तुएं लें, जो उबाली जा चुकी हों।

खाने के बाद कुछ देर आराम कर लेना बहुत अच्छा है। यात्रा बहुत सवेरे या फिर सध्या को करनी चाहिए। दोपहर का समय पड़ाव पर बिताना अच्छा रहता है। पहाड़ी धूप बहुत तेज होती है। इसलिए क्रीम या वेसलीन साथ रखनी चाहिए और शरीर के खुले भागों पर मल लेनी चाहिए। उससे न तो खाल जलती है और न खुश्की होती है। जहां बहुत सर्दी हो वहां अधिक कपड़े पहनने में आलस्य नहीं करना चाहिए।

थकान उतारने के लिए पैरों को दीवार के सहारे ऊंचा करके लेट जाना या कुछ देर लिए किसी कपड़े से टांगों को कसकर बांध देना लाभदायक होता है। मार्ग में अक्सर चोट लग जाती है, इसलिए टिंचरआइडीन, पाउडर और एडेजिव टेप अनिवार्य हैं। नमी के स्थानों पर जोंक रहती है। उनको कभी खींचकर नहीं उतारना चाहिए। नमक उनका शत्रु है। जलती सिगरेट और दियासलाई की तीली का स्पर्श भी उनके लिए काफी होता है।

यदि कई व्यक्ति दल बनाकर यात्रा कर रहे हैं तो किन्हीं दो व्यक्तियों को आगे चलना चाहिए, जिससे वे नए पड़ाव पर पहुंचकर स्थान-भोजन का प्रबंध कर सकें। साधारणतया दस-ग्यारह मील से अधिक नहीं चलना चाहिए। कैमरा, दूरबीन, कुछ दवाइयां, पीने का पानी, मिश्री और नून्नी

मेवा, ये वस्तुए प्रत्येक यात्री को अपने साथ रखनी चाहिए। पीठ पर बाधनेवाले थैले मे ये चीजें बडी सुविधा से रखी जा सकती हैं। आजकल ऐसी हलकी बरसाती भी मिल जाती है, जो थैले मे आ सकती है। जबतक भूगोल से पूर्ण परिचय न हो, अतिसाहस से बचना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि खोज की स्वाभाविक वृत्ति को रोका जाय। जो सचमुच घुम्मकड हैं, उनपर केवल एक ही बधन लगाया जा सकता है और वह है स्वास्थ्य और सफाई का। टीका लगवाने मे आनाकानी नही करनी चाहिए।

ये तीर्थ हमारे देश की उत्तरी सीमा पर स्थित हैं। सामरिक महत्व के कारण राज्य अब तरह-तरह की सुविधाए दे रहा है। मोटर-मार्ग बन रहे हैं और जहां मोटर पहुच सकती है, वहा क्या नही पहुच सकता! इसलिए घुम्मक्कड़ लोग जितना कम बोझ लेकर चलें, उतना ही अच्छा है।

●

मेवा, ये वस्तुए प्रत्येक यात्री को अपने साथ रखनी चाहिए। पीठ पर बाधनेवाले थैले मे ये चीजें बडी सुविधा से रखी जा सकती हैं। आजकल ऐसी हल्की बरसाती भी मिल जाती है, जो थैले मे आ सकती है। जबतक भूगोल से पूर्ण परिचय न हो, अतिसाहस से बचना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि खोज की स्वाभाविक वृत्ति को रोका जाय। जो सचमुच घुम्मकड हैं, उनपर केवल एक ही बधन लगाया जा सकता है और वह है स्वास्थ्य और सफाई का। टीका लगवाने मे आनाकानी नही करनी चाहिए।

ये तीर्थ हमारे देश की उत्तरी सीमा पर स्थित हैं। सामरिक महत्व के कारण राज्य अब तरह-तरह की सुविधाए दे रहा है। मोटर-मार्ग बन रहे हैं और जहा मोटर पहुच सकती है, वहा क्या नही पहुच सकता! इसलिए घुम्मक्कड़ लोग जितना कम बोझ लेकर चलें, उतना ही अच्छा है।

●

मानचित्र

जमनोत्री-गंगोत्री

हनुमानचट्टा
जमनाचट्टी
गंगानी
धरासू
नगुन
नरेन्द्रनगर